Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PRAHLAD

1986 - 87

G. K. V.
Hardwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

151379

151379

ckt
151379

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लाद

(प्राच्यविद्याओं की प्रमुख त्रैमासिक हिन्दी-पत्रिका)

151379

,ckt
151379

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अक्तूबर, १९८६

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लाद

(प्राच्यविद्याओं की त्रैमासिक शोध-पत्रिका)

सम्पादक

डा० विष्णुदत्त राकेश

पी-एच.डी., डी. लिट्.

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग

संयुक्त-सम्पादक

डा० विनोदचन्द्र सिन्हा

एम.ए., पी-एच.डी.

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व

अक्तूबर, १९८६

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधान संरक्षक

श्री रामचन्द्र शर्मा
आई०ए०एस० (सेवानिवृत्त)
कुलपति

संरक्षक

श्री रामप्रसाद वेदालंकार
आचार्य एवं उप-कुलपति

प्रकाशक

मेजर वीरेन्द्र अरोड़ा
कुलसचिव

व्यवस्थापक

जगदीश विद्यालंकार
पुस्तकालयाध्यक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

❀ विषय-सूची ❀

क्रम विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१—वैदिक वन्दना		१
२—सम्पादक की कलम से	डा० विष्णुदत्त राकेश	३
३—वेद—आधुनिक जीवन-मूल्यों के सन्दर्भ में	श्री वेदप्रकाश शास्त्री	१०
४—प्राचीन भारत में तकनीकी शिक्षा	डा० अशोक कुमार सिन्हा श्री शैलेन्द्र तायल एवं सुश्री रेनू तायल	२१
५—पञ्चशिखाचार्य	डा० निगम शर्मा	३१
६—आर्य समस्या पर कुछ स्फुट विचार	प्रो० ठाकुरप्रसाद वर्मा	३७
७—भारतीय महाकाव्य एवं पुरातत्व	श्री सूर्यकान्त श्रीवास्तव	५१
८—प्राचीन भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों की दार्शनिक पीठिका	डा० जयशंकर मिश्र	५७
९—प्राचीन शिक्षा के प्रतिमान	प्रो० डा० हर्षनारायण	६५
१०—परिसर परिक्रमा :		७९
क—भारतीय मनोविज्ञान पर ग्रीष्मकालीन संस्थान	डा० हरगोपाल सिंह	८१
ख—वृक्षारोपण समारोह : हिमालय पर्यावरण शोध योजना	डा० बी०डी० जोशी	८३
११—पुस्तक समीक्षा :		
क—भारतेन्दु और भारतीय नव जागरण	डा० विष्णुदत्त राकेश	८७
ख—भारतीय दर्शन की समस्यायें	डा० विनोदचन्द्र सिन्हा	९१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रह्लाद' के मुख-पृष्ठ पर अंकित चित्र का परिचय

हिमालय पर्यावरण योजना के तहत १ अगस्त १९८६ से आयोजित बारहदिवसीय वृक्षारोपण शिविर के उद्‌घाटन का दृश्य। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा स्वागत करते हुए। दायें से माननीय ब्रह्मदत्त जी शर्मा, पैट्रोलियम राज्यमन्त्री, भारत सरकार (मुख्य अतिथि), स्वतंत्रता सेनानी श्री चन्द्रसिंह रावत, पूर्वब्लाकप्रमुख (अध्यक्ष) तथा आयोजन के संयोजक डा० बी० डी० जोशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

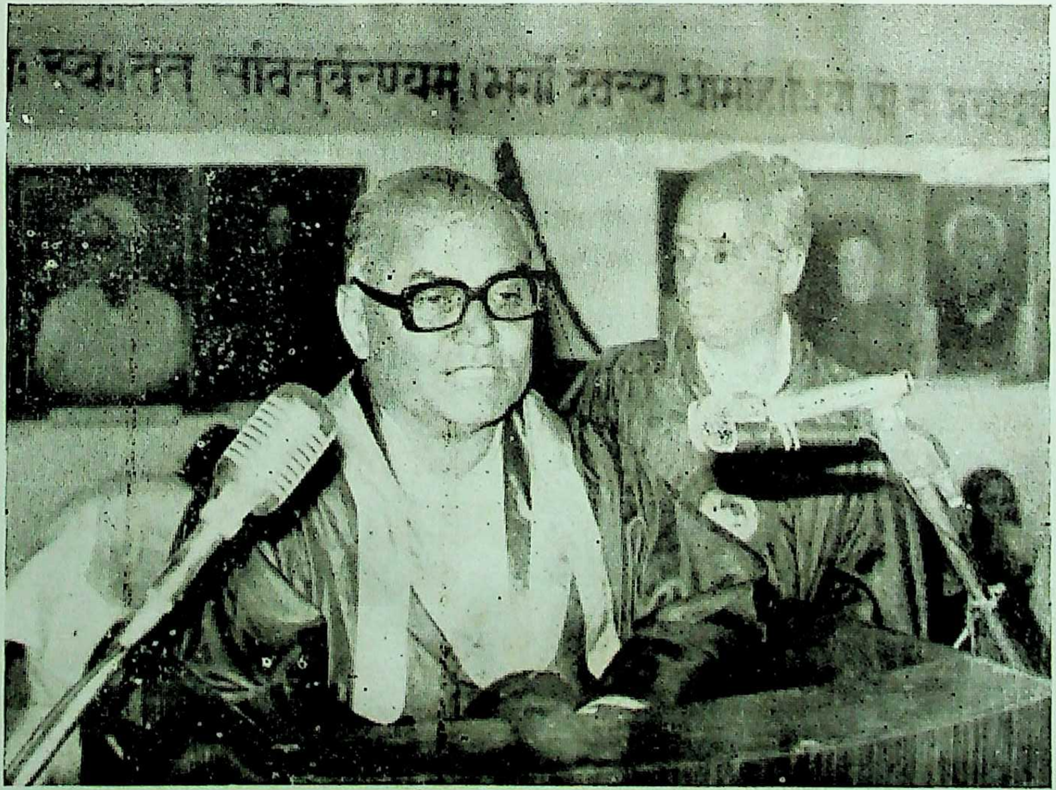

कुलपति प्रो० रामचन्द्र शर्मा (अवकाशप्राप्त आई०ए०एस०) नवस्नातकों को उद्‌बोधित कर रहे हैं। साथ में प्रो० बीरेन्द्र अरोड़ा, कुलसचिव खड़े हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालय के परिद्रष्टा डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, विश्वविद्यालय के कानूनी सलाहकार श्री सोमनाथ मरवाहा तथा कुलसचिव श्री वीरेन्द्र अरोड़ा दीक्षान्त-स्थल से लौटते हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक वन्दना

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव
यद् भद्रन्तन्न आ सुव ।

(यजुर्वेद ३०/३)

अर्थ—हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त शुद्ध स्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, वह हम सब को प्राप्त कराइए ।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

विश्वदेव सविता करुणाकर दुरित हमारे दूर करो,
मंगलकारी सुखद वृत्तियों के रस से नित हृदय भरो,
हे अनन्त रत्नों के स्वामी बुद्धिप्रदायक वरदाता,
मृत्यु, रोग, दारिद्र्य दुःखहर चिन्मय ज्योति कलश वितरो ।

—विष्णुदत्त राकेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक की कलम से—

लगभग १ वर्ष के अन्तराल के बाद प्रह्लाद फिर आपके हाथ में है। नये कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा, निवृत्त आई० ए० एस० के आगमन के बाद जहां पठन-पाठन, लेखन-प्रकाशन तथा शोध-कार्यों में गति आई, वहाँ कुछ कारणों से स्थगित यह शोध-पत्रिका पुनः प्रकाशनों की कतार में आ खड़ी हुई। इसके लिए कुशल शासक तथा दक्ष शिक्षाशास्त्री कुलपति श्री शर्मा के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। आशा है, हमारे पाठक और सुधी लेखक भी इस पत्रिका को पूर्ववत् स्नेह-सहयोग देते रहेंगे।

'मानविनी भवाई' ज्ञान-पीठ से सम्मानित

गुजराती के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार पन्नालाल पटेल का उपन्यास 'मानविनी भवाई' १९८५ के ज्ञान-पीठ पुरस्कार से सम्मानित हुआ है। मामूली शिक्षाप्राप्त श्री पटेल अपूर्व प्रतिभा के धनी हैं। महाविद्यालयों की औपचारिक शिक्षा-सीमाओं में न बँधकर, जीवन के विश्वविद्यालय में उन्होंने जिस गहराई के साथ प्रवेश किया है, उसी का परिणाम है कि सामान्य जनजीवन के संघर्ष एवं कष्ट-पीड़ाओं को भीतर तक झाँककर ईमानदारी से व्यक्त कर सकने की अपूर्व सामर्थ्य उन्हें सहज प्राप्त हो गई है। गुजराती के अन्य ज्ञानपीठ विजेता साहित्यकार श्री उमाशंकर जोशी उनके सहपाठी रहे हैं।

पन्नालाल जी का जन्म १७ मई १९१२ को गुजरात-राजस्थान की सीमा पर स्थित मांडली नामक गाँव में हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा स्कूल में हुई और फिर घुमक्कड़ जीवन जीने की इच्छा ने उन्हें घर छोड़ने को विवश कर दिया। यथार्थ संसार से सीखने का अवसर उन्हें भरपूर मिला। अपने सुरीले कंठ से जब वह लोकगीत गाते, हजारों ग्रामीण उन्हें घेर लेते। ग्रामीणों के जीवन को निकट से देखने और समझने का अवसर इसी माध्यम से उन्हें मिला। अनुभवों की मधुर-तिक्त दुनियाँ को अपने भीतर पचाए हुए वह दुर्निवार अभिव्यक्ति की तलाश में भटकते रहे। श्री उमाशंकर जोशी यदि उन्हें लेखन की ओर प्रवृत्त न करते तो 'मानविनी भवाई' जैसी महनीय रचना से भारतीय साहित्य वंचित ही रहता। श्री जोशी ने ही श्री पटेल का परिचय प्रसिद्ध कवि तथा कथाकार श्री सुन्दरम् से कराया। श्री पटेल श्री सुन्दरम् से साहित्यिक सलाह लेते रहे।

उनकी पहली कहानी 'शेठनी शारदा' श्री झँवेरचन्द मेघाणी ने प्रकाशित की। १९४० में उनका पहला लघु उपन्यास 'बलामणां' प्रकाशित हुआ। इसकी भूमिका श्री मेघाणी ने लिखी थी। इन रचनाओं की पृष्ठभूमि ग्रामीण-परिवेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर निर्मित थी। उस परिवेश पर जिसकी सहज और निश्छल संवेदनाओं ने श्री पटेल की आत्मा को बहुत दूर तक झकझोर दिया था। क्षेत्रविशेष की बोलियों का किया गया प्रयोग रचनाओं को यथार्थ रूप देने में सफल सिद्ध हुआ और श्री पटेल इन रचनाओं के साथ ग्रामीण जीवन के कुशल चितेरे घोषित कर दिए गए।

१९४५ में उन्होंने एक और अच्छी रचना 'मलेला जीव' प्रकाशित कराई। कांजी और जीवी की त्रासदीपूर्ण प्रेमकथा इस रचना का प्रतिपाद्य थी। साहित्य अकादमी ने भारतीय भाषाओं में जिन श्रेष्ठ कृतियों को अनुवाद के लिए चुना था, उनमें यह एक थी। १९४७ में श्री पटेल की अमर रचना 'मानविनी भवाई' प्रकाशित हुई। इसमें १९४६ के भयंकर अकाल से त्रस्त गुजरात के ग्रामीण अंचलों के जनजीवन की संघर्षपूर्ण कहानी कही गई है। दैव की प्रतिकूलता और निराशापूर्ण परिस्थितियों में भी इस रचना का नायक 'काळू' अपनी सम्पूर्ण दुर्बलताओं के बावजूद घुटने नहीं टेकता। उसकी प्रेमिका राजू एक साधारण नारी होकर भी उस अदम्य जीवनेच्छा तथा प्रेम की ऊर्जा से परिपूर्ण है जो 'काळू' को हर टूटन के समय बांध की तरह बहने से बचा लेती है। ईर्ष्यालु तथा छोटे मन की दुनियाँ में यद्यपि यह प्रेमी-युगल कभी दाम्पत्य-सूत्र में न बँध सका; पर शरीर और मन की भूख के उस विकराल वातावरण में जिस बहादुरी और क्षमादान कर सकने वाले उदार मन के साथ उन दोनों ने मानव की गरिमा को सुरक्षित रखने की चेष्टा की, वह भारतीय भाषाओं के साहित्य में दुर्लभ तो नहीं, विरल अवश्य है। वर्षा की पहली फुहार के साथ समाप्त होने वाले इस उपन्यास में आशा की उस उज्ज्वल किरण की स्थापना की गई है जो व्यक्ति को मरने से बचाती है। विपरीत परिस्थितियों में भरपूर दमखम के साथ जीने वाले मनुष्य की विजय इन फुहारों में झर पड़ी है। श्री पटेल का रचना-संसार बड़ा व्यापक है पर सम्पूर्ण ओज तथा प्रभा के साथ 'मानविनी भवाई' से वह सदैव याद किए जायेंगे।

श्री पटेल गुजराती के आँचलिक कथाकार हैं। मलेला जीव, बलामणां तथा मानविनी भवाई जहाँ ग्राम्य अंचल की कथाएँ हैं वहाँ यौवनसुरभि तथा भीरु साथी में नागरजीवन की संवेदनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं। आपके कहानी-संग्रहों में जीवो दाउँ, सुख दुख ना साथी, जिंदगी ना खेल, लख चौरासी, सांचा-समणां, पानेतर नारंग, वात्रक ने कांठे तथा अजब मानवी उल्लेखनीय हैं। जमाईराज नामक नाटक भी लोकप्रिय हुआ है।

सांसद् और साहित्यकार श्रीकांत वर्मा

मुक्तिबोध के बाद की दूसरी पीढ़ी के तेजस्वी और धारदार कवियों में श्रीकांत वर्मा अग्रणी रहे। दो बार राज्यसभा के सदस्य रहे तथा इन्दिरा कॉंग्रेस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के महासचिव के रूप में इन्दिरा-दर्शन के प्रतिबद्ध सिपाही-लेखक की भूमिका निभाते हुए २७ मई १९८६ को दिवंगत हो गये ।

श्रीकांत का जन्म १८ सितम्बर १९३१ को मध्य प्रदेश के विलासपुर में हुआ । १९ वर्ष की आयु तक जीवन सुखपूर्वक बीता पर जमींदारी उन्मूलन के बाद पिता की आर्थिक स्थिति डाँवाडोल हो जाने से उनकी शिक्षा बी० ए० से आगे न हो सकी । १९५२ में बी०ए० उत्तीर्ण कर हाईस्कूल में अध्यापक हो गये। बाद में व्यक्तिगत छात्र के रूप में उन्होंने नागपुर से हिन्दी में एम०ए० किया । नागपुर में उनका सम्पर्क मुक्तिबोध तथा नरेश मेहता से हुआ । मेहता जी के प्रयाग जाने के बाद से श्रीकांत जी मुक्तिबोध से गहराई के साथ जुड़ते चले गये। उनकी रचनाएँ प्रारम्भ में नई दिशा, संकेत, निकष तथा नया खून में प्रकाशित हुईं । गीत की प्रणय-कल्पनाजीवी दुनियाँ को छोड़कर जीवन के प्रतिमुखी प्रवाह में अपने को धँसा देना श्रीकांत जी की विवशता थी और यह दुर्निवार पकड़ मुक्तिबोध की त्रासद जीवनी से श्रीकांत जी को मिली थी। साहित्य, नई कविता, नई कला, राजनीति और बौद्धिक संवेदनाओं की महीन से महीन चादर बुन देना उन्हें बखूब आता था ।

सितम्बर १९५६ में वह दिल्ली आए। 'भारतीय श्रमिक' का सम्पादन किया । १९५८ में 'कृति' नामक पत्रिका का सम्पादन किया । इसके ४० अंक प्रकाशित हुए । रघुवीर सहाय, कुँवरनारायण, निर्मल वर्मा, मनोहरश्याम जोशी, हरिशंकर परसाई, नामवर सिंह, केदारनाथ सिंह, मार्कण्डेय तथा अशोक वाजपेयी जैसे साहित्यकारों ने कृति को अपना आशीर्वाद दिया । नई कविता के कृती रचनाकारों को प्रतिष्ठित करने में 'कृति' का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक चेतना के स्तर से वैयक्तिक चेतना के स्तर तक की टकराहट, निजी स्वर और नई भाषा की बुनावट में इन काव्यान्दोलनों द्वारा व्यक्त हुई। छोटे-से-छोटे व्यास की रचना में चिथड़े-चिथड़े होते हुए विराट् की अभिव्यक्ति इस धारा की कला की प्रमुख विशेषता है।

१९५७ में उनका संग्रह 'भटका मेघ' प्रकाशित हुआ था पर आलोचकों की दृष्टि इधर नहीं गई। बुखार में कविता, समाधि-लेख, घर धाम, दिनचर्या, दिनारम्भ, माया दर्पण, प्रेम वक्तव्य और पटकथा उनकी श्रेष्ठ कविताएँ भी १९६२ के दिनों में लिखी गई। माया दर्पण की कविताओं में उन्होंने काव्यात्मक अभिव्यक्ति का शिखर छू लिया था। भाषा, संवेदन, सम्प्रेषण और वस्तु के बहु-आयाम उनकी कविताओं की गुणवत्ता की पहचान कराते हैं। १९६५ में दिनमान के उपसम्पादक होकर उन्होंने जीवन को व्यवस्थित करने की चेष्टा की । यहाँ कार्य करते हुए उन्होंने तत्कालीन राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर रपट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखनी शुरु की और अब कवि वर्मा राजनीतिक सोच के प्रतिनिधि समझे जाने लगे ।

लोहिया, मार्क्स और इन्दिरा गाँधी उनके चिन्तन के तीन चरण हैं । आपातकालीन भारत में इंदिरा जी के वह प्रचार-प्रमुख थे और बाद में तो वह इन्दिरा कांग्रेस के चुनाव अभियान के संयोजक ही बना दिए गए । राजनीतिक वर्मा के विचार और दृष्टिकोण से बहुतों को मतभेद हो सकता है पर उनके साहित्यिक अवदान पर मतभेद की गुंजाइश बहुत कम है । उन्होंने कहानियाँ भी लिखीं । 'झाड़ी', 'संवाद', 'घर', 'चुनी हुई कहानियाँ' तथा 'दूसरे के पैर' उनके कथासंग्रह हैं । 'दूसरी बार' उनका उपन्यास है तथा 'जिरह' नामक आलोचना पुस्तक है जिसमें सम-सामायिक साहित्यिक मुद्दों पर सार्थक बहस मिलती है । अंग्रेजी में राजीव गाँधी की जीवनी 'ए पोर्ट्रेट ऑव राजीव गाँधी' भी लिखी है ।

श्रीकांत जी मैक्सिको के विख्यात कवि तथा भारतस्थित राजदूत ओक्ता वियोपाज के सम्पर्क में भी आए । अमेरिका के आयोवा विश्वविद्यालय में प्रवासी कवि के रूप में कार्य किया तथा अनेक विदेशी साहित्यकारों के ग्रन्थों का अनुवाद किया । अन्तर्राष्ट्रीय लेखन कार्यक्रम के तहत १९७० में वह आयोवा गये थे । इस यात्रा में देशी-विदेशी साहित्य की प्रामाणिक पहचान का अवसर उन्हें मिला ।

उनकी अन्तिम काव्यरचना 'मगध' नाम से १९८४ में प्रकाशित हुई । मायादर्पण और मगध में कौन रचना श्रीकांत जी की सही पहचान बतलाएगी— यह बहस का मुद्दा हो सकता है पर राजधानी के आलोक में निर्मित मगध में वह सब कुछ नहीं है जिसकी आश्वस्ति मायादर्पण ने दी थी ।

कैंसर से उनकी आकस्मिक अकाल मृत्यु हुई । उनकी 'आत्मघात', 'अन्तिम वक्तव्य' और 'शोक' जैसी कविताएँ जीवित हो गईं । ५५ वर्ष की अल्पायु में उनका निधन गहरे शोक का विषय है । श्रीकांत की रचनाओं का विश्लेषण दल के आधार पर नहीं, सर्जककल्पना और जीवनानुभव की निरन्तरता के आधार पर होना चाहिए । १९५७ में प्रकाशित और चर्चित उनके गीत की कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत हैं :

डूब गये कहीं किसी के स्वर, साँझ हुई ।
झुंझकर में दिन भर ऊंघी पीली धूप, अलसाई दोपहरी अलसाई साँझ
संझा का सोन दिया, सोनराया गाँव, पियराये ताल तलैया खंडहर कूप—
दिन भर बज खेतों में चुप है अरहर, साँझ हुई ।

महुआ डूबे वन की गलियाँ सुनसान
अभी झूल कर सोई साजा की शाख
निंदियाये फूलों की सकुचायी आँख
कहीं उठी लहर कहीं टूटे गान, भीगी हैं दो आँखें, भीगा आंचर, साँझ हुई । ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भारत-भारती' के वैतालिक कवि की जन्मशती

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की जन्म शताब्दी समारोह ३ अगस्त ८६ को राजधानी तथा चिरगाँव में मनाया गया और इन आयोजनों के साथ साल भर तक पूरे देश में अनेक कार्यक्रम सम्पन्न होने की आशा बँध गई। केरल हिन्दी प्रचार सभा के प्रधान संयोजक एम०के० वेलायुधन नायर ने राज्य के स्तर पर तिरुवनन्तपुरम, एरणाकुलम, तृश्शूर तथा कोषिक्कोड़ में विभिन्न आयोजनों की घोषणा की। राजधानी में शताब्दी-समारोह के उद्घाटन पर गुप्त जी को श्रद्धांजलि देते हुए उपराष्ट्रपति श्री आर० वेंकटरमन ने हिन्दी में भाषण देते हुए कहा—"गुप्त जी राष्ट्रीय साहित्य के भाल पर तिलक के समान हैं। स्वतंत्रता से पूर्व और बाद में राष्ट्रकवि के रूप में और राज्यसभा के सदस्य के नाते उन्होंने एकता और आत्मबल को अपनी लेखनी से प्रस्फुटित किया। राष्ट्र-भाषा हिन्दी का प्रचार कर उन्होंने भारतीय संस्कृति और एकता को मजबूत धागे में पिरोने का प्रयास किया।" मानव संसाधन मंत्री श्री पी० वी० नरसिंहा राव ने कहा कि अहिन्दी प्रांतों में हिन्दी सीखने का जिन्होंने प्रयास किया, उनके लिए मैथिलीशरण गुप्त और माखनलाल चतुर्वेदी अप्रत्यक्ष रूप से गुरु के रूप में थे। उनकी चिंतनयुक्त रचनाओं ने अहिन्दीभाषियों को हिन्दी सीखने के लिए प्रेरित किया। गुप्त जी के ग्रन्थ जयद्रथ वध, भारत-भारती, पंचवटी और नहुष तो लाखों लोगों ने कंठस्थ कर लिए थे। उन्होंने अतीत को देखकर वर्तमान और भविष्य का दर्शन लोगों तक पहुँचाने की कोशिश की। 'साकेत' और 'भारत भारती' उनकी अमर रचनाएँ हैं।

रायबरेली के ताल्लुकेदार राजा रामपाल सिंह ने हाली के उर्दू मुसद्दस के समान एक जनजागरण का काव्य लिखने का आग्रह गुप्त जी से किया। गुप्त जी ने हरिगीतिका छन्द में यह रचना लिखी और छपते ही इसकी दो हज़ार प्रतियाँ बिक गईं। इस राष्ट्र-उद्घोष के वैतालिक यदि गुप्त जी थे तो आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी और लोकजागरण के प्रकल्पक। आचार्य द्विवेदी, मुंशी अजमेरी तथा बार्हस्पत्य जी के परामर्श से यह रचना सोलह महीनों तक लिखी जाने के बाद १९१३ में पूर्ण हुई। हाली का 'मद्दो जजे इस्लाम' मुसलमानों का जागरण-काव्य है। जैसा कि इस नाम से स्पष्ट है, इसमें इस्लाम का ज्वार-भाटा या उत्थान-पतन का इतिहास है। हाली ने कहा—

पस्ती का कोई हद से गुजरना देखे ।
इस्लाम का गिरकर न उभरना देखे ।
कि कल कौन थे आज क्या हो गए हो तुम ।
अभी जागते थे अभी सो गए तुम ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसद्दसे हाली के बीसियों संस्करण प्रकाशित हुए। मुसद्दस में शायराना तखैयुल कम, कौमी भाटपना अधिक था पर गुप्त जी ने इस संकीर्णता को ग्रहण नहीं किया। भारत-भारती में दीन-हीन पराधीन देश के निवासियों की पीड़ा है पर वह किसी एक की न होकर समूचे देश की वाणी है। गुप्त जी समग्र देश की वाणी (भारती) को अपनी कविता का विषय बनाते हैं। भारत के अतीत की गरिमा और वर्तमान की अवनति तथा दुर्दशा का जीता-जागता चित्र भारत-भारती में है। यह रोने-धोने और छाती पीटने का काव्य नहीं, सद्वृत्तियों और आशापूर्ण उत्साह के साथ खड़े होकर चल पड़ने का उत्थानसूचक काव्य है। भारतीय संस्कृति की विपरीत परिस्थितियों में भी न मर मिटने वाली शक्ति इसका केन्द्रभाव है।

प्राचीन और नवीन अपनी सब दशा आलोच्य है,
अब भी हमारी अस्ति है तो भी अवस्था शोच्य है।
कर्त्तव्य करना चाहिए, होगी न क्या प्रभु की दया,
सुख दुःख कुछ हो एक सा ही सब समय किसका गया।

भारत-भारती देश के कोने-कोने में गूँज उठी। स्वयं श्री गुप्त जी ने लिखा है—"भरपूर सतर्कता बरती जाने पर भी सी० आई० डी० की शनिदृष्टि इस पर पड़ी। कहा गया कि इसमें हिन्दुस्तानियों को 'जनाना हिन्दुस्तान' कहकर भड़काया गया है। भारत माने हिन्दुस्तान, भारती माने जनाना। बहुत-सी पाठशालाओं में भारत-भारती की अन्तिम 'विनय' का नियमित पाठ होता था। बिहार सरकार ने इस पर आपत्ति की। हाईकोर्ट में अभियोग उपस्थित किया। चीफ जस्टिस का मत था कि भारतवासियों का विश्वास है कि हमारा देश अतीत में सर्वगुण सम्पन्न था परन्तु अब दीन-हीन हो गया है। यह कोई आपत्ति की बात नहीं। तब सरकार को अपनी आज्ञा लौटानी पड़ी।" इतना होने पर भी अंग्रेजी सरकार ने पुनः प्रतिबंध लगाया पर क्या होली जलाने के बाद भी भारत-भारती कुंठित और गूंगी हो सकी ?

गुप्त जी का जन्म ३ अगस्त १८८६ को हुआ। बड़े होकर जब रसिकेन्द्र या रसिकेश नाम से कविता करने लगे तब आचार्य द्विवेदी ने कहा रसिकेन्द्र बनने की इच्छा छोड़िए, वह समय गया। गुप्त जी राष्ट्रीयधारा में बह गए। १९१६ की सरस्वती में 'भारतीय' उपनाम से गुप्त जी की कविता 'स्वदेश' छपी जो अमरीकी कवि लावेल की कविता का पद्यानुवाद था। द्विवेदी जी उनके काव्य-गुरु थे। वे अन्त तक उनका मार्ग-दर्शन करते रहे। गुप्त जी ने द्विवेदी जी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए लिखा—

'करते तुलसीदास भी, कैसे मानस नाद
महावीर का यदि नहीं, मिलता उन्हें प्रसाद।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्त जी द्विवेदी जी को 'आचार्य देव' कहकर पुकारते थे।

राष्ट्रीय आन्दोलन और जन-जागरण के काम में वह गाँधी जी से प्रभावित थे। २३ नवम्बर १९२९ को गाँधी जी चिरगाँव में उनके अतिथि बने थे। गाँधी जी के प्रति उनकी अनन्य श्रद्धा इन पंक्तियों में मुखर हुई है –

संत महात्मा हो तुम जन के, बापू हो हम दीनों के,
दलितों के अभीष्ट वरदाता, आश्रय हो गतिहीनों के।
आर्य अजात-शत्रुता की उस परम्परा के स्वत: प्रमाण,
सदय बंधु तुम विरोधियों के, निर्भय स्वजन-अधीनों के।

अप्रैल १९४१ में वह राजबंदी बनाए गए। उनकी रिहाई १४ नवम्बर १९४१ को हुई। गाँधी जी ने इस पर कहा था कि कविता आज उनकी कलम से नहीं निकलती है वरन् उनके सूत के तारों से निकलती है।

गुप्त जी की राष्ट्रीय चेतना इतनी प्रबल रही कि जब उनका नाम साहित्य सम्मेलन के सभापति पद के लिए प्रस्तुत हुआ तो उन्होंने अपना नाम वापिस लेते हुए राजेन्द्र बाबू के नाम का प्रस्ताव किया। स्वतंत्रता के बाद गुप्त जी राज्यसभा में आ गए। १९५४ में डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने उन्हें 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया। १९६३ में 'सरस्वती' के हीरक जयंती समारोह की अध्यक्षता गुप्त जी ने की। राज्यसभा से अवकाश ग्रहण कर आप चिरगाँव आ गए तथा १२ दिसम्बर १९६४ को आपने साकेतवास के लिए महाप्रस्थान किया। हिन्दी के इस लोकनायक कवि को हमारे असंख्य प्रणाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद—आधुनिक जीवन-मूल्यों के सन्दर्भ में

—श्री वेदप्रकाश शास्त्री
रीडर, संस्कृत विभाग,
कुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

यह सर्वविदित है कि वेद मानवजीवन को प्रकाशित करने वाली सर्व-प्राचीन ज्ञान-निधि के रूप में मान्य हैं। भारतीय मनीषी एवं ऋषि-परम्परा के तपःपूत एवं दिव्य प्रतिभा के धनी विद्वानों ने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान के रूप में स्वीकार करते हुए वेदों का अपौरुषेयत्व स्वीकार किया है। अतएव आर्य समाज के प्रवर्तक एवं वैदिक धर्म के पुनरुद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज के तृतीय नियम में वेदों में समस्त सत्य विद्याओं को स्वीकार करते हुए प्रथम नियम में समस्त सत्यविद्या तथा विद्या से जानने योग्य पदार्थों का आदि-मूल परमात्मा को माना है। इससे यह सिद्ध होता है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं तथा परिपूर्ण हैं। आर्यों ने वेद को स्वतः प्रमाण स्वीकार किया है। अतः वेद स्वयं में स्वविषय में प्रमाणरूप हैं। वेद में इस प्रकार के मन्त्र हैं जिनसे वेद का ईश्वरीय ज्ञान होना सिद्ध होता है, यथा—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥
यजु० ।३१।७

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥
अथर्व ।११।७।२४

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥
ऋग्० ।१०।७१।१

यस्मात्पक्वादमृतं संबभूव यो गायत्र्या अधिपति र्बभूव।
यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥
अथर्व ।४।३५।६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज मनु ने संसार की समस्त प्रवृत्तियों का उद्गमस्थल वेदों को ही स्वीकार करते हुए ईश्वरीय ज्ञान के रूप में वेदों को मान्य कहा है—

अग्निवायु रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः साम लक्षणम् ॥
मनु० २।२३

अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।
आदौ वेदमयी विद्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥
महा. भा. शांति । २३२/२४

पाश्चात्य जगत के मूर्धन्य मनीषियों ने वेद को अपौरुषेय स्वीकार किया हो या न किया हो परन्तु संसार की प्राचीनतम ज्ञाननिधि के रूप में तो अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया ही है। प्रो० मैक्समूलर ने—"Rigveda is the oldest book in the literary of mankind" कहकर वेद को सर्वप्राचीन सिद्ध किया है।

वेद सृष्टि के ज्ञान-विज्ञान के आगार हैं। संतप्त और दुःखी मानवजाति को स्वकल्याण के प्रशस्त-पथ का ज्ञान वेद के आलोक से ही सम्भव है। वेद का ज्ञान सर्वथा पवित्र है उसमें किसी भी प्रकार का अंश हेय नहीं है। मानवमात्र को वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रिय कर्त्तव्यों का ज्ञान कराकर उसे सुख, शांति और आनन्द का सच्चा मार्ग बताना ही वेदों का पवित्र उद्देश्य है।

आधुनिक युग में मानव अपने जीवन-मूल्यों के प्रति पर्याप्त सचेष्ट है, भले ही वह दिग्भ्रमित होकर जीवन-मूल्यों के यथार्थ का दर्शन न कर सके किन्तु उसकी गति उन मूल्यों की प्राप्ति में निश्चय ही हो रही है। सृष्टि के आदि से अद्यावधिपर्यन्त मानव ने समय-समय पर जो चिन्तन किया, ज्ञान-विज्ञान की दिशा में जो अभ्युदय प्राप्त किया वही सब कुछ वीज रूप में वेदों में निहित होता हुआ प्रकाशमान हो रहा है। महाराज मनु ने मानवसृष्टि के समस्त नाम एवं कर्मादि का प्रवर्तक वेद को ही स्वीकार किया है—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक् ।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥ मनु १।२१

अधुनातन जगत में मानव ने अभ्युत्थान को लक्ष्य मानकर जिन जीवन-मूल्यों को मान्यता दी है वे सभी जीवन-मूल्य प्राचीन हैं। क्योंकि मानव जैसे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धरातल पर अवतीर्ण हुआ उसके साथ-साथ जीवन-मूल्यों का दर्शन एवं ज्ञान उसको परमात्मकृपा से वेद के माध्यम से प्राप्त हो गया। हम अपनी स्थूल दृष्टि से उन जीवन-मूल्यों के प्रति आदर या अनादर का दृष्टिकोण रखते हुए स्वार्थमयी विडम्बनात्मक अपेक्षा के फलस्वरूप उनमें हानोपादान प्रवृत्ति को जन्म देते हुए प्राचीन और नवीन संज्ञा से बोधित करते रहते हैं। वास्तव में जीवन-मूल्य शाश्वत होते हैं। आज से अरबों वर्ष पूर्व ऋषियों ने जिन जीवन-मूल्यों का मानव-कल्याण के लिए, अदोष दृष्टि से साक्षात्कार किया वे ही पुरुषार्थचतुष्टय के रूप में गणनीय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आज भी मानव समाज द्वारा ग्राह्य बने हुए हैं। आधुनिक चिन्तकों द्वारा परिगणनीय बहुसंख्यक मानवजीवन के मूल्य इसी पुरुषार्थचतुष्टय के काण्ड एवं प्रकाण्ड रूप हैं। मानव जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति हैं, यह जीवनयात्रा मोक्ष प्राप्ति तक ही प्रकृति से संनिधि किए हुए है, किन्तु अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए साधन अपेक्षित हैं, उन्हीं साधनों का नाम धर्म, अर्थ और काम है।

यद्यपि आज यह धारणा मानव मस्तिष्क में व्याप्त हो रही है कि धर्म के प्रति आज का मानव आस्थावान नहीं है, क्योंकि धर्म से शांति नहीं अपितु धार्मिक व्यक्तियों के जीवन सानिध्य से अशाँति, क्षोभ एवं घृणा का भाव उत्तरोत्तर परिपुष्ट हो रहा है। इस विषय में हम कह सकते हैं कि जहाँ धर्म के वास्तविक स्वरूप का अवबोध किए बिना हमने किसी स्थानविशेष, लिङ्ग-विशेष या पुरुषविशेष के साथ धर्म को जोड़ दिया है वहीं पर ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है। क्योंकि जो धर्म नहीं किन्तु धर्म का आभासमात्र है, उसके प्रति कालान्तर में अनास्था का होना स्वाभाविक ही है, और ऐसे धर्माभास का जीवन-मूल्यों में कोई स्थान नहीं होता। जो वास्तविक धर्म है अर्थात् मानव जीवन का विशुद्ध व्यवहार है वह सदा ही स्व पर उभयविध कल्याणभावना से युक्त होता है। महाराज मनु ने धर्म की जिन दश विधाओं का बोध कराया है—

धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः,
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

यहाँ कहीं भी किसी देश, काल तथा स्थान का बन्धन नहीं है। ये मानव जीवन की सार्वभौम अपेक्षित व्यवहृतियाँ हैं जिनकी अपेक्षा सृष्टि के आदिमानव को भी थी, आज के मानव को भी है तथा भविष्य में आगमिष्यमाण मानव को भी सदा रहेगी। उक्त धर्म के दश लक्षणों का ज्ञापन वेद के माध्यम से होता है क्योंकि वेद ही ज्ञान है, ज्ञान प्रकाशस्वरूप है तथा प्रकाश ही सत्य होता है। अतः "असतो मा सद्गमय" कह कर निरन्तर असत्य से सत्य की ओर अग्रसर होने की कामना की गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषिवर दयानन्द जी महाराज ने आर्य समाज के नियमों की संरचना करते हुए प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा पञ्चम नियम में क्रमशः सत्य शब्द के प्रयोग द्वारा मानव जीवन में सत्य की प्रतिष्ठा को आलोकित करते हुए मानव जीवन का सर्वोपरि मूल्याङ्कन किया है।

अधुनातन जगत का मानव निरन्तर अशांत होकर इतस्ततः भटक रहा है। लगता है कि उसका कुछ विलुप्त हो गया है जिसे प्राप्त करने के लिये वह व्याकुल है। यह व्याकुलता ही इस तथ्य की परिचायिका है कि उसके जीवन से वह सारभूत तत्त्व अभी नहीं जुड़ पाया है जिसके जुड़ते ही छटपटाहट समाप्त हो जाती है। वह तत्त्व सत्य ही है। सत्य की निरपेक्षा में मानव को शांति कहाँ हो सकती है? अद्यावधि जो व्यक्ति यह कहते हैं कि सत्य आज जीवन-मूल्यों में गणनीय नहीं है, या उसका अवमूल्यन हो गया है, वे सर्वथा भ्रांत धारणा से ग्रस्त हैं। सत्य त्रिकालाबाधित है, उसका कभी भी बाध नहीं होता। यह हो सकता है कि सत्य के अन्वेषण में दिग्भ्रमित होकर मानव भटक गया हो और यह सत्य की दूरी ही उसको उद्वेलित कर रही हो, अन्यथा तो सत्य को ही जीवन तथा जीवन को ही सत्य कहा गया है।

परमात्मा की सृष्टि में सत्य की ओर प्रेरित करने वाले तथा असत्य की ओर प्रेरित करने वाले दोनों ही प्रकार के विचार मानवमन में उद्बुद्ध होते रहते हैं। ज्ञानी मनुष्य असत्य की ओर उन्मुख न होकर उसका परित्याग करता हुआ सत्य का ग्रहण करता है।

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयः तदित सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥

अथर्व ।८।४।१२

परमात्मा ने वेद में उपदेश दिया है कि सत्य में मानव को श्रद्धा तथा असत्य में अश्रद्धा करनी चाहिए। सत्य और असत्य इन दोनों के लक्षण पृथक्-पृथक् हैं। सत्य ऋजु (सरल) और सृष्टि नियम के अनुकूल होता है, सत्याचरण करने से आत्मा में उत्साह उत्पन्न होता है। असत्य कुटिल होता है और वस्तु-स्थिति के प्रतिकूल होता है। असत्याचरण करते समय चित्त में लज्जा, संकोच, और भय उत्पन्न होते हैं। लज्जा, भय, संकोच मानों हमें असत्याचरण से रोकते हैं। लज्जा आदि भाव ने ही असत्य को अश्रद्धेय सिद्ध कर दिया है। इसके विपरीत सत्याचरण से होने वाले उत्साह ने सत्य को श्रद्धा की प्रतिष्ठा प्रदान की है—

सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते।
नात्रावखादोऽस्ति वः ॥ ऋग्वेद ।१।४१।४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ॥ यजु० १९।७७

समाज को नेतृत्व प्रदान करने वाला नेता जब ऋजु मार्ग का पथिक होकर समाज कल्याण की भावना से, मानवोत्थान की योजना बनाता हुआ अग्रगामी होता है तब प्रजा द्वारा वह श्रद्धा का पात्र बनता है। परन्तु इसके विपरीत स्वार्थलोलुप, असत्य मार्ग का पथिक, अविवेकी, दुराचरी नेता प्रजाजन के हृदय में न सम्मान प्राप्त करता है तथा न ही कोई उसका अनुवर्तन करता है। इसी भाव को वेद ने निम्न मन्त्र में प्रदर्शित किया है—

यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा।
प्र वः सधीतये नशत् ॥ ऋग् ।१।४१।५

आज प्रायः एक धारणा मानवहृदय में उभरने लगी है कि जो सत्य का अवलम्बन लेकर प्रगति करना चाहता है, उसका मार्ग अवरुद्ध-सा प्रतीत होता है। किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है, यदि सत्य का मूल्य आज जीवन में नहीं है तो प्रत्येक व्यक्ति को मिथ्या व्यक्तित्व, मिथ्याचार तथा मिथ्या वातावरण के प्रति कृतरुचि होना चाहिए, जबकि ऐसा दृष्टिगोचर नहीं होता। प्रायः देखा जाता है कि स्वयं असत्याचरण करने वाला व्यक्ति सत्याचारी की अन्वेषणा में रहता है। घी में डालडा मिलाने वाला वणिक् स्वयं यदि कहीं घृत लेने जावे तो भिन्न वणिक् से शुद्ध घृत की कामना करता है। इससे यह सिद्ध है कि सत्य का मूल्य जीवन के साथ जुड़ा हुआ है।

जीवन में अर्थ का मूल्य—

अर्थ का मानव जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानव की जीवन-यात्रा अर्थ के सुदृढ़ रथ पर आरूढ़ होकर ही सुखपूर्वक हो सकती है। जिस क्षण से जीव ने यह शरीर धारण किया उस क्षण से लेकर मृत्युपर्यन्त अर्थ की उपेक्षा नहीं की जा सकती। वेदों में धन के लिए अनेक स्थानों पर रयि शब्द का प्रयोग किया गया है—"यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्" अर्थात्, हे परमात्म देव हम जिस कामना वाले होकर आपका आश्रय लेवें वह पूर्ण होवे तथा हम धन-ऐश्वर्यो के स्वामी बनें। इसी प्रकार—

"अग्ने नय सुपथा रायेऽस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्"

हे प्रभो, हमें धनप्राप्ति के लिए सुपथ से चलने की प्रेरणा दो, अर्थात् हम धनार्जन कुटिल उपायों से नहीं अपितु सरल एवं परजन सुखोत्पादक उपायों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से करें। आज जब हम किसी धनी व्यक्ति का सम्मान होते हुए देखते हैं तो हमें लगता है कि धन ही मानवसृष्टि में सर्वस्व है, अतः धनार्जन में प्रवृत्त होना चाहिए। हम वैदिक विचारधारा के वास्तविक स्वरूप को न जान कर केवल धनार्जन को लक्ष्य मानकर अनुचित उपायों से भी धनार्जन करना चाहते हैं। वे उपाय भले ही छल, कपट, हिंसा आदि के हों। अधुनातन जगत में आर्थिक दृष्टिकोण वैदिक आर्थिक दृष्टिकोण से भिन्न है। वेद धन को जीवनयात्रा का साधन मानता है, वहाँ धन जीवन के लिए है। किन्तु वर्तमान काल में तो व्यक्ति का जीवन लगता है कि धन के लिए ही हो गया है। वेद में मानव को धनार्जन करके लोकोपकार करने की प्रेरणा दी गयी—

"ईशावास्यमिदं सर्वम्" कहकर धन की कितनी सत्ता है इस पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। वेदों में धनपति को ब्राह्मण द्वारा प्रेरणा दी जाती है कि—

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि
स न एतु पुर एता नो अस्तु।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं
स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम्॥

अथर्व ।३।१५।१

अर्थात्, मैं ऐश्वर्यशाली वणिक् को प्रेरित करता हूँ कि हमारे समीप आकर हमारा नेतृत्व करे तथा कृपणता आदि अराति भाव को हृदय से दूर करता हुआ समाज के लिये धन का दाता बने।

वेद में केवल देश में ही नहीं अपितु देश-देशान्तरों में जहाँ भी मानव की पहुँच हो सकती है, वहीं पर सुपथ बनाकर धनार्जन करने का निर्देश है:

ये पन्थानो बहवो देवयाना,
अन्तरा द्यावा पृथिवी संचरन्ति।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन,
यथा क्रीत्वा धनमाहराणि॥

अथर्व ।३।१५।२

मानव जिस पूँजी को मूल में लगाकर व्यापार करे उसकी वह पूँजी निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होती रहे, कभी भी उसमें न्यूनता न आवे तथा व्यापारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरोत्तर उन्नति की ओर बढ़ता हुआ विकास करता रहे। इस भाव को इस प्रकार वेद में व्यक्त किया गया है—

येनधनेन प्रपणं चणर्म—
धनेन देवा धनमिच्छमानाः।
तन्मे भूयोभवतु मा कनीयोऽग्ने—
सातघ्नो देवान् हविषा निषेध॥
अथर्व०।३।१५।५

आज मनुष्य अनेक स्रोतों से धनार्जन करना चाहता है। वेद में भी इसका विरोध नहीं है किन्तु इतना निर्देश अवश्य है कि धनार्जन तथा धनविकिरण क्रमिकता से होता रहे तथा धनार्जन अग्रिम जीवन की गुत्थी को खोलने में सहायक हो सके, यथा—

शतहस्त समाहर सहस्रहस्तसंकिर।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फाति समावह॥ अथर्व०।३।२४।५

उद्योग का महत्त्व—

उद्योग मानव जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। उद्योग के बिना मनुष्य अकर्मण्य होकर समाज में निन्दित होता है। आधुनिक युग तो उद्योग युग के नाम से वाच्य है। ऐसे समय में जबकि चतुर्दिक् प्रतिस्पर्धा का साम्राज्य हो तो कर्महीन व्यक्ति जीवन में सफलता कैसे प्राप्त कर सकता है। अतः आज के युग में तो "चरैवेति-चरैवेति" का मन्त्र एकमात्र श्रोतव्य है, मन्तव्य है। "चरन् वै मधु विन्दति" के अनुसार जिसने गति की है उसे ही प्रगति मिली है। वेदों में मानव को कहीं भी कर्म से विमुख होने का संकेत नहीं है, वहाँ तो "कुवन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेत् शतं समाः" यजु०।४०।२ के अनुसार मानव को स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि लोक में रहते हुए निश्चित ही सर्वथा अपरिहार्य रूप से कर्म करते हुए रहना होगा। आज कर्मक्षेत्र में प्रत्येक को स्वच्छन्द रूप से अपना कौशल प्रदर्शित करने का अधिकार प्राप्त है। वेद में परमात्मा ने एक-एक जीव को उत्थान करने और उद्यम करने का निर्बन्ध अवसर प्रदान किया है, यथा—

अनुहूतः पुनरेहि विद्वान् उदयनं पथः।
आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम्॥ अथर्व०।५।३०।७

उद्यम करते हुए मनुष्य को कभी निराशा के स्वप्न में क्षण नहीं व्यतीत करने चाहिएँ। उसे विश्वास करना चाहिए कि यदि उसके दक्षिण हस्त में कर्म है तो सफलता उसके वाम हस्त में विराजमान है। इसी आशय का एक मन्त्र प्रस्तुत है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः। अथर्व० ७।५२।८

मनुष्य को यह धारणा निर्भ्रान्त रूप में अपने हृदय में बैठानी होगी कि उसके द्वारा विधेय उद्यम कोई अन्य नहीं कर सकेगा। मनुष्य को स्वयं ही अपने कर्मवितान को इतना विस्तृत करना होगा जिसकी छाया में बैठकर, बहुविध विघ्नातप काल में शाँति का श्वास ले सके। यथा— स्वयं वाजिस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व, महिमा तेऽन्येन न संनशे। यजु० २३।१५।

मनुष्य कभी-कभी यत्किञ्चित् उपलब्धि लेकर संतुष्ट होकर कर्मविमुख होने लगता है। ऐसे व्यक्ति के लिए निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा वेद में दी गयी है। मनुष्य को संतोष की निधि उसे अकर्मण्य बनाने के लिए नहीं, अपितु असफल होकर भी निरन्तर कर्मक्षेत्र में अपना कर्मवीरत्व दिखाने के लिए है—

उत्क्रामातः पुरुष माऽव पत्था, मृत्यो पड्वीशमवमुञ्च मानः।
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य सन्दृशः॥ अथर्व०।८।१।४

परमात्मा ने मानव को इस लोक में भेजा ही उन्नति करने के लिए है। अवनति करना मनुष्य का लक्ष्य नहीं है, लक्ष्य है ऊँचा उठना। मनुष्य का सतत् प्रयत्न होना चाहिए कि अवनति से बचकर सदा उन्नत होने का यत्न करे। आलस्य को त्यागकर सर्वथा पुरुषार्थी जीवन बनाए। देहरथ पर सवार होकर, योग्य बनकर, ज्ञानोपदेश करता हुआ स्वयं को भी सुखमय तथा आनन्दमय बनाता हुआ, निरन्तर उन्नति करता रहे। मनुष्य के समीप परमात्मप्रदत्त दक्षता ही ऐसा बल है जिसके आधार पर महान से महान संकट को पार करता हुआ व्यक्ति अपने चरम लक्ष्य की ओर निरन्तर उन्मुख रहता है। यथा—

उद्यानं ते पुरुष नावयानं,
जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आ हिरोहेमममृतं सुखं रथमथ,
जिर्विविदथमा वदासि॥ अथर्व० ८।१।६

जीवन में सौमनस्य—

आज मानव समाज में सौमनस्य की अत्यन्त आवश्यकता है। प्रत्येक मानव का जीवन पारस्परिक सौमनस्य के अभाव में, भौतिकवाद की उन्नत कोटि पर आरूढ़ होता हुआ भी निर्जन वन में भटके राही के समान दीखता है। जब तक मानव एक-दूसरे के प्रति सौमनस्य की भावना का द्वार अनावृत्त नहीं करेगा तब तक मानवता का जीवन में प्रवेश सम्भव नहीं है। आज के युग में,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबकि राग, द्वेष, ईर्ष्या, हिंसा का ही चतुर्दिक् नग्न ताण्डव हो रहा है, ऐसे विकराल काल में वेद के ये मन्त्र ही मानव को जीवन का नवप्रकाश द सकते हैं—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्योऽन्यमभिहर्यत जातं वत्समिवाघ्न्या ॥ अ०।३।३०।१

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥ अ०।३।३०।४

सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येक श्नुष्टीन्त्संवनेन सर्वान् ।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनो वो अस्तु ॥ अथर्व०३।३०।७

अर्थात्, हम सभी परस्पर समान हृदय वाले बनें, द्वेष से सदा रहित रहें, तथा एक-दूसरे से इस प्रकार प्रेम करें जैसे कि गाय अपने नवजात वत्स से प्यार करती है। हम सभी मिलकर यत्न करने वाले बनें। बुद्धिमान व्यक्तियों की तरह अपने उत्तम समाज और राष्ट्र के हितों की रक्षा करें। प्रातः-सायं हमारे मन में शुभ भाव रहें।

समता एवं समष्टि की भावना—

जब मानव व्यक्तिवाद से ऊपर उठकर समष्टि की चिन्तना में अग्रसर होता है तो सहजतया उसमें समता तथा प्राणिमात्र के लिए मित्रता का भाव उद्‌बुद्ध होता है। वेद में इसी समत्वभाव एवं मित्रभाव को मानव में उजागर करने के लिए अत्युत्तम मन्त्र दृष्टिगत होते हैं, जैसे—

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ॥ य०।३६।२८
यांश्च पश्यामि यांश्च नः तेषु मा सुमतिं कृधि ॥ अ० ।१७।१।७

अर्थात्, मैं सभी प्राणियों को मित्रभाव से देखूं तथा मुझे सभी मित्रभाव से देखें। हम सभी मानव समान हैं। हममें न कोई छोटा है तथा न ही कोई बड़ा। परमात्मा ने हम सबको समान रूप में उन्नति के लिए मानव जीवन प्रदान किया है, जब तक हम सभी में समभाव नहीं रखेंगे तब तक जीवन में सरसता का आदान सम्भव नहीं है। वेद में इसी भाव को इस प्रकार प्रकट किया गया है—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय ॥ ऋ० ।५।६०।५
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ऋ०।१०।१९।१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारस्परिक सहयोग—

मानव जीवन एक-दूसरे के सहयोग पर निर्भर है। चाहे व्यक्ति हो या राष्ट्र, सभी एक-दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। सहयोग को यदि मानव जीवन से निकाल दें तो शायद कोई भी व्यक्ति उन्नति न कर सके। क्योंकि हर व्यक्ति के उत्थान में किसी न किसी अन्य का सहयोग अवश्य रहा है। वेद में संसार को एक पथरीली नदी के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसका प्रवाह सवेग है, ऐसी संसार-नदी को एक-दूसरे की सहायता लेते हुए, सखा भाव से पार करने का उपदेश दिया गया है। मन्त्र इस प्रकार है—

अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः।
अत्रा जहीमोऽशिवायेऽसञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभिवाजान्॥ यजु०। ३५।१०

मनुष्य, मनुष्य के लिए है, उसकी उपलब्धि केवल उसके ही लिए नहीं अपितु समग्र मानव जाति के लिए है। इसीलिए वेद मंत्र में कहा गया है कि एक मनुष्य जब उन्नत हो जाए तब वह दूसरों को उन्नति के लिए प्रेरित करे—

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशोमर्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथ॥ ऋ०। १।६।३

मानव-कल्याण की भावना—ऋग्वेद में कहा गया है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की हर सम्भव प्रयास से रक्षा करे :

पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः॥ ऋ०। ६।७५।१४

वर्तमान युग में मानव कल्याण के विषय में राष्ट्रिय स्तर एवं विश्व-मंचीय स्तर पर अनेक प्रकार से कार्य हो रहा है। तथापि मानव जीवन से वे मूल्य खिसकते-से दीखते हैं जिनका कि जीवन से अटूट सम्बन्ध होना चाहिए। इसका कारण है कि मनुष्य के निर्माण में कहीं मूल में कमी है। आज मानव सब कुछ बनना चाहता है।

ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में वह ऊँची-से-ऊँची उड़ान भरकर व्योम-व्यापी अभ्युदय को प्राप्त करता है, किन्तु वह एक उन्नत कोटि का मानव भी बने इसके लिए किंचितमात्र भी प्रयास नहीं किया जाता। वैज्ञानिक अभ्युदय निःसन्देह मानव कल्याण के लिए है किन्तु तब तक, जब तक कि मानव वैज्ञानिक होने के साथ-साथ मानव-धर्म की आराधना करता हुआ हर क्षण एक अच्छा मानव बनने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी प्रयत्न करता हो। वेद "मनुर्भव" कहकर मानव बनने का कितना सुन्दर विचार प्रस्तुत करता है—

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि,
ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्।
अनुल्बलवणं वयत जोगुवामपो
मनुर्भव जनमा दैव्यं जनम्॥
ऋ०।१०।५३।६

इस प्रकार वेद में जीवन-मूल्यों के प्रति अनेक प्रकार से विचार प्राप्त होते हैं। आधुनिक जगत के वे ही जीवन मूल्य हैं जो वैदिक ऋषियों ने अपनी सूक्ष्मेक्षिका से परिदृष्ट किए थे। आवश्यकता है उन जीवन मूल्यों के यथार्थ स्वरूप को समझने की तथा जीवन में विधिवत् रूप से संजोने की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

151379

प्राचीन भारत में तकनीकी शिक्षा

डा० अशोक कुमार सिन्हा,
श्री शैलेन्द्र तायल एवं सुश्री रेनू तायल
फिरोज़ गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायबरेली

प्राचीन भारत उच्चकोटि के विज्ञान और तकनीक के लिये प्रसिद्ध था। प्राचीन भारत की तकनीकी शिक्षा को जानने के लिये उस समय की सामान्य शिक्षा को भी जानना आवश्यक है।

४००० वर्ष पूर्व सिन्धु घाटी के मोहनजोदड़ो स्थान से प्राप्त मिट्टी की मोहरों पर उस समय की लिपि में कुछ लिखा मिलता है लेकिन यह लिपि आज तक पढ़ी नहीं जा सकी है। हड़प्पा सभ्यता के खण्डहरों से प्रतीत होता है कि उस समय के नगर, भवन तथा सड़कें निर्धारित योजना के अनुसार बनाये जाते थे। भवन निर्माण पक्की ईटों से होता था, आदि। इससे ज्ञात होता है कि हड़प्पा सभ्यता में तकनीकी का उच्च स्तर था।

ऋग्वेद से पूर्व भारतीय शिक्षा-सभ्यता का कोई क्रमिक इतिहास नहीं मिलता। यद्यपि ऋग्वेद से पूर्व भारत में द्रविण सभ्यता का विकास हो चुका था किन्तु इसके अन्तर्गत शिक्षा प्रणाली का कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं है। इसलिये शिक्षा का आरम्भ ऋग्वैदिक काल से ही माना जाता है।

व्यवस्थित साधन के अभाव में ऋग्वैदिककालीन शिक्षा मौखिक रूप से दी जाती थी। धर्म का साक्षात्कार करने वाले ऋषियों ने उपदेश के द्वारा मन्त्रों को प्रदान किया।

साक्षात्कृत-धर्माण ऋषयो बभूवः।
तेडवरेम्यो साक्षात्कृत धर्मभ्यः उपदेशेन मन्त्रान सम्प्रादुः ।। (निरुक्त ।१।२०)

यह ज्ञान रक्षित करके आगे की सन्तति को हस्तान्तरित किया जाता था। वदिककालीन परिवार-स्कूलों का इसी प्रकार सूत्रपात हुआ। ऋग्वैदिक काल में शिक्षा सुसंगठित तथा नियमित विद्यालयों में नहीं दी जाती थी। विद्यार्थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुलों अथवा आश्रमों में गुरुचरणों में बैठकर, वेदमन्त्रों को उपदेश के रूप में सुनकर कंठस्थ करता था और अपनी स्मृति में स्थायी करता था। विद्यार्थी को ब्रह्मचारी कहा जाता था। इस प्रकार गुरु तथा शिष्य की परम्परा से शिक्षा पीढ़ी-दर-पीढ़ी श्रुतजीवी होकर आगे बढ़ी। ऋग्वैदिक काल में तकनीकी शिक्षा का उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु इसमें तत्कालीन ज्ञान और विचारधारा बीज-रूप में निहित थे।

उत्तरवैदिक काल में शिक्षा के क्षेत्र में विकास हुआ। ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद आदि ग्रन्थों का ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होने लगा। इस काल में लेखनकला का आरम्भ हो गया था।

क्रमशः बृहत् ज्ञानराशि को संक्षिप्त रूप में समझने के लिये सूत्र-ग्रन्थों की रचना हुई। सूत्रों द्वारा विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी।

उत्तरवैदिककाल में शिक्षा वर्णानुसार दी जाने लगी। ब्राह्मण को मुख्य रूप से वेदों के पठन-पाठन की शिक्षा दी जाती थी। क्षत्रियों के लिए 'धनुर्वेद' का अध्ययन अनिवार्य था। देश की रक्षा के लिये उन्हें सैनिक शिक्षा में प्रवीण कराया जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजकुमारों की शिक्षा के लिये चार विद्याओं का उल्लेख मिलता है :—

१—अन्विक्षकी अर्थात् सांख्ययोग तथा लोकायत का ज्ञान।

२—वेदों का अध्ययन।

३—वार्ता—इसमें कृषि, पशुपालन तथा व्यापार का ज्ञान कराया जाता था।

४—दण्डनीति—दण्डनीति में शासन, कानून तथा राजनीति का ज्ञान कराया जाता था।

विशेष विद्याओं के लिये विशेष वर्ण-व्यवस्था थी। वैश्यों को कृषि, पशुपालन तथा व्यापार की शिक्षा दी जाती थी। इसके लिये गणित, साधारण भूगोल, कृषि, विज्ञान, अच्छे-बुरे क्षेत्रों का ज्ञान तथा खेत में प्रयुक्त खाद आदि का ज्ञान दिया जाता था। विद्यार्थी यह शिक्षा प्रधानतः अपने पिता से प्राप्त करता था।

शूद्रों के लिये उच्च शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी। देश के आर्थिक विकास के लिये उन्हें विशेष रूप से हस्तकलाओं की शिक्षा दी जाती थी। कताई, बुनाई, वस्त्रों की छपाई का कार्य, अस्त्र-शस्त्र बनाना, औजार बनाना, रथ बनाना आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शिक्षा दी जाती थी। ये विद्याएँ घरेलू रूप से वंशपरम्परा द्वारा ही सीखी जाती थीं। इसके अतिरिक्त इन विद्याओं को सिखाने के लिये नारद जैसे शिक्षकों का भी उल्लेख मिलता है।

६००-५०० ईसा पूर्व में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। बौद्ध काल में शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त विकास हुआ। बौद्धकालीन शिक्षा "निवृत्ति प्रधान" थी। मठ, मन्दिर, गुरुकुल तथा बुद्धविहार शिक्षण-संस्थाओं के रूप में थे। विद्यार्थी "बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि तथा संघं शरणं गच्छामि का उच्चारण करके शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश करता था। पाठ्यक्रम दो स्तरों में विभक्त किया गया था। (१) उच्च शिक्षा तथा (२) प्रारम्भिक शिक्षा। उच्च शिक्षा के अन्तर्गत वेद, आयुर्वेद, दर्शन, धर्म, इतिहास, पुराण, काव्य, शब्द-विद्या, व्याकरण, ज्योतिष, सामूहिक विद्या, शकुन विद्या, योग नक्षत्र तथा तन्त्र आदि विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी। प्रारम्भिक शिक्षा के अन्तर्गत लिखना, पढ़ना, साधारण गणित तथा धार्मिक आचरण आदि की शिक्षा दी जाती थी।

इस काल में प्रयोगात्मक रूप से प्रशिक्षण आरम्भ हो गया था। लेखन-कला का भी पर्याप्त प्रचार हुआ। आचार्य देशाटन द्वारा शिक्षा का प्रसार करते थे। ये आचार्य "चरक" कहलाते थे।

युज्युलांह्यमानि मद्रदेश में "चरक" बनकर विचरता रहा।

अथ हैन युज्युलांह्यमानिः प्रपच्छ याज्ञवल्क्योति।
होवाय मद्रेषु चरकाः पर्यव्रजाम ॥ (बृहदारण्यक उपनिषद ३३१)

अध्ययन, अध्यापन तथा तद्विद्यसम्भाषा ज्ञानप्राप्ति के उपाय थे।

तत्रोपायानुभ्याख्यास्यामः अध्ययनम् अध्यापनम् तविद्यसभाषा चेत्युपायाः।

शनैः-शनैः बौद्धकाल में मठों तथा गुरुकुलों ने विश्वविद्यालयों का रूप धारण कर लिया था। तक्षशिला तथा नालन्दा प्रसिद्ध शिक्षा के केन्द्र थे। तक्षशिला "चिकित्सा" के प्रशिक्षण के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध था। यहाँ के आचार्य "आत्रेय" आयुर्वेद के ज्ञान के लिये प्रसिद्ध थे। इसके अतिरिक्त यहाँ वेद, अष्ठादश विद्यायें (अठारह प्रकार के शिल्प), ज्योतिष, कृषि आदि अनेक विषयों का विशेष रूप से अध्ययन कराया जाता था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि बनारस विद्यालय के विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये तक्षशिला जाते थे। इस विश्वविद्यालय में महान वैयाकरण पाणिनि, सुप्रसिद्ध वैद्य जीवक, अर्थशास्त्र के प्रणेता कौटिल्य, मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त आदि विभूतियों ने शिक्षा प्राप्त की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नालन्दा विश्वविद्यालय "बौद्ध संस्कृति" का केन्द्र था। धर्मपाल, चन्द्रपाल, गुणमति, शीलभद्र आदि यहाँ के सुप्रसिद्ध आचार्य थे। सर्वोपरि आचार्य "कुलपति" कहलाता था।

मौर्यकाल में शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति हुई। देशाटन द्वारा शिक्षा का प्रसार तथा प्रचार किया गया। "कनिष्क" के काल में "शिल्पकला" की शिक्षा को प्रोत्साहन मिला।

गुप्तकाल में विज्ञान, साहित्य तथा व्यापार, कलाकौशल आदि सभी क्षेत्रों में पर्याप्त प्रगति हुई। गुप्तकाल में तकनीकी शिक्षा को विशेष रूप से प्रोत्साहन मिला। प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति करने के कारण गुप्तकाल को "स्वर्णयुग" कहा जाता था।

प्राचीन भारत में आयुर्वेद (चिकित्साशास्त्र) का पर्याप्त विकास हुआ। "अथर्ववेद" चिकित्साशास्त्र का भारत का सर्वप्रथम ग्रन्थ है। इसमें बहुत-सी जड़ी-बूटियों का विभिन्न प्रकार के रोग निवारण के लिये उल्लेख है। विषकोढ़, सर्पदंश, ज्वर, पाण्डु, सन्निपात, रक्तविकार आदि भयंकर रोगों की चिकित्सा के लिये जड़ी-बूटियों के प्रयोग किये जाने का उल्लेख है। अथर्ववेद को "तान्त्रिक ग्रन्थ" भी कहा गया है क्योंकि इसमें उन मन्त्रों का सन्निवेश है जिनके द्वारा पुरोहित शत्रु, हिसक पशु, भयंकर रोग तथा प्राकृतिक उत्पातों के विरुद्ध उनके विनाश के लिये आह्वान करते थे।

आयुर्वेद अथर्ववेद का उपांग वेद है। आयुर्वेद को "अष्टांग वेद" भी कहा गया है।

तस्यायुर्वेदस्यांगन्यष्टौ तद्यथा, कायचिकित्सा, शालात्रयं, शल्यापहर्तृक
विषगदवैरोधिक प्रशमनं, भूतविद्या कौमारभृत्यकं रसायन वाजीकरणमिति।

अर्थात् आयुर्वेद में कायचिकित्सा, शल्यचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगद, रसायन तथा वाजीकरण विद्या का उल्लेख है।

उत्तरवैदिक काल में आयुर्वेदीय शिक्षा का विकास हुआ। शिक्षक के द्वारा आयुर्वेदीय ग्रन्थों के पदों तथा श्लोकों का धीरे-धीरे पाठ कराया जाता था।

पदं पादं श्लोकं वा ने च पदपाद श्लाका भूय
क्रमेणनुसंधेया··········स्वेरे पठेत। (सुश्रुत संहिता ३।५४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद के विभिन्न विभागों का पृथक्-पृथक् अध्ययन कराया जाता था। एक विभाग के विद्यार्थी परामर्श तथा व्यावहारिक ज्ञान से शिक्षा प्राप्त करते थे। एक चिकित्सक के लिये "बहुश्रोता" होना आवश्यक था, अर्थात् जब तक उसे अनेक विद्वानों से ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता था तब तक उसे सफलता नहीं मिलती थी।

"एकं शास्त्रंमधीमानां न विद्याच्छास्त्रनिश्चमम् ।
तस्मादबहुश्रुतः शास्त्रं विजानीयात् चिकित्सकः ॥
(सुश्रुत संहिता ४, ६-७)

विद्यार्थी को चिकित्सा सम्बन्धी दस कलाओं की शिक्षा दी जाती थी, जैसे पुष्प के रस और दूसरे विषैले द्रव्यों का बनाना, शल्य चिकित्सा, भोजन बनाना, फलों का उपयोग, धातु विज्ञान, शक्कर बनाना, औषधियाँ बनाना, मेटाबालिक (उयापचयी), कम्पाण्डड्स (यौगिकी) का पृथक्कीकरण, धातुओं से संयुक्त मिश्रण बनाना, क्षारीय पदार्थों को तैयार करना।

शास्त्र तथा प्रयोग दोनों का ज्ञान अनिवार्य था। आरम्भ करने वाले विद्यार्थी को सर्वप्रथम औजारों को पकड़ना और उनका प्रयोग बताया जाता था। इनका प्रयोग विद्यार्थी खीरा, तरबूज तथा खरबूजे पर शिक्षक के निरीक्षण में करते थे। छेदन कार्य, मृतक पशुओं की शिराओं पर करके दिखाया जाता था। छुरी पकड़ना अलावू के फलों पर, चर्मछीलन खाल के तालदार सूखे टुकड़ों पर, पट्टी बाँधना भूसा भरी मनुष्य की आकृतियों पर तथा जलाने वाले रसायन का प्रयोग मांस के कोमल टुकड़ों पर सिखाया जाता था। घाव में से छुरी खींचना, घाव साफ करना तथा शरीर के रुग्ण भाग को चाकू द्वारा छेदन अथवा काटने की भी शिक्षा दी जाती थी। मृतक मानव-शरीरों को चीड़-फाड़ करके देखा जाता था। केवल पुस्तक के द्वारा शल्यशास्त्र का ज्ञान पर्याप्त नहीं था (सुश्रुत संहिता १, ३-६)। बौद्धकाल में जीवक नामक प्रसिद्ध वैद्य ने तक्षशिला में चिकित्सा शिक्षा प्राप्त की। तक्षशिला विश्वविद्यालय चिकित्सा के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध था।

उत्तरोत्तर चिकित्सा शिक्षा में प्रगति होती गयी। व्यक्तिगत रूप से शिक्षा दी जाने लगी। चिकित्सा सम्बन्धी विषय पर विचार करने के लिये संगोष्ठियाँ तथा सम्मेलन होने लगे। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में "चरक-संहिता" तथा "सुश्रुत संहिता" सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ थे। प्राचीन भारत में धन्वन्तरी, भारद्वाज, आत्रेय, जीवक, पतंजलि, चरक, सुश्रुत तथा बाणभट्ट आदि प्रसिद्ध चिकित्सा-शास्त्री थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार आयुर्वेदीय शिक्षा के द्वारा वनस्पतिविज्ञान, प्राणिविज्ञान, रसायनविज्ञान, जन्तुविज्ञान, शल्यविज्ञान तथा फार्मेसी की शिक्षा दी जाती थी।

प्राचीन भारत में पशु चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा का भी उल्लेख मिलता है। 'सालिहोत्र' प्रसिद्ध पशु चिकित्सक थे। अश्व रोगों की चिकित्सा में पाण्डव-बन्धु नकुल तथा सहदेव भी दक्ष माने जाते थे। प्राचीन भारत में पशु-चिकित्सा के प्रशिक्षण के लिये नियमित विद्यालयों का उल्लेख नहीं मिलता है। सम्भवतः विद्यार्थी परम्परागत ज्ञान को निपुण व्यक्तियों को शिष्यता स्वीकार करके प्राप्त करते रहे होंगे।

उत्तरवैदिककाल से सैनिक शिक्षा के प्रशिक्षण के भी संकेत मिलते हैं। 'धनुर्वेद' सैन्य शिक्षा का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। धनुर्वेद में उल्लेख है कि विद्यार्थी का उपनयन संस्कार किया जाता था। उसे एक अस्त्र देकर वेदमन्त्र का उच्चारण कराया जाता था। सैनिक शिक्षा का प्रशिक्षण विशेष रूप से क्षत्रियों को दिया जाता था।

ततो द्रोणः पाण्डुपुत्रां मन्त्राणि विविधानि च।
द्रोण संकीर्ण युध्ये च शिक्षयाम स कौरवान ।। (महाभारत आ०प० ११८)

शूद्रों को सैनिक शिक्षा का प्रशिक्षण नहीं दिया जाता था। महाभारत में उल्लेख है कि प्रसिद्ध शिक्षक द्रोणाचार्य ने शूद्र बालक एकलव्य को सैनिक शिक्षा का प्रशिक्षण देने के लिये अस्वीकार कर दिया था।

रामायण में 'दशरथ' के पुत्रों को विद्यार्थी-काल से ही सैनिक शिक्षा प्राप्त करने का उल्लेख है।

पिता दशरथौ दृष्टो ब्रह्मा लोकाधियों यथा
ते चापि मनुज व्याघ्रा वैदिकाध्ययने रतः
पितृ सुश्रवणरता धनुर्वेद च निष्ठिताः (रामायण बालकाण्ड अ० १८)

सैनिक शिक्षा न केवल राज्य द्वारा दी जाती थी अपितु व्यक्तिगत रूप से भी दी जाती थी। प्रातः प्रत्येक गाँव में शिक्षण-शिविर होते थे। जहाँ ग्राम-वासियों को आत्मरक्षा के लिये शिक्षित किया जाता था। इसके अतिरिक्त सैन्य शिक्षा के प्रशिक्षण के लिये नियमित केन्द्र भी थे। तक्षशिला ऐसा नगर था जहाँ भिन्न-भिन्न भागों से एकत्रित होकर विद्यार्थी सैन्य शिक्षा प्राप्त करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें उस समय युद्ध में प्रयुक्त होने वाले धनुष-बाण, तलवार, गदा, भाला तथा ढाल आदि विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोगों को सिखलाया जाता था। रथ-युद्ध, गजयुद्ध अश्वयुद्ध आदि के भिन्न-भिन्न तरीकों को बतलाया जाता था।

बौद्ध काल में अहिंसा धर्म के अनुयायियों के कारण सैनिक शिक्षा के प्रशिक्षण में कोई प्रगति नहीं हुई।

गुप्तकाल में सैनिक शिक्षा के प्रशिक्षण को पुन: प्रोत्साहन मिला। अधिक संख्या में विद्यार्थी सैनिक शिक्षा का प्रशिक्षण प्राप्त करने लगे।

ऋग्वैदिक काल से ही ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान की शिक्षा के संकेत मिलते हैं। यद्यपि ऋग्वेद में ज्योतिष सम्बन्धी संकेत अनिश्चित से हैं किन्तु उसमें भी वर्ष के बारह महीने तथा मास के तीस दिनों का वर्णन मिलता है।

वैदिक यज्ञों की विधियाँ सम्पन्न करने के लिये ऋतु, अयन, दिनमान, लग्न आदि के शुभाशुभ के लिये उत्तरवैदिककाल में ज्योतिष का ज्ञान अनिवार्य समझा जाने लगा। ज्योतिष की अनिवार्यता के कारण इसे षड्वेदांगों में स्वतन्त्र स्थान प्राप्त हुआ।

ज्योतिष का ज्ञान गुरु-शिष्य तथा प्रशिष्यों की परम्परा से दिया गया। विद्यार्थी को सर्वप्रथम दिन, रात, पक्ष, मास तथा वर्ष का ज्ञान कराया जाता एवं फिर धीरे-धीरे गृह, नक्षत्र तथा ऋतुओं के विषय में शिक्षा दी जाती थी।

वेदांग साहित्य में सर्वप्रथम "लगध कृत" वेदांग ज्योतिष नामक कृति उपलब्ध है। वेदांग ज्योतिष के दो पाठ उपलब्ध हैं—ऋग्वेद ज्योतिष तथा यजुर्वेद ज्योतिष। उत्तरवैदिककाल में ज्योतिष की शिक्षा का पर्याप्त विकास हुआ क्योंकि सम्पूर्ण वैदिक विधियों को समझने के लिये ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य था।

बौद्ध काल में ज्योतिष शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया क्योंकि "बौद्ध-धर्म फलित ज्योतिष को तथा अंशत: गणित ज्योतिष को बहुत हीन दृष्टि से देखता था।" दीर्घ निकाय १, ६८।

जब बौद्ध काल का ह्रास होने लगा, गुप्तकाल में हिन्दू धर्म का उत्थान हुआ तथा यवनों के ज्योतिष का भी भारतवर्ष में आगमन हुआ तब भारतीय ज्योतिष के अध्ययन-अध्यापन को प्रोत्साहन मिला जिसके फलस्वरूप विक्रम की छठीं शताब्दी में इस विज्ञान के अनेक विद्वान उत्पन्न हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिषविद् आर्यभट्ट सर्वप्रथम आचार्य थे, जिनके आर्यभट्टीय ग्रन्थ के चार भाग हैं—गीतिकापाद, गणितपाद, कालक्रियापाद तथा गोलापाद।

कालक्रिया तथा गोलापाद में ज्योतिष सम्बन्धी विषयों पर विचार किया गया है। गुप्तकाल में ज्योतिष की शिक्षा में पर्याप्त विकास हुआ। इस काल में अनेक ज्योतिष यन्त्र जैसे शंकु (पृथ्वी नापने के लिये), छेदक यन्त्र, उन्नतांश मापक तथा जल-घड़ी (समय नापने के लिये) आदि का उल्लेख मिलता है। गुरु स्थिर बुद्धि वाले शिष्यों को इन यन्त्रों का प्रयोग करना सिखलाते थे। शिष्य प्रयोग करने के तरीकों को सीखकर इन यन्त्रों को बनाते भी थे।

उस समय आर्यभट्ट कृत "दशगीतिका", वराहमिहिर कृत "वृहत्संहिता" तथा "पंचसिद्धान्तिका" तथा ब्रह्मगुप्त कृत "ब्रह्मसिद्धान्त" ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ थे।

ऋग्वैदिककाल से ही गणित सम्बन्धी शिक्षा के स्रोत मिलते हैं। उस समय लोगों को छोटी-से-छोटी तथा बड़ी संख्या गिनने की विधि बतायी जाती थी। जोड़, घटाना, गुणा, भाग आदि अंकगणित के मौखिक तत्वों का ज्ञान कराया जाता था।

शूल्वसूत्रों द्वारा रेखागणित की शिक्षा दी जाती थी। शूल्वसूत्र भारतीय रेखागणित से सम्बन्धित प्राचीनतम ग्रन्थ है। इन सूत्रों के द्वारा वर्ग, त्रिकोण, वृत्त तथा विभिन्न कोणों को बनाना सिखाया जाता था। यज्ञ की वेदी तथा उनकी ईटों को नापने की रीति समझायी जाती थी।

चतुर्भुज के बराबर क्षेत्रफल वाला वर्ग बनाने की विधि, दो वर्गों के क्षेत्रफल के बराबर क्षेत्रफल वाला वर्ग बनाने की विधि, आयत से समचतुर्भुज बनाने की विधि तथा वर्ग से वृत्त बनाने की विधि समझायी जाती थी।

ज्यामितीय सिद्धान्त, जैसे एक सरल रेखा को कितने समान भागों में विभाजित किया जा सकता है, आदि का ज्ञान कराया जाता था। विकर्ण से वर्ग बनाने की विधि का भी ज्ञान कराया जाता था। इस प्रकार उत्तरवैदिककाल से रेखागणित की शिक्षा का पर्याप्त विकास हुआ।

बौद्ध काल में गणित की शिक्षा में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। पुनः गुप्तकाल में गणित की शिक्षा को बल मिला। आर्यभट्ट प्रथम आचार्य हुये जिन्होंने अपने ज्योतिष सिद्धान्त ग्रन्थ में अंकगणित, बीजगणीत तथा रेखागणित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कठिन प्रश्नों को तीस श्लोकों में लिखा। इन श्लोकों के द्वारा वर्ग का क्षेत्रफल निकालने की विधि, घनफल, वर्गमूल, त्रिभुज का क्षेत्रफल निकालने की विधि, शंकु का घनफल एवं सब प्रकार के क्षेत्रों की लम्बाई और चौड़ाई जानकर क्षेत्रफल ज्ञात करने की विधि बतायी थी। इस प्रकार गुप्तकाल में गणित की शिक्षा का पर्याप्त विकास हुआ। वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, श्रीधर तथा पद्मगुप्त प्रसिद्ध प्राचीनतम गणितज्ञ थे।

प्राचीन दर्शन ग्रन्थों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि दार्शनिक तत्वों की भूमिका में भौतिकशास्त्र सम्बन्धी तत्त्व भी निहित थे। दर्शन ग्रन्थों के द्वारा विद्यार्थी को एकत्व का सिद्धान्त, त्रिगुणात्मक प्रगति, परमाणुवाद तथा गतिशीलता, प्रकाश तथा उसके विश्लेषण का ज्ञान कराया जाता था। कणाद, कपिल, प्रशस्तवाद तथा गौतम प्राचीनकाल के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान थे।

ऋग्वैदिककाल से ही हस्तकलाओं के ज्ञान के भी संकेत मिलते हैं। कातना, बुनना, नौका निर्माण, गृह निर्माण, वस्त्र बुनना, चर्मकार्य, स्वर्णकार्य, काष्ठकार्य, रथ निर्माण, सीना, धोना, हल चलाना आदि अनेक शिल्पकलायें ऐसी थीं जिनके द्वारा मनुष्य अपना जीवनयापन करता था। ऋग्वैदिककाल में शिल्पकलाओं के शिक्षण के लिये नियमित तथा सुसंगठित विद्यालय नहीं थे। विद्यार्थी इस उद्यम को करने वाले व्यक्ति के पास जाकर बहुत दिनों तक उसकी शिष्यता स्वीकार करता था, इस प्रकार वह व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करके कुशलता प्राप्त कर लेता था। क्रमशः यह हस्तकलायें जातिगत हो गयीं जो पिता से पुत्र को दी जाने लगीं।

उत्तरवैदिककाल में वर्णानुसार शिक्षा की व्यवस्था हुई। इसके अनुसार मुख्य रूप से शूद्र वर्ण को कताई-बुनाई, अस्त्र-शस्त्र बनाना, वस्त्रों की छपाई-रंगाई, रथ-निर्माण आदि की शिक्षा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त बालक को, अभिभावकों की अनुमति से, हस्तकलाओं को स्वयं चुनने की भी स्वतन्त्रता थी। कारीगरों के कार्यालय में, उनके संरक्षण में, विभिन्न हस्तकलाओं की शिक्षा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त सामूहिक रूप से भी श्रेणी संस्थाओं द्वारा कलायें सिखायी जाती थीं। भिन्न-भिन्न व्यवसायों की भिन्न श्रेणियाँ थीं।

एकेनशिल्पेन पण्येन वा ये जीवन्ति तेषां समूहाश्रेणी। (पाणिनि १३)

स्मृतियों में कृषक श्रेणी, ग्वाल श्रेणी, चित्रकार श्रेणी आदि का उल्लेख मिलता है। यह कला तथा कारीगरी के विद्यालय थे जहाँ विभिन्न व्यवसायों की शिक्षा दी जाती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्धकाल में औद्योगिक तथा व्यवसायिक शिक्षा के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई। कताई, बुनाई, सिलाई आदि के प्रशिक्षण की व्यवस्था मठों के भिक्षुओं के लिये भी थी। तक्षशिला में १८ प्रकार के शिल्प, जैसे आयुर्वेद, शल्य क्रिया, कृषि, रथ-संचालन नागवशीकरण आदि की शिक्षा दी जाती थी।

मौर्यकाल में हस्तकलाओं की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उल्लेख है कि इस काल में समस्त कलाओं और हस्तकलाओं पर केन्द्रीय नियन्त्रण था। विभिन्न व्यवसायों के अध्यक्षों द्वारा विभिन्न व्यवसायों की शिक्षा दी जाती थी तथा धातुओं का ज्ञान कराया जाता था। कर्मशालाओं में विद्यार्थी को यन्त्र बनाने का भी प्रशिक्षण दिया जाता था। गुप्तकाल में इन हस्तकलाओं की शिक्षा में विशेष प्रगति हुई और ये हस्तकलायें अपनी चरम सीमा पर पहुँच गईं।

प्राचीन भारत में वास्तुनिर्माण, स्थापत्य, शिल्पकारी तथा चित्रकला का भी विकास हुआ। हड़प्पा सभ्यता की खुदाई से प्राप्त भवन, बड़े-बड़े स्नानागार, कमरे आदि के भग्नावशेष से तत्कालीन वास्तुनिर्माण कला के विकास का पता चलता है। इन कलाओं की शिक्षा भी परम्परागत, वर्णानुसार कार्यालय, कारखानों, श्रेणी संस्थाओं, नियमित केन्द्रों (तक्षशिला) तथा व्यवसाय-अध्यक्षों द्वारा दी जाती थी।

बौद्धकाल से उत्तरोत्तर वास्तुनिर्माण कला की शिक्षा में प्रगति होती गयी। नालन्दा, विक्रमशिला के विश्वविद्यालय, स्तूप, बौद्ध भिक्षुओं के भवन, बुद्ध विहार, चैत्य, अशोक के स्तम्भ, मेहरौली का लौह स्तम्भ, भवन निर्माण कला तथा गुप्तकाल के मन्दिर (ललितपुर जिले में देवगढ़ का दशावतार मन्दिर आदि) वास्तुनिर्माण कला के उत्कृष्ट ज्ञान के बोधक हैं। मौर्यकाल से स्थापत्य तथा चित्रकारी की कला के विकास का स्पष्ट पता चलता है। उससे पूर्व इन कलाओं के संकेत अवश्य मिलते हैं। अशोक स्तम्भ के ऊपर बने सिंहों की मूर्तियाँ (जो अब सारनाथ के संग्रहालय में हैं), बौद्ध स्तूपों की पथरीली चहारदीवारी तथा उसमें बने हुये तोरणों पर खुदे हुये चित्र, अजन्ता, एलोरा, बाघ (मालवा) तथा उदयगिरि की गुफाओं में की गयी चित्रकारी आदि स्थापत्य कला तथा चित्रकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

उपरोक्त विवरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत प्राविधिक ज्ञान की बहुमूल्य निधि है। प्राविधिक शिक्षा के विकास के लिए प्राचीन भारत के साहित्य का वृहत् अध्ययन तथा विभिन्न विषयों में शोधकार्य बहुत आवश्यक है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर हिन्दू धर्म सुधारकों ने भारत में गुरुकुल प्रणाली तथा ब्रह्मचर्य के पुनर्जागरण के लिये बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में गुरुकुलों की स्थापना की थी। जैसे गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) तथा बृन्दावन गुरुकुल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चशिखाचार्य

—डा० निगम शर्मा
रीडर-अध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

शास्त्र उनके लिए हैं जो सत्त्व की उत्तमता की ओर उन्मुख हैं। संसार का विष-वेग तभी तक मनुष्य को पीड़ित तथा प्रभावित करता है जब तक कि कैवल्यरूप गरुड़-मंत्र हाथ नहीं लगता। विवेक-ख्याति से प्राप्त तत्त्व-ज्ञान चित्त को अयस्कान्त मणि के तुल्य स्वच्छ तथा निरातङ्क बनाता है। इसी ज्ञान से ज्ञान में प्रसन्नता और निर्वाण-प्रीति प्राप्त होती है। आकार, शील, चेतना आदि से पृथक् होकर तब मनुष्य आत्म-भाव को प्राप्त हो जाता है। यही पुरुष का परम प्रयोजन है।

इस प्रकार का ज्ञान-संकेत देने वाले आचार्य पंचशिख हैं। ये कब, कहाँ पैदा हुए यह बताना दुष्कर कार्य है क्योंकि अन्य वसिष्ठ, कपिल, असित, शाण्डिल्य आदि ऋषियों के समान आचार्य पंचशिख भी बहुत पौराणिक हो चुके हैं। 'हर विजय' महाकाव्य के प्रणेता महाकवि रत्नाकर इनका एक नाम चूलिक बताते हैं। ऐसी किंवदन्ती है कि सृष्टि-प्रक्रिया सम्बन्धी उपदेशों में ये प्रायः चूड़ी का दृष्टान्त दिया करते थे। अर्थात् जिस प्रकार चूड़ी जिस क्रम से पहनी जाती है, उसके उल्टे क्रम से उतारी जाती है। सबसे पीछे पहनी गयी चूड़ी सबसे पहले उतरेगी। उसी प्रकार यह सृष्टि का क्रम भी समझा जाय। इस प्रक्रिया में पृथ्वी का निर्माण सबसे अन्त में हुआ, अतः पृथ्वी का प्रलय पहले होगा। फिर जल, अग्नि, वायु आदि क्रमशः अपनी तन्मात्राओं में प्रलीन होंगे। इन्द्रियों के साथ तन्मात्राएँ अहङ्कार में तथा अहङ्कार इन सबके साथ महत् तत्त्व में तथा महत् तत्त्व प्रकृति में प्रलीन होगा।

'हर विजय' महाकाव्य ६-१८ पर वह श्लोक इस प्रकार पठित है—

प्रकृतेः पृथग् विकृति शून्यतां गतः प्रतिषिद्ध वस्तुगत धर्म निष्क्रियः।
पुरुष स्त्वमेव पंचविंशकः स्फुट चूलिकार्थं वचनैर्निगद्यसे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि रत्नाकर ने काव्य-प्रतिभा के साथ प्रकृति से पृथक्, विकृति से शून्य पंचविंशक पुरुष को समझाने के लिए चूलिक आचार्य की प्रशंसा की है। पौराणिक स्तवन में भी चूलिक या चूली की प्रशंसा की गयी है :

एतस्मिन्नेव काले तु चूली नाम महाद्युतिः ।
ऊर्ध्वरेताः शुभाचारो ब्राह्मं तप उपागमत् ॥
तपस्यन्त मृषिं तत्र गन्धर्वी पर्युपासते ।
सोमदा नाम भद्रं ते ऊर्मिला तनया तदा ॥ ३३-११,१२

चूली या चूलिक का परिचय काम्पिल्य (कासगंज के पास गंगा के किनारे) से भी रहा होगा जहाँ उन्होंने इस प्राचीन सिद्ध-स्थान पर तप किया हो। इस पौराणिक श्लोक से यह भी पता चलता है कि ऊर्मिला की पुत्री सोमदा इनसे बहुत प्यार करती तथा इनकी देखभाल करती थी। सोमदा को गन्धर्वी कहा गया है। हो सकता है कि यह गान्धार कन्या हो जैसा कि धृतराष्ट्र की सेवा में मग्न गान्धारी के विषय में अनुराग की गाढ़ता को हम जानते हैं। ऐसे अनुराग की बहुत-सी कथायें—शीरीं-फरहाद, लैला-मजनूं, हीर-रांझा के रूप में इस क्षेत्र में प्रभावकारी नाटकीय-सामग्री हैं फिर भी पंचशिखाचार्य के ब्रह्म-दीप्त साधना की ख्याति अब तक व्याप्त है।

आचार्य पंचशिख ने दश मौलिक विषयों को इस प्रकार समझाया है— प्रकृति के विषय में—१- प्रधान की एकता, २- अर्थवत्ता, ३- परार्थता; पुरुष के विषय में—४- अन्यत्व, ५- अकर्तृत्व ६- बहुत्व; पुरुष और प्रकृति दोनों के विषय में—७- अस्तित्व, ८- योग, ९- वियोग तथा१ ०- स्थिति अर्थात् वर्तमानता। यह दोनों प्रकृति और व्यक्त जगत् में—इस प्रकार ये दश मौलिक अर्थ हैं जिनको विविध प्रकार के तर्कों, आख्यानों तथा पर-मत के खण्डन के साथ आचार्य ने समझाया है। इसी विषय को इस प्रकार भी समझाया गया है :

पुरुषः प्रकृति र्बुद्धिरहङ्कारो गुणास्त्रयः ।
तन्मात्रमिन्द्रियं भूतं मौलिकार्थाः स्मृता दश ॥

आचार्य ईश्वर कृष्ण ने भी अपनी कारिका परम्परा में इन दश मौलिक-अर्थों को समझाया है—१-भेदानां परिमाणात्० (१५, १६) से प्रधान (प्रकृति) का अस्तित्व समझाया गया, २-विपरीतमव्यक्तम्० (१०) से प्रकृति का एकत्व सिद्ध किया गया, ३-प्रीत्यप्रीति० (१२) से अर्थवत्ता सिद्ध की गयी, ४-त्रिगुणमविवेकि विषयः (११) से अन्यत्व को दर्शाया गया, ५-नाना विधैरुपायै० (६०) से शेष-वृत्ति, ६-जनन-मनन करणानाम्० (१८) से पुरुष बहुत्व, ७-रंगस्य दर्शयित्वा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५९) से वियोग, ८-संयोग स्तत्कृतः सर्गः (२१) से संयोग, ९-सम्यग् ज्ञानाधिगमात् (६७) से कैवल्य, १०-तद्विपरतिस्तथा च पुमान् (११) से अकर्तृत्व भाव की सिद्धि की गयी है।

इस प्रकार प्रधान प्रतिपाद्य विषय दश हैं। इनमें ५ विपर्यय-भेद, ९ तुष्टियाँ, २८ करणवैकल्य, ८ सिद्धियाँ=यह सब मिलकर ६० होते हैं। इन्हीं तत्त्वों को सामान्य–विशेष रूप से समझाने के कारण इसे षष्टितंत्र कहा गया है। अतत्त्वों से दूर लाकर तथा तत्त्व निकट लाकर तत्त्वदर्शी आचार्य ने मोहग्रस्त मानव का महान् कल्याण किया है। इस षष्टितन्त्र को शास्त्र इस कारण कहा जाता है कि इसमें समग्र विषयों का युक्ति-प्रमाण के साथ विशद् वर्णन है तथा खरे उतरे हुए सिद्धान्त के प्रति अनुशासनात्मक ग्रन्थ है। यद्यपि यह ग्रन्थ लुप्त-प्राय है पर अपने-अपने क्षेत्र के आचार्य इस ग्रन्थ और ग्रन्थकार को अपने ग्रन्थों में संजोये हुए हैं। आचार्य पंचशिख अब भी शास्ता बनकर शासितबुद्धि को अध्यात्म के लिए विशुद्ध तथा उपयोगी बनाते हैं। ऐसा समझा जाता है कि विलोचस्थान, जिसे अब विलोचिस्तान कहा जाता है, यह क्षेत्र इस विषय के प्रचार-प्रसार का महान् क्षेत्र था। काश्मीर, पंजाब, सिन्ध की ओर पाणिनि-व्याकरण, यास्कीय निरुक्त तथा पंचशिखाचार्य के सिद्धान्तों के प्रचार के सूत्र मिलते हैं। महाभारत शान्तिपर्व २२० अध्याय में पंचशिख की बहुत प्रशंसा मिलती है—

आसुरेः प्रथमं शिष्यं यमाहुश्चिर जीविनम् ।
पंचस्रोतसि यः सत्र मासते वर्ष सहस्रिकम् ॥ २२०–१०

पातञ्जल योग-सूत्रों के व्यासभाष्य में बहुत-से आकर्षक सन्दर्भों को आचार्य वाचस्पति मिश्र ने पंचशिखाचार्य के नाम से ही प्रचारित किया है।

संसार के उन सभी लोगों के प्रति खिन्नता व्यक्त करते हुए आचार्य पंचशिख कहते हैं कि इस व्यक्त जगत् को अथवा अव्यक्त कारण-भाव को ही आत्मत्व की प्रतीति से इसकी सम्पदा के साथ जो अपनी आत्म-सम्पदा मानते हैं अथवा इसको विपद के साथ अपनी ही विपदा मानकर जो अपने लोचन में अनुशोचन भरते हैं; वे सबके सब सावधानी से रहित हैं। जब तक पुरुष चेतनत्व, अपरिणामित्व, शुद्धत्व की योजना से अपने आपको बुद्धि से पृथक् नहीं देखेगा तब तक वह मोहग्रस्त ही रहेगा। मोहवान् व्यक्ति के द्वारा किया गया शुभ भी अशुभ से संसृष्ट है परन्तु कुशल व्यक्ति के लिये कहीं भी शोक नहीं क्योंकि उसके विमल-विपुल भंडार में आत्म-रस का अमृत अपना मद भरता रहता है। कैवल्य-सुख का कहीं भी अपकर्ष नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धिवृत्ति यदि अचेतन है तो चेतन के समान काय कैसे करती है ? इसको समझाते हुए आचार्य पंचशिख बतलाते हैं कि भोक्तृशक्ति निर्विकार और निर्लेप है, वह कहीं संक्रान्त नहीं होती पर विकार ग्रहण करने वाली बुद्धि में प्रतिसंक्रान्त होती है। इस चेतन्य से अनुग्रहीत हुई बुद्धि चेतनवत् चेष्टा करने लगती है। इस प्रकार बुद्धिवृत्ति तथा ज्ञानवृत्ति परस्पर संश्लिष्ट रहने से ज्ञानवृत्ति (पुरुष) अपने को भोक्ता, कर्त्ता आदि मानने लगती है।

जन्म, स्थान, बीज, आधार, शौचाधान तथा मृत्यु को देखकर इस अशुचि-शरीर से विरत होकर पुरुष की दृष्टि बहुत-ही सरल, सूक्ष्म और सुकुमार हो जाती है। जिस प्रकार आँख में पड़ा हुआ बाल का छोटे से छोटा टुकड़ा नेत्र के लिए असह्य हो जाता है, इसी प्रकार सुकुमार चित्त वाले आत्मवादी के सुकुमार हृदय में छोटी से छोटी अशुचिता बहुत कष्टदायिनी होती है। यह बात निश्चित जाननी चाहिए कि धर्मी का धर्म के साथ अनादि सम्बन्ध है, तभी तो प्रकृति को प्रधान कहा जाता है। प्रकृति यदि हर समय विकार ही करती रहे तो विकार की नित्यता में वह प्रधान नहीं रह सकती क्योंकि विकार की निरन्तरता में कारण-सामग्री का विध्वंस हो जाता है। यदि प्रकृति अपने प्रगतिधर्म को छोड़कर स्थितिधर्म में ही रहती हुई विकार से रहित हो जाय तब भी वह प्रकृति नहीं रह सकती क्योंकि विकाराभावदशा में उसकी प्रधानता में अवस्थित कारणसामग्री निष्प्रयोजन हो जाएगी। अतः प्रगति-दशा तथा स्थिति-दशा के ही कारण यह प्रकृति प्रधान कहलाती है तथा अपने महामोह के इन्द्रजाल में प्रकाशशील सत्त्व को लपेटकर अकार्य में प्रवृत्त कराती है।

अतः तय करके मन को शुद्ध करना चाहिये। आचार्य पंचशिख का कहना है कि प्राणायाम से बढ़कर कोई तप नहीं हो सकता क्योंकि प्राणायाम के द्वारा मल की विशुद्धि होती है और ज्ञान की दीप्ति होती है। इस प्रकार व्रताचरण से, प्रमाद से उत्पन्न हिंसा आदि दोष समाप्त होते हैं और शुभ कर्मों की ओर प्रवृत्ति होती है। केवल भोग का अभ्यास बढ़ाते रहने से राग की निरन्तर वृद्धि होती है, साथ ही इस ओर इन्द्रियों का कौशल भी बढ़ता है। पंचशिखाचार्य कहते हैं कि इतनी सरल-सुबोध अनुभूति से हर विवेकी को आत्म-निरीक्षण करना चाहिये।

नव प्रकार के कारणों का ज्ञान कराते हुए आचार्य कहते हैं कि विज्ञान की उत्पत्ति का कारण मन है। मन से ही विशिष्ट-ज्ञान की उत्पत्ति होती है जिससे पुरुष देह और आत्मा की पृथक्-पृथक् जानकारी प्राप्त करता है। दूसरा स्थिति-कारण है। स्थिति-कारण भी मन के लिए पुरुषार्थ है। जिस प्रकार कि शरीर की स्थिति का कारण आहार है, उसी प्रकार मन की स्थिति से ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषार्थता की सिद्धि होती है। तीसरा कारण अभिव्यक्तिकारण है। जिस प्रकार कि रूप की अभिव्यक्ति के लिए आलोक कारण है, इसी प्रकार इन्द्रिय भी रूप की अभिव्यक्ति के लिये कारण हैं। चौथा विकार-कारण है। जिस प्रकार कि पकाई जाने वाली वस्तु को अग्नि पाकावस्था में लाने के लिये कारण बनती है, उसी प्रकार मन भी विषयान्तर से विकारावस्था को प्राप्त होता है। पाँचवाँ प्रत्यय-कारण है। जिस प्रकार अग्नि-ज्ञान के लिए धूम-ज्ञान कारण है, उसी प्रकार बुद्धि-ज्ञान आत्म-ज्ञान में कारण है। छठां प्राप्ति-कारण है। योगानुष्ठान से विवेक-ज्ञान की प्राप्ति होती है। सातवाँ वियोग-कारण है। योगानुष्ठान से ही अशुद्धि का क्षय होता है। आठवाँ अन्यत्व-कारण है। जिस प्रकार कि सुवर्ण को सुवर्णकार अन्यत्व में परिवर्तित करके उसे नाना रूप दे देता है, इसी प्रकार प्रकृति से विकृत होकर पदार्थ नाना रूप में अवभासित होने लगते हैं। इसी प्रकार एक ही स्त्री मूढत्व के लिए अविद्या है, दुःख के लिए द्वेष है तथा सुख के लिए राग है पर वही स्त्री तत्त्वज्ञान के लिए मध्यस्थ का काम करती है। नवाँ धृति-कारण है। इन्द्रियों के लिये धृति-कारण शरीर है तथा शरीर के लिए इन्द्रियाँ हैं। महाभूत शरीरों के लिये धृति कारण है और वे परस्पर भी धृति-कारण हैं।

इस प्रकार आचार्य पंचशिख ने माया-मोहग्रस्त मानव को अतीन्द्रिय-ज्ञान कराकर आत्म-वैकल्य को दूर किया है। आचार्य समझाते हैं—पाँच ही इन्द्रियाँ हैं जो शब्द आदि पाँचों विषयों का ग्रहण करती हैं। छठां विषय अथवा उसका ग्राहक कोई इन्द्रिय नहीं है। यहीं पर 'अप्सराः' का भी अर्थ समझ लेना चाहिये—'आपः पुरुषवचसो भवन्ति' इस श्रुति के अनुसार जब जल आदि प्रधानभूत शरीराकार में परिणत हो जाते हैं, उनमें अनुसरण करने वाली चित्तिशक्ति ही 'अप्सराः' है। इसकी पाँच शिखायें—प्रमाण–विपर्यय–विकल्प–निद्रा और स्मृति रूप से जानी जाती हैं। उन-उन विषयों का आकार ग्रहण करके तदाकार होने के ही कारण इन्हें शिखा या चूडा कहा गया है। इस विषय के पारङ्गत आचार्य होने के कारण इन्हें 'पंचशिख' उपाधि मिली होगी।

आत्म-गुण बनी हुई बुद्धि इन्द्रियों के साथ मन्तव्य, बोद्धव्य, भोक्तव्य, शब्द आदि विषयों की ओर उन्मुख होती है। इनमें एक-एक में आसक्त पुरुष पशु है। ये विषय भी ग्राम्य–वन्य–ऐहिक–पारलौकिक आदि भेद से विविधता रखते हैं। पुरुष को सांसारिक अथवा वैदिक द्वन्द अपनी माया के कारण आच्छादित कर लेते हैं। इस सुख-लेश में परमब्रह्म अनाहित हो जाता है, तभी तो इन्हें द्वन्द (आच्छादित करने वाला) कहा गया है। जिस प्रकार सात–तंत्री में बजती हुई वीणा शब्दानन्द को जन्म देती है, इसी प्रकार सात स्वरों में अभिव्यक्त होने वाली यह काया, वीणा बनकर आत्मा को लुभाने के लिए अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उर्वशी–तान छेड़ती रहती है। आत्मा को इसका आस्वाद-सुख मिलता है। परन्तु जिसने इस देह–वीणा को बजाया ही नहीं वह त्यक्त वास्य (छोड़ दिया है वास्य=वसूला जिसने) तक्षा (बढ़ई) के समान कारण-सामग्री के न रहने पर स्वस्थ (अपने में स्थिर) हो जाता है।

विस्मय तो यह है कि जो स्वयं ही दृश्य है, उस बुद्धि को द्रष्टा कैसे समझा जा रहा है? इसी सूक्ष्मार्थ को समझाने के कारण आचार्य को चूलिक कहा गया है।

पंचशिखाचार्य के विचार में ज्ञान-उपासना तथा तदनुरूप ही कर्म करने से मोक्ष-हेतु उत्पन्न होता है। तत्त्व-ज्ञान से न केवल वासना का क्षय होता है अपितु मन का ही नाश हो जाता है। जब तक मन विलीन नहीं हो जायेगा तब तक वासना का क्षय भी नहीं होगा। चित्त के उपशमन के उपरान्त ही तत्त्व-वेदना उत्पन्न होती है। तत्त्व-प्राप्ति से ही वासना का क्षय सम्भव है। आत्म-ज्ञान की उपलब्धि होते ही पर- वैराग्य की प्राप्ति होती है, जिससे सुख-दु:ख आदि द्वन्द्वों पर विजय मिलती है। धीरे-धीरे समस्त संशय क्षीण हो जाते हैं। मानव को वह उपलब्धि मिल जाती है जिसके पा जाने से वह कृत-कृत्य या कृतार्थ हो जाता है और राजा जनक की वाणी में यह कहने का अधिकारी बन जाता है—

पराशर सगोत्रस्य वृद्धस्य सुमहात्मनः।
भिक्षोः पंचशिखस्याहं शिष्यः परम सम्मतः।।

शान्तिपर्व ३२०-२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'आर्यों का मूल-स्थान एवं नागर-सभ्यताएँ'

आर्य समस्या पर कुछ स्फुट विचार

प्रो० ठाकुरप्रसाद वर्मा
हरिद्वार

अब से ठीक दो सौ वर्ष पूर्व (१७८६ में) अंग्रेजों के फोर्ट विलियम (कलकत्ता) के मुख्य न्यायाधीश विलियम जोन्स ने यह सम्भावना व्यक्त की कि यूनानी, लातिनी, गोथिक, केल्टिक, फारसी एवं संस्कृत आदि भाषाओं को बोलने वाले किसी एक ही स्थान पर साथ-साथ रहते थे। जब से प्रथम यूरोपीय उपनिवेश पुर्तगालियों ने गोवा में स्थापित किया तभी से उनको यह जानकर विस्मय होता था कि भारतीय भाषाओं में अनेक ऐसे शब्द हैं जिनसे मिलते-जुलते शब्द यूरोपीय भाषाओं में भी मिलते हैं। इस जिज्ञासा ने यूरोपीय विद्वानों को भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन करने को प्रेरित किया। इस जिज्ञासा का परिणाम यह निकला कि संस्कृत सहित जितनी भी अन्य प्राचीन भाषाएँ हैं—यथा, ज़ेन्द, फारसी, पश्तो, बलूची, बुर्द, आस्मेनियमन, यूनानी, लातिनी, गोथिक, केल्टिक, लिथआनियन, अल्बेनियन, तुखारी, हिन्दी, फ्रेन्च, जर्मन, ट्यूटानिक, स्लावोनिक, अंग्रेजी आदि—सबका अध्ययन किया गया और इस प्रकार तुलनात्मक भाषाविज्ञान की नींव पड़ी तथा एक भाषा-परिवार की कल्पना की गई। इन्डो-जर्मनिक, इन्डो-केल्टिक, इन्डो-ईरानी, इन्डो-यूरोपियन अथवा आर्य भाषा परिवार आदि नाम सामने आये। इनको बोलने वाली आर्य जाति कहीं भारत के बाहर निवास करती थी जो भारत में संक्रमण करके आई। इस प्रकार भारतीय इतिहास ही नहीं, प्राचीन विश्व के इतिहास में दो मिथक प्रस्वावित किये गये जिन पर विगत शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इतना ऊहापोह और इतनी गर्मागर्म बहस हुई कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते-होते यह एक पूर्णरूपेण स्थापित तथ्य बन गया कि आर्य जाति थी और वह कहीं बाहर रहती थी और पश्चिम के स्थल-मार्ग से भारत में आई। कृषि और पशुपालन करने वाली, विकास के प्रारम्भिक अवस्था में रहने वाली यह आर्य जाति जब भारत में आई तो यहाँ के मूल निवासियों को पराजित करके यहाँ बस गई तथा धीरे-धीरे जंगलों को साफ करती हुई, पूर्व की ओर गंगा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमुना की घाटियों की ओर बढ़ने लगी । सौभाग्य से इसी समय बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण के अन्तिम वर्षों में मोहेन्जो-दाडो एवं हड़प्पा की खुदाइयों से अत्यन्त प्राचीन सभ्यताओं के अवशेष प्रकाश में आये जो प्राचीन मिस्र, सुमेर एवं बेबीलोन की सभ्यताओं की समकालीन नागर-सभ्यताएँ सिद्ध हुईं । इन उत्खननों से प्राप्त प्रतिकूल तथ्यों को दबाने और अनुकूल तथ्यों को प्रमाण-स्वरूप प्रस्तुत करते हुये यह कहा जाने लगा कि यह द्रविड़ों की सभ्यता थी जो अति विकसित थी और आर्यों ने इसको नष्ट कर दिया । प्रमाण खोजे जाने लगे । इन्द्र द्वारा शत्रुओं के पुरों को नष्ट करने वाली बात को स्वीकार कर लिया गया किन्तु सैकड़ों स्तम्भों वाले भवनों, आठ सेक्टरों में विभक्त नौ प्रवेशद्वारों से युक्त नगर, पैदल और रथों के लिए विभक्त मार्ग की वैदिक उक्तियों को नजर-अन्दाज कर दिया गया । तथाकथित आर्य जाति के पूर्वाभिमुख प्रसार की बात को सिद्ध करने के लिए वेद की ऋचाओं तथा ब्राह्मणों के उल्लेखों का सहारा लिया गया । अथर्ववेद के "गंधारिभ्यो मूजवद्भ्यः काशीभ्यो मगधेभ्यः । प्रष्यन्जनमिव शवेधि नवमान परिदभसि ॥ ५ । २२ । १४" को इस बात के प्रमाणस्वरूप स्वीकार किया जाने लगा कि काशी और मगध आर्यों के क्षेत्र से बाहर थे लेकिन गंधार और मूजवान प्रदेशों के लिए चुप्पी साध ली गई । इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण के विदथमाधव की कथा को सन्दर्भ से अलग करके तथाकथित आर्यों के पूर्व की ओर प्रसार के लिये प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किया जाने लगा ।

इस प्रकार एक कल्पना ऐतिहासिक सत्य के रूप में प्रतिष्ठापित हो गई । विदेशी और भारतीय विद्वानों ने इसे स्वीकार कर लिया और समस्त इतिहास-ग्रन्थों में इसका उल्लेख किया जाने लगा । इसने हमारे अन्तर्मन के अवचेतन स्तर तक अधिकार कर लिया जिसके कारण हमारे सभी शास्त्र, इतिहास, भाषा-शास्त्र, भाषा-विज्ञान, ध्वनि-विज्ञान, नृतत्व-शास्त्र आदि इसी विचार से ओत-प्रोत हैं । हम इससे बाहर जाकर सोच भी नहीं सकते । यही नहीं विदेशों पर भी इसका प्रभाव पड़ा । द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हिटलर ने जर्मनी के उत्थान का जो स्वप्न देखा उसके मूल में जर्मनरक्त की शुद्धता और विशुद्ध आर्य जाति का होने का दावा ही था । समय-समय पर कुछ विद्वानों ने इस सोच के विरुद्ध स्वर ऊँचा किया किन्तु मिथ्या के प्रचण्ड प्रवाह को सीमित नहीं किया जा सका । अब समय आ गया है कि हम इस विषय पर विस्तार से विचार करें और आर्य सभ्यता के इस मिथक को, जो हमारे लिये एक समस्या बन गई है, नष्ट कर दें ।

क्या आर्य कोई जाति थी ?

आर्यों को एक जाति के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । यह कहा गया है कि अनुमानतः २५०० से १५०० ई० पू० तक आर्य जाति दलों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उत्तर-पश्चिमी सीमान्त के पथ से भारत में प्रविष्ट हुई और उसने इस देश के आदिम निवासी द्रविड़ और कोल-भील आदि जातियों को पराजित करके क्रमशः उपनिवेश स्थापित किया। ये आर्य हिन्दू, फारसी, काकेशीय, ग्रीक और अन्यान्य यूरोपीय जातियों के पूर्वज थे। भारत के बाहर किसी स्थान में इनकी प्राचीन निवासभूमि थी। किन्तु यह आर्य शब्द जिस भाषा और साहित्य से लिया गया है और जिस संस्कृति में इसका प्रचुरता से प्रयोग मिलता है उसमें कहीं भी यह शब्द जाति के अर्थ में प्रयुक्त नहीं किया गया है। ईरानी एवं भारतीय दोनों ही साहित्यों में इसका प्रयोग जाति के अर्थ में नहीं मिलता। विडम्बना यह कि समस्त भारतीय साहित्य में एक भी ऐसा संकेत नहीं मिलता जिससे ऐसा लगे कि प्राचीन भारतीय किसी अन्य क्षेत्र से यहाँ आये। किन्तु सबसे पहले आर्य शब्द को ही लिया जाय।

वैदिक साहित्य में 'अर्य' एवं 'आर्य' दोनों ही शब्द प्रयुक्त हुये हैं तथा दोनों ही परस्पर सम्बन्धित हैं। अमरकोश ने 'स्वामी' और 'वैश्य' ये दो अर्थ अर्य शब्द के बताये हैं (अर्यः स्वामी—वैश्ययोः)। यहाँ पर सम्भवतः वैश्य शब्द वर्तमान प्रचलित रूढ़ अर्थ में प्रयुक्त है जिसका मूल वैदिक 'विश्' शब्द है, जिसके अन्तर्गत सभी जनसाधारण आ जाते हैं, न कि केवल व्यापारीवर्ग। वैदिक साहित्य में भी 'अर्य' शब्द का उल्लेख इसी सन्दर्भ में आया है। यजुर्वेद में (२६।२।) विभिन्न जनों का उल्लेख किया गया है जिनमें ब्रह्म, राजन्य, शूद्र आर्य, चारण के नाम लिये गये हैं। 'यथेमा वाचं कल्याणीभाजदानि जनेभ्यः ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।' इसी प्रकार अथर्ववेद में (१९।३२।८) में भी 'ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्या च' कह कर समाज के चारों विभागों को इंगित किया गया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि 'अर्य' शब्द परवर्ती वैश्य के स्थान पर आया है। यदि इनको सन्दर्भच्युत करके देखा जाये तब आर्य और शूद्र को दो विभिन्न जातियों के रूप में माना जा सकता है। यदि आर्य एक जाति मानी जाय तो शूद्र, ब्राह्मण और राजन्य (क्षत्रिय) को भी जातियाँ मानना पड़ेगा जो आर्यों से अलग थीं। कई स्थानों पर शूद्र और आर्य शब्द साथ-साथ आये हैं और कुछ लोगों ने इनको दो पृथक्-पृथक् जातियों के सूचकशब्दों के रूप में लिया है। शूद्र कौन-सी जाति थी, यह कोई नहीं बता सकता। वे कौन-से लोग हैं जो अपने को शूद्र नामक जाति से अभिहित करते हैं? वास्तव में शूद्र एक सामूहिक सम्बोधन है जो सामाजिक स्तर की ओर संकेत करता है। इसका जाति से कोई सम्बन्ध नहीं है। ऋग्वेद में उल्लिखित 'आर्यविश्' (१०।११।४) अथवा 'दासीविश्' (४।२८।४ एवं ६।२५।२) शब्द भी जातिबोधक शब्दों की ओर संकेत नहीं करते क्योंकि 'दासी' या 'दास' कोई जाति थी अथवा अभी भी है, यह कहीं से सिद्ध नहीं हो पाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति अपने पूर्वजों को बदल नहीं सकता, अपने माता-पिता का चुनाव नहीं कर सकता, अपनी जाति बदल कर दूसरी जाति भी नहीं अपना सकता। किन्तु अपने आचार-व्यवहार बदल सकता है। एक संस्कृति अथवा आचार का पालन न करने से उससे च्युत हो सकता है। इसके कारण सामाजिक बहिष्कार जैसे दण्ड का अधिकारी हो सकता है। इसी प्रकार आर्यत्व प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करने की वस्तु थी। जाति की भाँति स्वतः उपलब्ध होने वाली वस्तु नहीं थी। 'कृतेन हि भवेदार्यो न धनेन न विद्यया।' धन या विद्या के प्रभाव से व्यक्ति आर्य नहीं होता, वरन् अपने चरित्र एवं आचरण से आर्यत्व को प्राप्त होता है।

कर्त्तव्यमाचरन काममकर्त्तव्यमना चरन् ।
तिष्ठति प्रकृताचारे स तु आर्य इति स्मृतः ॥

अर्थात् करनेयोग्य कर्मों का आचरण करके और न करनेयोग्य कर्मों का आचरण न करके, प्रकृत आचार में स्थित रहने वाला आर्य है। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' घोष भी यही संकेत करता है कि 'आर्य' एक संस्कृति थी जिसका प्रचार-प्रसार किया जा सकता है। आर्य कहे जाने वाले व्यक्ति भी अपने आचार से च्युत होकर शूद्रत्व को प्राप्त कर सकते थे। मनु ने व्यवस्था दी है :

शतकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रिय जातयः ।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मण दर्शनेन च ॥

मुख बाहू रूप्पज्जनां या लोके जातयो बहिः ।
म्लेच्छावाचश्चार्यावाचः सर्वेदस्यवः स्मृतः ॥

(यज्ञादि) कर्मों के न करने से क्षत्रिय जातियाँ शूद्रत्व अथवा वृषलत्व को प्राप्त होती हैं। चाहे वह म्लेच्छ भाषा बोलने वाला हो अथवा आर्य भाषा, उसे दस्यु (दास अथवा शूद्र) ही कहा जायेगा।

यदि प्राचीन भारतीयों को ज्ञात जातियों (या संस्कृतियों) पर विचार करें तो हमें प्राचीनतम साहित्य में देव, दानव (दैत्य), असुर, मनुष्य, पिशाच, यक्ष, राक्षस, नाग, विद्याधर, गंधर्व, सिंह, किन्नर आदि नाम मिलते हैं। (दे० रामायण, गीताप्रेस, सुन्दरकाण्डम्, ५१,४१-४१-४३, युद्ध काण्डम् ६०।६ आदि) कहीं भी आर्य शब्द मानवसमूह अथवा जाति के अर्थ में नहीं आया है। इनमें कुछ जातियाँ, यथा नाग, किन्नर आदि आज भी खोजी जा सकती हैं। पुराणों में आये देवासुर युद्धों में उल्लिखित असुरों की पहचान अब पुरातत्त्वविदों द्वारा खोजे गये असीरिया के असुर साम्राज्य से की जा सकती हैं। ईराक के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वंसावशेषों में से असुर बनीपाल का मिट्टी के ठीकरों पर उत्कीर्ण पुस्तकालय पुरातत्त्वज्ञों ने खोज निकाला है जिसमें सिन्धु देश के बने कपास के कपड़े का उल्लेख मिलता है। किसी ने भारतीय दृष्टिकोण से, प्राचीन भारतीय साहित्य के प्रकाश में, इन तथ्यों का अध्ययन करने का प्रयास नहीं किया है। सैन्धव सभ्यता के समान मुद्राओं का इन स्थानों से प्राप्त होना भी दोनों सभ्यताओं के पारस्परिक सम्बन्धों की पुष्टि करता है। किन्तु अभी तक हमारी मानसिकता इस प्रकार का प्रयास करने वाले को परम्परावादी और प्रतिगामी मानने की रही है। यह अनुसन्धान का विषय हो सकता है कि क्या असुरों की यह संस्कृति हमारे प्राचीन साहित्य में वर्णित असुरों की संस्कृति से कोई साम्य रखती है? क्या दिति और अदिति के पुत्रों की कथा का कोई ऐतिहासिक महत्व है? क्या यह मात्र एक संयोग की बात है कि हमारे भारतीय मानस में 'असुर' का जो भयंकर चित्र है वैसा ही चित्र ईरान और उसके पश्चिम के क्षेत्रों में 'देव' का भी है? हमें इन बातों पर विचारपूर्वक शोध करना चाहिये तभी हम गोपथ ब्राह्मण (१।१।१०) के 'असुर वेद' छान्दोग्योपनिषद (८।८।५) के 'असुराणां ह्येषेपनिषद' शतपथ ब्राह्मण (१।१।४।१४) के 'असुर ब्राह्मण' अथवा हरिवंश (४८।६) के 'दानव ऋषि' के अर्थ वास्तविक परिप्रेक्ष्य में समझ सकेंगे। हमें 'आर्य वेद', 'आर्य उपनिषद', 'आर्य ब्राह्मण' अथवा 'आर्य ऋषि' के उल्लेख कहीं नहीं मिलते। बाल्मीकीय रामायण में जहाँ कहीं भी राक्षसों के मुख से राम अथवा इस क्षेत्र के लोगों का उल्लेख आया है उनमें उन्हें सदैव मनुज, मानव आदि ही कहा गया है जबकि वे स्वयं को गर्व से राक्षस कहते हैं। रावण के वध के उपरान्त मन्दोदरी विलाप करती हुई कहती है :

पिता दानवराजां मे भर्ता मे राक्षसेश्वरः।
कुत्रों मे शक्रनिजता इत्यहं गर्विता मृशम।

युद्धकाण्डम् १११।३९–४०

विभीषण रावण के 'अनार्यजुष्ट वचन' को सुनकर उससे अपना मत व्यक्त करता है (सुन्दरकाण्डम् ५२।१२)। युद्धकाण्ड के १६वें सर्ग में रावण विभीषण को फटकारते हुये पाँच श्लोकों में 'तथानार्येषु सोहृदम' कहता है। रावण की मृत्यु के पश्चात राक्षसस्त्रियाँ रणभूमि में अपने पतियों को खोजती हुई 'आर्यपुत्र' 'हा नाथ' आदि शब्दों का उच्चारण करती हैं। सुन्दरकाण्ड में सीता जी सुग्रीव को 'आर्य' कहती हैं। यदि राक्षस और वानर आर्य कहे जा सकते हैं तो इसे किस प्रकार जातिसूचक माना जा सकता है। अपने ब्राह्मणत्व और संस्कृति पर गर्व करने वाले लेखक वानर और राक्षस के लिये आर्य किस प्रकार लिख सकते थे? अतः किसी भी विधा से आर्य शब्द जातिबोधक शब्द नहीं हो सकता। यूरोपीय विद्वानों द्वारा किसी अन्य अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याप्ति वाले शब्द के अभाव में 'आर्य' शब्द को उन सभी लोगों के पूर्वजों के लिये प्रचलित कर दिया गया जो भारोपीय (इन्डोयूरोपीय) भाषाओं को बोलते थे। विगत दो शताब्दियों से हमने भी इसे इस भाँति अपना लिया तथा प्रारम्भिक कक्षाओं से लेकर उच्चतम डिग्रियों तक के लिये हमें यह पाठ इतनी बार पढ़ाया गया कि अब हम इसे एक पूर्णतया स्थापित सत्य मानते हैं।

मूलस्थान की खोज—

जब आर्य जातिवाचक शब्द नहीं है तो उनके मूलस्थान की खोज करना व्यर्थ का बौद्धिक व्यायाममात्र है। किन्तु अब आर्य शब्द का उपयोग वैदिक भारतीयों के लिये रूढ़ हो गया है और यह एक पूर्णतया स्थापित तथ्य के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है कि वैदिक भारतीयों के पूर्वज कहीं बाहर से भारत में आये। अतः इस विषय पर विचार कर लेना आवश्यक है। वैदिक भारतीयों के बाहर से आने के विचार के पीछे भाषाशास्त्रीय तथ्य थे जिन पर हम आगे विचार प्रकट करेंगे, किन्तु इनके पीछे साम्राज्यवादी इरादे भी थे, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। अंग्रेजी दासता के युग में हमारे ऊपर सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक प्रहार किसी अन्य युग की अपेक्षा अधिक किये गये। आर्य समस्या उन्हीं में से एक सबसे प्रबल प्रहार है। इससे जहाँ एक ओर भारतीयों का मनोबल क्षीण किया गया कि यह उनका मूल देश नहीं है और इस पर गर्व एवं अभिमान करने की बात नहीं है, वहीं दूसरी ओर उत्तरभारतीय आर्य और दक्षिणभारतीय द्रविड़ हैं, यह बताकर फूट का बीज डाला गया। यह भी प्रभाव डाला गया कि इस भारतवर्ष रूपी धर्मशाला में जिस प्रकार शक, पहलव, तुर्क, अफगान, मंगोल आए, उसी प्रकार अंग्रेज भी आये हैं और उनका भी इस देश पर उतना ही अधिकार है जितना अन्य किसी का। इसके लिये उनके तर्कों के अनुकूल प्रमाणों को पुरस्कृत किया गया और प्रतिकूल प्रमाणों को दबा दिया गया। यहाँ पर उदाहरण के लिये मेगस्थनीज के एक उदाहरण को प्रस्तुत करना उचित होगा जो अब से २,३०० वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में यवन राजदूत होकर आया था और भारत के विषय में उसके अनेक उद्धरणों को बड़े प्रामाणिक तथ्यों के रूप में बार-बार प्रस्तुत किया है। मैकक्रिण्डल द्वारा सम्पादित 'ऐन्शियन्ट इन्डिया, मेगस्थनीज' के पृ० ३४ पर उद्धत है कि 'ऐसा कहा जाता है कि भारत एक विशाल देश होने के कारण, जब सम्पूर्ण रूप से लिया जाये तो उसमें विभिन्न एवं बहुसंख्य जातियाँ बसती हैं जिनमें से एक भी मूलतः विदेशी नहीं हैं, प्रत्यक्षतः सभी देशी हैं, और यह भी कि भारत में न कोई उपनिवेश बाहर से आकर स्थापित हुआ और न कभी बाहर जाकर उपनिवेश स्थापित किया गया।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे स्पष्ट है कि अबसे २,३०० वर्ष पूर्व भारतीयों और विदेशियों में भी किसी को यह पता नहीं था कि हम आर्य हैं और कहीं बाहर से आये हैं। कुछ विदेशी लेखकों ने भी इस तथ्य को ओर इशारा किया है। विगत शताब्दी में 'भारत का इतिहास' लिखते समय एलफिन्टस्टन ने स्वीकार किया है कि मनुस्मृति तथा वेदों में अथवा किसी भी (भारतीय) ग्रन्थ में आर्यों के भारत के बाहर रहने या भारत के अतिरिक्त किसी अन्य देश का संकेत नहीं मिलता। कीथ ने भी 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया' पृ० ७८ पर लिखा है कि 'वैदिक भारतीय भारत में किस प्रकार आये, इस विषय पर ऋग्वेद से निश्चय ही कोई सहायता नही मिलती।' अतः उसने सावधान किया है कि 'इन सामग्रियों से निष्कर्ष निकालने में बहुत सावधानी बरतनी पड़ेगी।' किन्तु वह तो भारतीयों को आर्य सिद्ध करने एवं उन्हें बाहर से आया हुआ सिद्ध करने के लिये तुला बैठा था और उनके आने का मार्ग निर्धारित किया।

इसके साथ ही आर्यों की एक विशिष्ट छवि प्रस्तुत की गई। आर्य गौरवर्ण और लम्बे थे। वे घोड़ों पर यात्रा एवं संक्रमण करते थे, वे कृषिकर्मी एवं ग्राम्यजीवन बिताने वाले लोग थे, आदि चित्र प्रस्तुत किये गये जो या तो अज्ञान पर आधारित थे अथवा धूर्तता से प्रेरित थे। हमारा भारतीय साहित्य बताता है कि अनेक ऋषि-महर्षि कृष्णवर्ण थे। साक्षात मनु के वंश में जन्म लेने वाले श्रीराम कृष्णवर्ण थे। उनके भ्राता लक्ष्मण गौरवर्ण थे। यह बात आज भी हम भारतीय परिवारों में पाते हैं कि एक ही वंश से उत्पन्न कुछ भाई गौरवर्ण हैं और कुछ कृष्णवर्ण। महाभारत काल में भगवान श्रीकृष्ण भी कृष्णवर्ण के थे। कुछ महर्षियों के भी कृष्णवर्ण होने का उल्लेख आता है। आर्यों को अनिवार्य रूप से घोड़ों से जोड़कर छलपूर्वक यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया कि सैन्धव सभ्यता से आर्यों का सम्बन्ध नहीं है क्योंकि वहाँ घोड़ों के अवशेष नहीं मिलते। इसे एक गम्भीर तर्क के रूप में प्रस्तुत किया गया। भारतीयां को घोड़ों का ज्ञान नहीं था अथवा वे उनका उपयोग नहीं करते थे, ऐसी बात नहीं है किन्तु इस बात को एक प्रमाण के रूप में उपस्थित करना धूर्तबुद्धि का परिचायक है। इसो प्रकार कृषिकर्म एवं ग्राम्यजीवन को आर्य जाति से समीकृत करने वाली बात भी है। इसमें यह तर्क निहित है कि वैदिक लोग अन्य उद्योग-धन्धे एवं व्यापार विकसित नहीं कर सके थे। अतः विकास के प्रारम्भिक स्तर पर थे एवं नागर सभ्यता से सर्वथा अपरिचित थे। डा० सत्यकाम वर्मा ने 'वैदिक स्टडीज (पृ० १४०) में अनेक प्रमाण देकर यह बताया है कि वैदिकसमाज उद्योगप्रधान, नगरवासी समाज था जो कृषि के क्षेत्र में भी काफी प्रगतिशील था। अथर्ववेद में अष्टचक्रा एवं नवद्वार वाले नगर के उल्लेख को एक कल्पनामात्र स्वीकार किया जा रहा है। किन्तु इस प्रकार काल्पनिक ही सही, एक नगर का उल्लेख क्या यह प्रकट नहीं करता कि वैदिक भारतीय नगर से अपरिचित नहीं थे। रथों एवं पैदल चलने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
वाले लोगों के लिए पृथक् सड़कों की योजना (अथर्ववेद १२।१।४७), सुनिर्मित द्यूतगृहों का अस्तित्व जिनके अपने नियमोपनियम थे (ऋग्वेद १०।३४।५-६, अथर्ववेद १२।३।४६), सुनिर्मित एवं वेगवान रथों (ऋग्वेद १।३८।१२, १।३६।६, १।१६४।२–३, २।१८१।४–७ आदि) ग्राम्य सभ्यता की ओर तो इंगित नहीं करते। इसलिये भारत में नगर नहीं थे और भारतीय नागर-सभ्यता से अपरिचित थे अथवा वे नागरसभ्यता वाली जातियों के शत्रु थे और उन्होंने नागर सभ्यताओं का विनाश किया, आदि बातें निहित मन्तव्यों से प्रेरित एवं अज्ञान पर आधारित थीं। हमने स्वयं भी इस दिशा में मौलिक शोध न करके विदेशियों द्वारा किये गये शोधों को स्वीकार कर लिया एवं उनके अनुवादों तक ही अपने ज्ञान को सीमित रखा।

पुरातत्व शास्त्र ने भी इस दिशा में अपना योगदान किया है। पुरातात्विक प्रमाणों को अधिक ठोस एवं अकाट्य रूप से प्रस्तुत किया जाता है तथा प्राचीन भारतीय साहित्यिक प्रमाणों को काल्पनिक एवं अप्रामाणिक मानकर एकदम उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। जान मार्शल एवं ह्वीलर की परम्परा में दीक्षित भारतीय पुरातत्वज्ञ अभी तक अपने को उनके द्वारा स्थापित मानदण्डों से पृथक् नहीं कर पाये हैं। विडम्बना यह है कि उनको परम्परा का पालन करते हुये उत्खनक स्वयं ही अपने द्वारा उत्खनित सामग्री का विश्लेषण एवं निष्कर्ष भी प्रस्तुत करता है जबकि वह अनिवार्य रूप से साहित्य एवं इतिहास का ज्ञाता नहीं होता। इसी कारण सम्प्रति तो स्थिति यह दिखाई पड़ती है कि भारतीय इतिहास के लिये साहित्य एवं पुरातत्व एक समान धरातल पर कभी खड़े नहीं हो सकेंगे। यह भारतीय पुरातत्व द्वारा प्रारम्भ में किये गये भ्रान्तिपूर्ण विश्लेषण का परिणाम है। वर्तमान विश्लेषणों के आधार पर समस्त पुरातात्विक साक्ष्य इस ओर इंगित करते दिखाई पड़ते हैं कि भारत में मानव सभ्यता के प्रसार की दिशा पश्चिम से पूर्व की ओर है। पंजाब (वर्तमान पाकिस्तान को सम्मिलित करके) से पूर्व की दिशा में क्रमशः सभ्यता का विकास हुआ। किन्तु जब स्वतन्त्रता पूर्व के सम्पूर्ण भारत के बाहर के पुरातात्विक अवशेषों पर इस दृष्टि से विचार करते हैं तो पश्चिम से आने वाले इस तथाकथित सभ्यता के प्रवाह के चिन्ह नहीं मिलते। सैन्धव या हड़प्पीय सभ्यता के जो शताधिक बस्तियों के अवशेष खोजे जा चुके हैं, उनमें दो-तिहाई से अधिक स्वतन्त्रता पूर्व के सम्पूर्ण भारत में और शेष थोड़े से इसके पश्चिम में मिलते हैं। सैन्धव सभ्यता के अवशेषों से प्राप्त सामग्रियों के वैदिक सभ्यता के अनुरूप होने के प्रमाणों के विस्तार में न जाकर यहाँ यही कहना पर्याप्त होगा कि यह निश्चय ही भारतीय सभ्यता थी और वैदिक सभ्यता के अनुकूल थी।

यहाँ पर मैं पुरातत्वज्ञों का ध्यान एक और तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहूँगा। साहित्यिक साक्ष्यों का उपहास करने वाले ये विद्वान अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्खननों में स्तरों का वर्गीकरण करते समय गुप्त, कुषाण, शुंग, मौर्य स्तरों तक के तो नामकरण इन राजवंशों के नाम के आधार पर करते हैं जो केवल साहित्यिक स्रोतों पर ही मुख्य रूप से आधारित हैं किन्तु उसके पूर्व के स्तरों के लिये मृदभाण्डों के वर्गीकरण के आधार पर निर्मित संस्कृतियों का नाम देते हैं। इस प्रकार धूसरचित्रित मृदभाण्ड संस्कृति, कृष्ण परिमार्जित मृदभाण्ड संस्कृति आदि नाम देकर उनका कालक्रम निर्धारित करते हैं। यह अंधेरे में तीर चलाने के समान है क्योंकि ज्यों ही कोई नवीन तथ्य उत्खनन से प्रकाश में आता है, निष्कर्षों को पुनरीक्षित करना पड़ता है।

पुरातत्वज्ञों के काल-निर्धारण में कुछ न कुछ त्रुटि अथवा भ्रम है, इसको स्वीकार करना पड़ेगा। उदाहरण के लिये बुद्ध के काल को लेते हैं। गौतम बुद्ध का काल प्रायः सर्वसम्मति से ईसा पूर्व की छठी शताब्दी माना जाता है। उनके जीवनकाल से सम्बन्धित स्थलों बोधगया, काशी, श्रावस्ती तथा वैशाली की पुरातात्विक खुदाइयाँ हो चुकी हैं। इनमें ५-६ शताब्दी ईसा पूर्व तक जाते-जाते सामग्रियों का अभाव होने लगता है। इन स्थलों की प्राचीनता पुरातात्विक उत्खननों के आधार पर ८वीं शताब्दी ई० पू० से अधिक नहीं जाती। पुरातात्विक कालगणना के अनुसार ८वीं शताब्दी ई० पू० में इन स्थलों पर मानव-संचरण प्रारम्भ हुआ। काशी (राजघाट) को उपकाल १-अ में, जो ८०० ई० पू० से ६०० ई० पू० का मध्यकाल माना गया है, रेड स्लिप्ड वेयर कल्चर कहा गया है, जो उत्खनकों के अनुसार अनार्यों की संस्कृति रही होगी। इस कालखण्ड में एक भी पेन्टेड ग्रे वेयर का टुकड़ा नहीं मिला जो विद्वानों के अनुसार परवर्ती आर्यों के संक्रमण से सम्बद्ध किया गया। इसका मिलना १-ब कालखण्ड से प्रारम्भ होता है जो ६०० ई० पू० से ४०० ई० पू० का समय बताया गया है। अर्थात् इसी कालखण्ड में आर्यों का आगमन इस काशी क्षेत्र में होता है। यही दशा ऊपर गिनाये गये उन सभी स्थलों की है जो बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित रहे हैं। क्या इसका यह अर्थ लगाया जाए कि बुद्ध की कथा और उनका धर्मचक्र प्रवर्तन काल्पनिक कथायें हैं? क्या यह समझा जाए कि बुद्ध अनार्य थे और उन्होंने अपने उपदेश अनार्यों के बीच दिए? क्या ये क्षेत्र बुद्ध के जीवनकाल में या उनके कुछ-ही समय पूर्व आर्य संस्कृति के सम्पर्क में आये थे?

इस क्षेत्र के सम्बन्ध में बौद्ध साहित्य से जो चित्र उभरता है, वह इससे सर्वथा भिन्न है। षोडस महाजनपदों में सम्पूर्ण उत्तरभारत का क्षेत्र आ जाता है। बुद्ध ज्ञानप्राप्ति के लिये महाभिनिष्क्रमण करते हैं तो पूर्व की ओर जाते हैं। यदि पुरातत्वज्ञों एवं आधुनिक इतिहासकारों (जिनमें यूरोपीय एवं भारतीय इतिहासकार दोनों ही शामिल हैं) के अनुसार इस तथाकथित आर्य सभ्यता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुत्व केन्द्र पश्चिमी क्षेत्र में था तो बुद्ध को उस दिशा में आना चाहिये था। उन्होंने जिन गुरुओं से सम्पर्क किया और फिर उनसे मिलकर आगे बढ़े, वें अपने समय के परम्परागत भारतीय ज्ञान एवं विद्या के महान जानकार थे। बोधगया में बुद्धत्वप्राप्ति के पश्चात अपने धर्मचक्र प्रवर्तन के लिये उन्होंने काशी को चुना। उनके पूर्व के पाँच शिष्य, जो पहले उन्हें छोड़कर चले आये थे, वे भी काशी में गये थे, इस प्रकार कम से कम छठी शताब्दी ईसा पूर्व में काशी की ख्याति अवश्य रही होगी। और इसके लिये उसकी स्थापना कई शताब्दियों पूर्व होनी चाहिये जिसके लिये पुरातात्विक कालक्रम में कोई स्थान नहीं है। बौद्ध साहित्य यह बताता है कि उस समय उत्तरभारत के बड़े-बड़े नगर तक्षशिला, मथुरा, साकेत, श्रावस्ती, काशी, राजगृह आदि व्यापार-मार्गों से जुड़े हुये थे और सार्थवाह व्यापार-सामग्रियों के साथ नियमित यात्रायें करते थे। यह व्यापार प्रक्रिया भी काफी संश्लिष्ट थी जिसके विकास के लिये अनेक शताब्दियाँ अपेक्षित हैं। भारतीय इतिहासज्ञ एवं पुरातत्वविद भी छठी शताब्दी ईसा पूर्व के काशी, कौशल, मगध के राजवंशों की पौराणिक सूची को कमोबेश मानते ही हैं। ये सभी बातें इस बात की ओर ही इंगित करती हैं कि इस क्षेत्र का इतिहास एवं संस्कृति ८वीं शताब्दी ईसा पूर्व जितनी नहीं, उससे भी अनेक शताब्दियों पुरानी है। एक और बात ध्यान देने की है—ऐतिहासिक युग में तो यवन, कुषाण, तुर्क, पठान, मुगल आदि आक्रमणकारी लाहौर से राजमहल की पहाड़ियों (बिहार) तक पहुँचने में ६ मास से एक वर्ष लगाते थे और इस अवधि में सम्पूर्ण उत्तरभारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेते थे किन्तु आर्यों को सिन्धु घाटी से गंगा की घाटी एवं काशी, मगध, आदि पहुँचने में अनेक शताब्दियों के अन्तराल की बात की जाती है। क्या छठी शताब्दी ई० पू० के पहले की शताब्दियों में उत्तरीभारत इतने अभेद्य वनों एवं प्राकृतिक बाधाओं से युक्त था कि इस कल्पित आर्य संस्कृति के प्रसार के कार्य में अनेक शताब्दियाँ लग गईं ? पुरातत्वविदों को इस दृष्टिकोण से भी विचार करना होगा तथा इन बिन्दुओं का उत्तर ढूंढना होगा तभी भारतीय इतिहास में पुरातत्व को उचित महत्व मिल पायेगा।

आर्यों के मूलस्थान निर्धारण की दृष्टि से विगत शताब्दी के उत्तरार्ध में इतनी अधिक परिचर्चायें हुईं कि भारतीय इतिहास अध्ययन की दृष्टि से यदि उस कालखण्ड को 'आर्य स्थापना काल' कहें तो अधिक उपयुक्त होगा। इस परिचर्चा का परिणाम यह निकला कि भारत के अतिरिक्त समस्त एशिया और यूरोप में आर्यों का मूलनिवास स्थल खोजा गया और सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये। सूची बहुत लम्बी है और सुधी विद्वानगण उसके विषय में जानते हैं, अतः उसको यहाँ दुहराने का प्रयास नहीं किया जायेगा। यहाँ हम केवल भारत की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि से ही विचार करेंगे और यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि हमारा प्राचीन साहित्य इस विषय में क्या कहता है और कुछ नवीन पुरातात्विक अनुसंधान क्या संकेत कर रहे हैं।

इस बात को तो अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है कि वैदिक एवं परवर्ती भारतीय साहित्य में कहीं भी ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता जिससे यह कहा जा सके कि प्राचीन भारतीय किसी अन्य स्थान से भारत में आये। मानव सभ्यता के आदिम काल से ही वे इसी भारत भूमि पर रहते आये हैं, यही संकेत प्राचीन भारतीय साहित्य देते हैं। पौराणिक साहित्य में गुफा-निवास से लेकर फल संग्राहक, कृषि के विभिन्न स्तरों से होते हुए नागर सभ्यता के उच्चतम उत्कर्ष को प्राप्त करने तक के उल्लेख प्राप्त होते हैं। अत्यन्त सुदीर्घ काल के प्रयोगों और अनुभवों के आधार पर ही भारतीय मानस, काल की चक्रीय व्यवस्था की परिकल्पना कर सका जिसमें व्यक्तियों एवं समाजों के जीवन में उत्थान एवं पतन, उत्कर्ष एवं अपकर्ष के इतिहास को बार-बार दोहराये जाने की बात कही गई। मिश्र, बेबीलोन, मेसोपोटामिया आदि प्राचीन सभ्यताओं के प्रकाश में आने से इस परिकल्पना की सत्यता सिद्ध हो रही है और मानव-विकास की एकरेखीय परिकल्पना पर विश्वास करने वाले इतिहासज्ञों ने भी अब इस ओर विचार करना प्रारम्भ कर दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव विकास की सम्पूर्ण कथा हमारे प्राचीन साहित्य में सुरक्षित है जिसे इस दृष्टि से देखना होगा। इस भारत भूमि के सहस्राब्दियों के भौगोलिक परिवर्तनों के भी हम दृष्टा एवं साक्षी रहे हैं, यह भी हमारा साहित्य हमें बताता है। विन्ध्य पर्वत किस प्रकार झुका और हिमालय किस प्रकार अस्तित्व में आया? गंगा किस प्रकार पर्वत में से निकल कर मैदानों में लाई गई, सरस्वती किस प्रकार विलुप्त हो गई तथा मरुस्थलों का निर्माण किस प्रकार हुआ? इन कार्यों में हमारे पूर्वजों का कितना योगदान रहा, इसकी तो स्मृति है। हमारे साहित्य में इसका वृत्त तो अंकित है किन्तु बाहर से आने का कोई उल्लेख नहीं है।

भारत-भूमि मानव-जन्मभूमि और उनके प्रारम्भिक क्रिया-कलापों की आदिभूमि क्यों नहीं हो सकती यह हमारी समझ में नहीं आता। संसार की जितनी प्राचीन सभ्यतायें पुष्पित-पल्लवित हुईं, वे सब नदियों की घाटियों में हुई बताई जाती हैं। फिर गंगा, यमुना और सिन्धु की घाटियाँ इस दृष्टि से वन्ध्या क्यों मानी जाती हैं, यह बात समझ में नहीं आती। क्यों यह क्षेत्र आठवीं-छठी शताब्दी ई०पू० तक जंगल प्रदेश बना रहा और काल्पनिक आर्यों की प्रतीक्षा करता रहा जिन्होंने इसे कथित रूप में अब से तीन हजार वर्ष पूर्व आकर रहने योग्य बनाया। क्या विन्ध्य की पर्वतश्रेणियाँ इस योग्य नहीं थीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वे आदिम मानव को अपनी गुहाओं में स्थान देकर, उसकी गतिविधियाँ जारी रखने के लिये, उचित वातावरण एवं जल-भोजन की सुविधा दे सकें ? क्या गंगा-यमुना-सरस्वती की सुविस्तृत एवं उपजाऊ घाटियाँ मानवसभ्यता के विकास के लिये उचित संरक्षण एवं सुविधायें नहीं जुटा सकती थीं ? यदि ऐसा है तो आर्यों की आदिभूमि जन्मभूमि पितृ-भूमि क्यों नहीं बन सकती ; यह सम्पूर्ण आर्यावर्त ही आर्यों का मूलस्थान क्यों नहीं बन सकता ?

मनु ने इस क्षेत्र का वर्णन किया है (२।१७-२४)। वे पहले सरस्वती और दृषद्वती की उपत्यका ब्रह्मावर्त का वर्णन करते हैं। इसके बाद कुरुक्षेत्र, मत्स्य पन्चाल एवं शूरसेन को ब्रह्मर्षि देश कहते हैं। फिर हिमालय और मध्य की भूमि, जो विनशन एवं प्रयाग के बीच में पड़ती है, मध्य देश कहते हैं। स्पष्ट है कि भौगोलिक दृष्टि से ब्रह्मावर्त और ब्रह्मर्षि देश मध्य प्रदेश के अन्तर्गत आ जाते हैं। इसके बाद आर्यावर्त की सीमा बताते हैं जो भौगोलिक दृष्टि से इससे भी अधिक व्याप्ति वाली है। पूर्व एवं पश्चिम से समुद्र से घिरी हुई एवं उत्तर एवं दक्षिण से (हिमालय एवं विन्ध्य) पर्वतों के बीच की भूमि को उन्होंने आर्यावर्त कहा है। इस परिभाषा में सम्पूर्ण उत्तरभारत आ गया और यह परिभाषा कुछ बाद की लगती है। पातंजली महाभाष्य की परिभाषा (६।३।१०९) इससे प्राचीन लगती है, जिसका समर्थन कई अन्य धर्मसूत्र एवं स्मृतियाँ करती हैं। महाभाष्य के अनुसार दर्शन से पूर्व कालक वन से पश्चिम, हिमालय से दक्षिण एवं पारियात्र से उत्तर की भूमि आर्यावर्त है। कुछ स्मृतियों में दर्शन की जगह विनशन बौद्धायन (१।२७) और पारियात्र की जगह विन्ध्य (वशिष्ट (१।७) आता है। किन्तु इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि क्षेत्र लगभग वही है। गंगा-यमुना की घाटी को मध्यप्रदेश कहा गया है जो भौगोलिक दृष्टि से लगभग सम्पूर्ण आर्यावर्त की परिव्याप्ति कर लेता है। इस प्रकार यही भूमि प्राचीन भारतीय वैदिक संस्कृति का मूलस्थान रहा है, इसमें सन्देह नहीं है।

ऋग्वेद में (१०।७५।५–६) नदियों के नाम आते हैं जिनमें गंगा, यमुना, सरस्वती, शतुद्रि, परष्णी, अश्विनी, वितस्ता, अर्जीकिया, सिन्धु, कुमन, गोमती, कुम आदि के नाम भौगोलिक क्रम में उल्लिखित हैं। ये नदियाँ उत्तर भारत से अफगानिस्तान तक के क्षेत्र की हैं। इसमें भौगोलिक जानकारी तो मिलती है किन्तु यह सूक्त एक और बात की ओर संकेत करता है। इससे इन नदियों का क्रम गिनाने वाले की अपनी स्थिति की जानकारी भी मिलती है। जिस किसी ने भी इन नदियों का क्रम गिनाया है वह स्वयं गंगा की उपत्यका में बैठा इनको गिन रहा होगा, इसकी पुष्टि होती है। यह पुनः मध्यप्रदेश की ओर संकेत करता है जो वेदों एवं वैदिक भारतीयों का मूलस्थान था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारसियों का अवेस्ता में आर्याना-वेइजो को आर्यों का मूलनिवास-स्थान बताया गया है। यह भी कहा गया है कि अत्यधिक ठंड बढ़ जाने के कारण वहाँ से आर्यों का निष्क्रमण हुआ और उन्होंने सोलह देश बसाये जिनमें पन्द्रहवाँ देश हप्तहिन्दु है। इस आर्याना-वेइजो और हप्तहिन्दु की खोज पिछली शताब्दी का वाग्विलास बन गया था। किसी ने अजर वाइजान को आर्याना-वेइजो माना और किसी ने उत्तरी ध्रुव को। किन्तु आर्याना-वेइजो के रूप में नहीं देखा जहाँ इस समस्या का हल छिपा हुआ है। वैदिक भारतीयों ने इसी क्षेत्र में अनेक ग्लेशियन युग देखे हैं और प्रलय भी देखे हैं। अतः ऐसे कठिन समयों में कुछ लोगों का निष्क्रमण असम्भव नहीं है। ईरान में अनेरहवेंती और हरयू नदी के नामकरण भारतीयों के पश्चिमाभिनिष्क्रमण के अवशेष माने जा सकते हैं क्योंकि दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में भारतीय नदियों एवं नगरों के नाम मिलते हैं। ईराक के राजा 'यिमख़्शरत' की पहचान यम वैवस्वत से की जा सकती है, जो मनु वैवस्वत (विवस्वान के पुत्र) के भाई थे। प्रलय के पश्चात् मनु ने भारत में सन्ततिविस्तार किया और यम ने ईरान-ईराक क्षेत्र में। इस संक्षिप्त लेख में इस विषय पर विस्तार में जाने का अवसर नहीं है किन्तु यह बता देना विषय के अनुकूल होगा कि जिस प्रकार वर्तमान युग में अंग्रेजी साम्राज्य के विस्तारकाल में, संसार के अनेक क्षेत्रों में उपनगरों-स्थानों आदि के नाम अंग्रेजी भाषा के आधार पर पड़े, उसी प्रकार भारतीय नामों की छाप संसार के अनेक देशों, नगरों, पर्वतों, नदियों पर मिलती है तथा भाषाओं पर भी इनकी छाप पड़ी है, जो भारतीयों के विदेश निष्क्रमण के चिन्हरूप में अभी भी दिखाई पड़ती है। इसी तथ्य ने तुलनात्मक भाषाशास्त्र को जन्म दिया और इन्डो-यूरोपीय भाषा परिवार की कल्पना की गई तथा विभिन्न भाषाशास्त्री सिद्धान्त स्थिर किये गये। ऐसे सिद्धान्तों के प्रतिपादकों को डा० सत्यकाम वर्मा की (वैदिक स्टडीज पुस्तक, पृ० १४५) चेतावनी का हम स्मरण दिलाना चाहेंगे कि भाषाशास्त्रियों को अपने विचार (क्लू) इतिहास से ग्रहण करना चाहिये, न कि इसके विपरीत। अर्थात् भाषाशास्त्र के आधार पर इतिहास के सूत्रों के निर्धारण का प्रयास यदि किया जायेगा तो आर्य समस्या जैसी काल्पनिक समस्यायें खड़ी हो जायेंगी जिनके निवारण में शताब्दियाँ लग सकती हैं।

यहाँ 'हप्तहिन्दु' के विषय में भी कुछ विचार कर लेना चाहिये। सप्त-सिन्धु के उल्लेख यजुर्वेद (३८।६) एवं अथर्ववेद (४।६।२) में भी आते हैं और अविनाशचन्द्र दास का नाम सप्त-सिन्धु के साथ अमर हो गया है। किन्तु समस्त वैदिक एवं परवर्ती भारतीय साहित्य में आर्यों (?) के मूलस्थान के विषय में स्पष्ट जानकारी होते हुये, सप्त-सिन्धु के अस्पष्ट एवं संक्षिप्त उल्लेख को लेकर आर्यों का मूलस्थान खोजना अत्यन्त हास्यास्पद है। वैदिक साहित्य और अवेस्ता में कहीं भी सप्तसिन्धु को आर्यों का मूलस्थान नहीं कहा गया है। अवेस्ता में तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हप्तहिन्दु को पन्द्रहवाँ देश कहा गया है तो उसे मूलस्थान मानने का आग्रह क्यों किया जा रहा है। सप्तसिन्धु वैदिक साहित्य में किसी देश का नाम है, यह भी स्पष्ट नहीं है। यदि है तो उसकी पहचान भी नहीं की जा सकती। यह ७ नदियों का प्रदेश है (जैसा कि कुछ लोगों ने प्रयास किया है) अथवा सात समुद्रों का, यह शब्द स्पष्ट नहीं है। अतः निश्चित को छोडकर अनिश्चित के विषय में विचार करने से बौद्धिक व्यायाम तो होता है किन्तु कुछ परिणाम नहीं निकलता।

अतः निष्कर्षतः यही कहना पड़ेगा कि आर्य समस्या कोई नहीं है। आर्य नाम की कोई जाति नहीं है। यह कृत्रिम समस्या, अज्ञान, निहित स्वार्थ और आधे-अधूरे शोधकार्यों पर आधारित है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान का जो भवन खड़ा किया गया है उसके नींव की ईंट भ्रान्तिपूर्ण अवधारणाओं के आधार पर खड़ी की गई हैं, अतः इसमें आधारभूत चिन्तन की आवश्यकता है। हम भारतीयों ने भी जो कुछ शोधकार्य किया है वह इस झूठ की आँधी के आवर्त में फंस गया था। अब समय आ गया है कि हम इसे पहचाने और इसका पूरी शक्ति के साथ, सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय का मन्थन करके निकाले गये तथ्यों के साथ इस भ्रान्त धारणा को धराशायी कर दें। आर्य और द्रविड़ के काल्पनिक विभेदकारी अप्रचार का मुँहतोड उत्तर देते हुये विष्णुपुराण (२।३।१) के इस घोष का उद्घोष करें:

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चापि दक्षिणम्।
वर्षं तदं भारतं नाम भारती यत्र संततिः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय महाकाव्य एवं पुरातत्व

—सूर्यकान्त श्रीवास्तव
क्यूरेटर, संग्रहालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

सिन्धु सभ्यता की खोज ने भारतीय इतिहास को प्राचीनता ही नहीं, वरन् लगभग १००० वर्ष का अन्तराल भी दिया, जिसके सम्बन्ध में पुराबिदों के लिये निर्णायक रूप से कुछ भी कहना कठिन था । अतएव विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा विभिन्न स्थानों पर सर्वेक्षण एवं उत्खनन कार्य किया गया । किन्तु उपलब्ध सामग्री से इस अन्तराल की खाई को पाटकर कोई सेतु नहीं बनाया जा सका । दक्षिणी-पठार एवं पूर्वी-राजस्थान में कुछ ग्रामीण-सभ्यताओं का पता चला लेकिन वे क्षेत्रीय-विस्तार में इतनी सीमित हैं कि इस अन्तराल को पाटने में असमर्थ रही हैं ।

कुछ विद्वानों के मतानुसार साहित्यिक प्रमाण एवं परम्परागत कथाओं के आधार पर भारत (उप महाद्वीप) में आर्यों का आगमन, पंजाब में निवास तथा गंगा की ऊपरी घाटियों में विस्तार इसी काल में माना गया है ।

प्राचीन भारतीय साहित्य में वेद-ग्रन्थों के पश्चात् जिन ग्रन्थों को धर्म एवं जन-साधारण में मान्यता प्राप्त है, वह हैं प्रमुख बहुचर्चित महाकाव्य—रामायण एवं महाभारत । दोनों महाकाव्यों की कार्य-स्थली उत्तर-भारत में गंगा-यमुना का दोआब क्षेत्र रहा है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि दोनों महाकाव्यों की विषय-वस्तु आर्य सभ्यता के विस्तार एवं उसे स्थायित्व प्रदान करने का क्रमिक विकास है । अतएव दोनों महाकाव्यों के पुरातात्विक अवशेषों के अध्ययन पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है ।

रामायण की विषय-वस्तु में प्रायः सम्पूर्ण भारत का उल्लेख है लेकिन इसका कार्यक्षेत्र मुख्यतः गंगा का पूर्वी भाग—अयोध्या नगर, नगर से दक्षिण-पूर्व का भाग एवं दक्षिण रहा है । वस्तुतः रामायण की विषय-वस्तु पूर्वी-भारत में ही घटित हुयी । जहाँ तक 'महाभारत' का प्रश्न है निस्सन्देह इसका कार्य-क्षेत्र गंगा के पश्चिम का प्रदेश रहा । महाभारत की कहानी इन्द्रप्रस्थ-कुरुक्षेत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं मथुरा के त्रिकोण में सीमित रही। सम्भवतः दोनों कथाओं के घटनाक्रम में अन्तराल अधिक नहीं रहा हो। कुछ पुराविद एवं इतिहासकार इन दोनों महाकाव्यों की विषय-वस्तु को ही अन्धयुग का पर्याय मानते हैं, लेकिन विश्वासपूर्वक कहने के लिये गहन अध्ययन की आवश्यकता को बल मिला।

दोनों महा-काव्यों के रचनाकाल एवम् ऐतिहासिकता को लेकर विद्वानों में मतान्तर है, लेकिन इस बात से सभी सहमत हैं कि रचनाकाल कुछ भी हो, पर दोनों ही ग्रन्थ समकालीन नहीं हैं। यह भी स्वीकारते हैं कि इनका वर्तमान लिखितरूप ईसा की तृतीय या चतुर्थ शताब्दी का है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वर्तमान में उपलब्ध कथा में प्रक्षिप्तांशों का समावेश मिलता है।

प्रचलित मतानुसार रामायण का काल, महाभारत के काल से पूर्व का माना गया है। कुछ अपवादों को छोड़कर, दोनों ग्रन्थों की विषय-वस्तु इसकी पुष्टि करती है। उदाहरण के लिये, रामायण के कथा-क्रम में महाभारण काल के किसी भी पात्र या घटना का उल्लेख नहीं मिलता है। अपवादस्वरूप अयोध्या-काण्ड, सर्ग ६८, श्लोक १३ में हस्तिनापुर का उल्लेख मिलता है। उल्लेख तो 'अर्जुन' शब्द का भी मिलता है, लेकिन वृक्ष की संज्ञा में। महाभारत के कथा-क्रम में रामायणकालीन पात्रों एवं घटनाओं का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है। यहाँ तक कि रामायण के रचयिता बाल्मीकि का भी उल्लेख मिलता है। इससे यह स्पष्ट है कि महाभारत को वर्तमान स्वरूप बाल्मीकि रामायण की रचना के पश्चात् ही प्राप्त हुआ है।

साहित्यिक सन्दर्भ में रामायण की विषयवस्तु से सम्बन्धित कथा का उल्लेख वेदों में नहीं मिलता है। अपवादस्वरूप कुछ पात्रों के उल्लेख अवश्य मिलते हैं। यथा—इच्छवाकु (ऋग्वेद—१.१२६.४) एवं (अ० वे० XIV ३९.९); राम (ऋग्वेद X.९३), जनक-विदेह (तै०ब्रा० III १०.९; शतपथ ब्रा० ३.१.२/४) लेकिन राम कथानक के सन्दर्भ में नहीं। जहाँ तक पौराणिक साहित्य का प्रश्न है, इसमें रामकथा का उल्लेख ही नहीं बल्कि वंशावलि भी मिलती है। साथ ही कुछ ऐसे उल्लेख भी हैं जो रामायण एवं महाभारत के पात्रों के समकालीन होने की ओर इंगित करते हैं, यथा—ऐतरेय ब्राह्मण (४.२७.३४) में राम मार्गवेय और जन्मेजय के समकालीन होने का आभास, छान्दोग्य उपनिषद् (५.११.४) में अश्वपति व कैकय का उल्लेख तथा बृहदारण्यक उपनिषद् में जनक और याज्ञवल्क्य के समकालीन होने का उल्लेख मिलता है। एक अन्य सन्दर्भ में राजा जनक के दरबार में दार्शनिक परिचर्चा में उल्लेख है कि "भुज्यु लाह्यायिनी द्वारा उद्दालक आरुणी से राजा परीक्षित के वंशजों के बारे में प्रश्न करना—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्त पारिक्षिता अभवन" अर्थात् परीक्षित के वंशज कहाँ गये ? इनसे ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारतकाल की घटनायें रामायणकाल के पूर्व की हैं।

ईसापूर्व पांचवीं शताब्दी के विद्वान 'पाणिनि' ने अपने ग्रन्थ **'अष्टाध्यायी'** में कुरु जनपद (४-१-१७२; ६-१-१०१) एवम् हस्तिनापुर (४-२-१०१) का उल्लेख किया है। भागवत धर्म के सन्दर्भ में वासुदेव कृष्ण की भक्ति--"वासुदेवजुर्यनाभ्यां बुन् (४-३-१८) का भी उल्लेख किया है। (पाणिनि के समय में कृष्ण-वासुदेव की भक्ति के विकास को प्राचीन एवं अर्वाचीन सभी विद्वान स्वीकार करते हैं)। अष्टाध्यायी में कौशल जनपद (४-१-१७१), सरयु नदी व राजा इच्छ्वाकृ (६-४-१७४) का उल्लेख मिलता हैं लेकिन राम-कथानक के विषय में अष्टाध्यायी मौन है। ऐसा प्रतीत होता है कि पाणिनिकाल में राम-कथानक को जनसामान्य में वह स्थान प्राप्त नहीं था।

भाषा के दृष्टिकोण से बालमीकीय रामायण में कुछ अंश वेद-भाषा के अधिक निकट और पाणिनि के व्याकरणसम्मत प्रयोग से दूर हैं। साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं नैतिक आधार पर रामायण-काल महाभारतकाल से भिन्न प्रतीत होता है।

अधिकांशतः विद्वानों का तर्क है कि क्या वास्तव में महाकाव्यों का कोई कालविशेष था ? अतएव भारतीय पुरा-साहित्य में इनकी सार्थकता की पुष्टि करने के प्रयास में, आज से लगभग ३५ वर्ष पूर्व प्रो. ब्रजवासी लाल, भूतपूर्व महा-निदेशक, पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग, सम्प्रति अधिष्ठाता, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला, ने गंगा घाटी एवं सतलुज की ऊपरी खातों का विस्तृत सर्वेक्षण कर, उत्तर-प्रदेश के मेरठ जिले में हस्तिनापुर में उत्खनन किया। हस्तिनापुर उत्खनन के निम्न स्तरों से प्राप्त चित्रित धूसर मृदभाण्डों वाली विशिष्ट संस्कृति के अवशेष मिले हैं। यह अवशेष महाभारत ग्रन्थ में वर्णित सभी स्थानों से प्राप्त होते हैं। हस्तिनापुर के अतिरिक्त कुरुक्षेत्र, मथुरा, इन्द्रप्रस्थ, अहिच्छत्रा, अतरंजीखेड़ा एवं कौशाम्बी आदि के उत्खनन से इस संस्कृति के अवशेष मिले हैं। इसका काल ईसापूर्व १००० वर्ष के लगभग (९००-१२०० वर्ष ईसा पूर्व) माना गया है। उपरोक्त साक्ष्य के आधार पर चित्रित धूसर मृदभाण्ड वाली संस्कृति को महाभारतकालीन संस्कृति माना गया है।

महाभारत के सम्बन्ध में हुये पुरातात्विक कार्य के परिणामों से उत्साहित होकर रामायणकालीन पुरातत्व के अध्ययन पर भी ध्यान दिया गया। फल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप सन् १९७५ में राम-कथानक सम्बन्धी स्थलों का पुरातात्विक सर्वेक्षण नई दिल्ली पुरातत्व विभाग, उत्तर-प्रदेश एवं जीवाजी विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में प्रोफेसर ब्रजवासी लाल, तत्कालीन वरिष्ठ प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर के निर्देशन में प्रारम्भ किया गया।

रामायणसम्बन्धी स्थलों के पुरातात्विक अध्ययन का शुभारम्भ अयोध्या नगर में ३१ मार्च १९७५ को तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षामन्त्री प्रो० सैयद नूरुल हसन, सम्प्रति सोवियत रूस में भारतीय राजदूत, के द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अध्ययन परियोजना के अन्तर्गत हुये उत्खनन से प्राप्त सामग्री पर समय-समय पर देश एवं विदेश के शोध-पत्रों एवं अन्य पत्रों में लेख प्रकाशित होते रहे हैं। यथा —धर्मयुग, पुरातत्व, मैन एण्ड इनवायरनमेन्ट, इलस्ट्रेटेड लण्डन न्यूज (लन्दन से प्रकाशित) आदि।

बाल्मीकि रामायण में वर्णित राम के वनगमन के समय अपनाये गये मार्ग को सर्वेक्षण के लिये प्राथमिकता दी गयी। अयोध्या से चित्रकूट तक के मार्ग में आये प्रमुख स्थान शृङ्गवेरपुर एवं भारद्वाज आश्रम पर उत्खनन कार्य किया गया। इन स्थानों के अतिरिक्त नन्दी ग्राम, जहाँ राम के वनवास के समय भरत ने आश्रम बनाकर प्रतीक्षा की थी; बिठूर, जहाँ बाल्मीकि का आश्रम था, परिहर (वर्तमान में परियर) जहाँ सीता का परित्याग किया गया था, का भी सर्वेक्षण किया गया तथा नन्दी ग्राम एवं परिहर पर उत्खनन कार्य भी।

अयोध्या नगर राम के जन्मस्थान के रूप में प्रसिद्ध है। यहाँ परियोजना के अन्तर्गत लगभग चौदह स्थानों पर उत्खनन खाइयाँ उत्खनित की गयीं। परिणामत: जो सांस्कृतिक बसावक्रम मिला वह इतना उत्साहवर्धक सिद्ध नहीं हुआ, जैसी कि आशा थी। अयोध्या के निम्न स्तरों से जिस संस्कृति के अवशेष मिलते हैं वह उत्तरी कृष्णमार्जित मृदभाण्ड (उत्तरी काले ओयदार मृदभाण्ड—Northern Black Polished Ware)। यह संस्कृति कालक्रम में चित्रित धूसर मृदभाण्ड वाली संस्कृति के पश्चात् की संस्कृति है। इसका प्रचलन ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी में जनपदकाल में चरम सीमा पर था। यह काल बौद्धधर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध का काल था। उत्तरी कृष्णमार्जित संस्कृति का उद्भव महात्मा बुद्ध के लगभग १०० या १५० वर्ष पूर्व हुआ होगा, तभी इस काल में चरम सीमा को प्राप्त हुयी होगी। चित्रित धूसर मृदभाण्ड के प्रकार तथा उक्त मृदभाण्डों पर उत्तरी कृष्णमार्जित मृदभाण्डों की पर्णी (Slip) का उपयोग इस तथ्य का द्योतक है कि उत्तरी कृष्णमार्जित मृदभाण्डों का उद्भव एवं विकास चित्रित धूसर मृदभाण्ड (Painted Grey Ware) वाली संस्कृति से हुआ है। जैसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि पूर्व में कहा जा चुका है कि चित्रित धूसर मृदभाण्ड वाली संस्कृति का काल ईसा पूर्व लगभग ११०० वर्ष माना गया है। प्रोफेसर लाल के अनुसार यह लगभग ईसा पूर्व ६०० वर्ष तक प्रचलित रही। इस कालक्रम के आधार पर उत्तरी कृष्ण-मार्जित मृदभाण्ड वाली संस्कृति के उद्‌भव एवं विकास में लगभग १५० से १०० वर्ष का समय लग गया होगा। अयोध्या के निम्नस्तरों की संस्कृति निश्चित रूप से इस काल की है, जबकि चित्रित धूसर मृदभाण्ड वाली संस्कृति अपना वर्चस्व खो चुकी थी और नयी उत्तरी कृष्णमार्जित मृदभाण्ड वाली संस्कृति पनप रही थी। स्तरीय कालक्रम में इस संक्रमणिक संस्कृति का काल लगभग ईसा-पूर्व आठवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में माना जा सकता है। यही काल है अयोध्या के प्रथम मानव-बसावक्रम का।

अयोध्या से प्राप्त स्तरीय कालक्रम की पुष्टि नन्दीग्राम, परिहर, भारद्वाज आश्रम एवं श्रृंगवेरपुर उत्खनन से होती है। उपरोक्त स्थानों में श्रृंगवेरपुर ही एक ऐसा स्थान है जिसके निम्न स्तरों में उत्तरी कृष्णमार्जित मृदभाण्ड वाली संस्कृति के पूर्व की दो संस्कृतियों के अवशेष प्राप्त हुये हैं, वह है कृष्णपर्णी मृदभाण्ड (Black Slipped Ware) एवं गेरुये रंग के मृदभाण्ड (Ochre Coloured Ware) वाली संस्कृतियाँ। बिठूर एवं चित्रकूट में उत्खनन कार्य नहीं हुआ है, लेकिन सर्वेक्षण में प्राचीनतम सांस्कृतिक अवशेषों में कृष्णमार्जित मृदभाण्ड वाली संस्कृति के मृद्‌पात्र मिलते हैं। लक्ष्मणटीला एवं मिथला से प्राप्त साक्ष्य भी इसी कालक्रम के अनुरूप हैं।

दोनों महाकाव्यों की विषयवस्तु में वर्णित भौगोलिक स्थिति के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि दशरथपुत्र राम की कार्यस्थली गंगा के पूर्वीप्रदेश में अयोध्या, प्रयाग एवं प्रयाग से गंगा के दक्षिण एवं दक्षिणी पठार रहा है। महाभारत के कृष्ण का क्षेत्र गंगा के पश्चिमी भू-भाग में हस्तिनापुर, मथुरा, कुरुक्षेत्र एवं द्वारका तक फैला हुआ है।

राजनैतिक पृष्ठभूमि में महाभारत की विषयवस्तु आर्य राजाओं के उत्तराधिकार का युद्ध है, तो रामायण की कथा गंगा के दक्षिण में आर्य संस्कृति के प्रसार का द्योतक है। निसन्देह रामायण धार्मिक-सामाजिक स्थिति में आर्य संस्कृति के मापदण्डों का प्रतिष्ठापन है, जबकि महाभारत में तत्कालीन विकृतियों का वर्णन भी समाहित है। नैतिक दृष्टि से भी राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा गया है, जबकि कृष्ण के द्वारा मर्यादाओं का उल्लंघन भी बताया गया है।

दोनों ग्रन्थों के उपरोक्त अध्ययन से यह तो स्पष्ट है कि महाभारत का काल रामायणकाल के पश्चात् का है। दोनों के मध्य कितना अन्तराल था, यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना असम्भव तो नहीं, लेकिन दुष्कर अवश्य है। पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर दोनों महाकाव्यों का काल ईसापूर्व आठवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी के मध्य का है। सम्भवत: दोनों में अधिक अन्तराल न हो। यह भी दृष्टिगत रखना है कि भौगोलिक स्थिति में जहाँ राम के नेतृत्व में पूर्वी भारत और दक्षिण में आर्य संस्कृति का प्रसार हो रहा था, वहाँ आर्यावर्त में उत्तराधिकार के लिये युद्ध। जो भी हो, इतना स्पष्ट है कि भारतीय पौराणिक साहित्य एवं पुरातात्विक साक्ष्यों में अभी तक समन्वय नहीं हो पाया है। भविष्य के प्रति आशावान होना चाहिए और पुरातात्विक विस्तृत सर्वेक्षण को प्रोत्साहन मिलना चाहिये, ताकि भारतीय पौराणिक साहित्य की गरिमा कुण्ठित न हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों की दार्शनिक पीठिका

—डा० जयशंकर मिश्र, रीडर
इतिहास विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा का स्वरूप अत्यन्त ज्ञानपरक, सुव्यवस्थित और सुनियोजित था, जिसमें व्यक्ति के लौकिक और पारलौकिक जीवन के उत्थान के लिये विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थीं। भौतिक और आध्यात्मिक जीवननिर्माण तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों को निष्पन्न करने के लिये शिक्षा की नितान्त आवश्यकता थी। वस्तुतः मनुष्य और समाज का आध्यात्मिक और बौद्धिक उत्कर्ष शिक्षा के ही माध्यम से सम्भव माना जाता रहा है। शिक्षा से मनुष्य का जीवन सम्पन्न, परिष्कृत और समुन्नत ही नहीं होता, बल्कि समाज भी सात्विक और नैतिक निर्देशों का पालन करता हुआ, सन्मार्ग पर चलकर विकसित होता है। मनुष्य का जीवन, शिक्षा और ज्ञान से ही धर्मप्रवण, नैतिक मूल्यों से युक्त, उच्च आदर्शों से संबलित और बहुमुखी व्यक्तितत्व से युक्त होता है। विद्यार्जन से व्यक्ति आत्मनिर्भरता तो प्राप्त करता ही है, साथ ही परिवार और समाज के निर्माण में योग प्रदान करता है। मनुष्य की धार्मिक वृत्तियों का उत्थान, उसके चरित्र का उत्थान, उसके व्यक्तितत्व का उत्थान, उसके सामाजिक उत्तरदायित्वों का निष्पादन और उसके सांस्कृतिक जीवन का उत्थान शिक्षा के प्रधान उद्देश्य हैं। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य अपने इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति में लगा रहता है। अथर्ववेद में विद्या अथवा शिक्षा के उद्देश्य और उसके परिणाम का उल्लेख किया गया है, जिसमें श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धन, आयु और अमृतत्व को सन्निहित किया गया है।[1] यहाँ हम प्राचीन भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों की दार्शनिक पीठिका का विश्लेषण कर रहे हैं।

(१) मनुष्य की धार्मिक वृत्तियों का उत्थान :—

मनुष्य के जोवन में धार्मिक वृत्तियों का उदात्त और गरिमामय स्थान है, जिससे मनुष्य का जीवन भक्ति-प्रवण और धर्म-प्रवण होता है। इस प्रकार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावना भारतीय समाज में प्राचीन काल से रही है। विद्यार्थियों के जीवन में भक्ति, धर्म, शुद्धता और पवित्रता की भावना का आरोपण शिक्षा के माध्यम से होता रहा है। ब्रह्मचारी द्वारा दैनिक क्रिया, सन्ध्योपासना, व्रतों का अनुपालन, धर्मसमन्वित उत्सव आदि का अनुगमन, उसकी धार्मिक वृत्तियों के उत्थान में योग देते रहे हैं। जीवन के उत्थान और विकास के लिये आत्मविश्वास, आत्मबल और आत्मिक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है जो धार्मिक भावना से और सबल होती है। व्रतों के पालन से संयमी मनुष्य को निश्चय ही अपने उस गूढ़ स्वरूप का भान होता है जो उसके आत्मविश्वास का कारण होता है।[2] गुरुकुल में रहते हुए, अग्नि-परिचर्या के नैत्यिक नियम का पालन ही ब्रह्मचारी का धार्मिक व्रत था और अनुशासन का एक अंग भी।[3] मनु के अनुसार शौच, पवित्रता, आचार, स्नान-क्रिया आदि अग्निकार्य और संध्योपासन ब्रह्मचारी का धर्म था। इसके साथ ही उसे धर्म के पालन में प्रमाद न करने का निर्देश दिया गया था जिससे उसका धर्मनिष्ठ व्यवहार बना रहे।[4]

गुरुकुल अथवा गुरु के सानिध्य में रहने वाला ब्रह्मचारी निष्ठापूर्वक धार्मिक निर्देशों का पालन करता था। अगर उसे किसी बात पर शंका होती थी, तो गुरु उसका निवारण करता था। तैत्तिरीय उपनिषद् में ऐसे पृच्छा करने वाले ब्रह्मचारी के लिये कहा गया है, "यदि तुम्हें कभी अपने कर्तव्य अथवा सदाचार के विषय में सन्देह उपस्थित हो तो जो विचारशील, तपस्वी, कर्त्तव्यपरायण, कोमल स्वभाव के धर्मात्मा-ब्राह्मण-विद्वान् हों, उनकी सेवा में उपस्थित होकर अपना समाधान करो और उनके आचरण और उपदेश का अनुसरण करो। इसी प्रकार उन व्यक्तियों के प्रति, जिन पर रोष और आरोप किया जाता हो, अपने व्यवहार का ही अनुसरण करना चाहिये।"[5]

सामान्यतः विद्यार्थी के लिये संध्या-वन्दना, पूजा-पाठ, स्नान, सच्चरित्रता आदि धर्म के अन्तर्गत गृहीत किये गये हैं। सत्यभाषण भी प्रमुख माना गया था और यह कहा गया था कि सत्य बोलने से सभी अधर्मों का क्षय हो जाता है।[6] शिक्षार्थी के विभिन्न नियम धर्ममूलक प्रवृत्तियों के विकास में सहायक होते थे। इन्हीं नियमों के आधार पर विद्यार्थी लौकिक और पारलौकिक जीवन को उदात्त बनाने और विभिन्न उत्तरदायित्वों को सम्पन्न करने में सक्षम होता था। वह आध्यात्मिक जगत के विषय में जानने का प्रयास करता था तथा उसके निमित्त सात्विक जीवन को और तपःशील करता था। अतः मनुष्य के जीवन में तप, दान, आर्जय (सरलता), अहिंसा और सत्यवचन अनिवार्य माने गये।[7] क्योंकि धर्ममूलक प्रवृत्तियाँ इन्हीं तत्वों से प्रेरित होती थीं तथा व्यक्ति उन पर आचरण करता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छांदोग्य उपनिषद् में धर्म के तीन स्कन्ध अथवा आधारस्तम्भ बताये गये हैं। यज्ञ, अध्ययन और दान पहला स्कन्ध है। तप अर्थात् कष्ट-सहिष्णुता ही दूसरा स्कन्ध है। आचार्य-कुल (गुरुकुल) में रहते हुये अपने शरीर को अत्यन्त क्षीण कर देना तीसरा स्कन्ध है। इनका अनुगमन करने वाले पुण्यलोक को प्राप्त करते हैं।[8]

(२) मनुष्य के चरित्र का उत्थान :—

मनुष्य के चरित्र का उत्थान शिक्षा का दूसरा उद्देश्य माना जा सकता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति नैतिक क्रियायें सम्पन्न करता हुआ सन्मार्ग का अनुसरण करता था। चरित्र और आचरण का इतना बड़ा महत्व था कि समस्त वेदों का ज्ञाता विद्वान, सच्चरित्रता और सदाचरण के अभाव में माननीय नहीं था, किन्तु केवल गायत्री मन्त्र का ज्ञाता पण्डित अपनी सच्चरित्रता के कारण माननीय और पूजनीय था। वस्तुतः सच्चरित्रता मनुष्य का भूषण मानी गयी है। आचार-सम्पन्न और चरित्रवान व्यक्ति अभिनन्दनीय था; आचरणहीन और चरित्रहीन व्यक्ति निन्दनीय। सत्कर्मो से ही चरित्र का उत्थान माना गया था। ये सत्कर्म नैतिक मूल्यों से ही संचालित होते थे। शिक्षा-अवधि में ही मनुष्य के आचरण और चरित्र को उन्नत करने का प्रयास किया जाता था। समाज के अन्य लोगों के साथ उसके सद्व्यवहार की प्रवृत्ति उसके चरित्रोत्थान में सहायक तत्व थीं। सहिष्णुता और सौहार्द्र, सत्यनिष्ठा और नैतिकता तथा सदाचरण और आदर्श, मनुष्य के चरित्रोत्थान के प्रधान कारणभूत तत्व थे। अतः धर्मचरित्र का जिसमें वर्धन था, वही पण्डित था।[9]

शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति अपनी तामसी और पाशविक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण रखता था तथा सत्-असत् का भेद कर सकने में समर्थ होता था। जब मनुष्य को सत् का पूर्ण ज्ञान हो जाता था और अपने चरित्र एवं आचरण को वह तदनुकूल बना लेता था, तब उसके चरित्र का उत्थान प्रारम्भ होता था। विद्यार्थी-काल में ही शिक्षा की यथोचित प्राप्ति होती थी तथा चरित्र को तदनुरूप संघटित करने का अवसर मिलता था। इसलिये चरित्र का विकास और भावी जीवन के विस्तार का वह सर्वोत्तम काल था। अपने इस काल में शिक्षार्थी विभिन्न नियमों और निर्देशों का पालन सुगमतापूर्वक कर सकता था तथा व्यवहार, सदाचार और शील का अर्थ समझ सकता था।

ब्रह्मचारी का जीवन सत्य, तप और नियम का जीवन था। इसीलिये कहा गया था कि ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाला ही तेजोमय ब्रह्म (ज्ञान) को धारण करता था और उसमें समस्त देवता अधिवास करते थे।[10] समिधा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेखला द्वारा अपने व्रतों का पालन करते हुए ब्रह्मचारी श्रम और तप के प्रभाव से लोकों को समुन्नत करता था।[11] ब्रह्मचारी का तप और आचरण इतना शक्तिमान था कि सभी उसके सन्मुख नत होते थे। यह माना गया था कि ब्रह्मचर्य के तप से राजा, राष्ट्र की रक्षा में समर्थ होता है। ब्रह्मचर्य द्वारा ही आचार्य शिष्यों को यथोचित रूप में शिक्षित करने की योग्यता अपने में सम्पादित कर पाता था।[12] चरित्र और आचरण के उत्थान में ब्रह्मचर्य का व्रत अनिवार्य था, इसीलिये शिक्षार्थी को ब्रह्मचर्य-व्रती कहा गया था। ज्ञान की प्राप्ति के लिये अनिवार्य रूप से आवश्यक इन्द्रिय–निग्रह और व्रत-पालन का विचार भी प्रारम्भ से ही इसके साथ संयुक्त हो गया था।[13] वस्तुत: चरित्र के उत्थान में ब्रह्मचर्य का मौलिक अभिप्राय वेद, अथवा दूसरे शब्दों में ज्ञान को प्राप्त करना था[14], जो शाश्वत और दिव्य था। तप तो ब्रह्मचर्य जीवन का आवश्यक महिमामय अंग ही था।[15]

शौच, पवित्रता, आचार, स्नानक्रिया, अग्निकार्य और संध्योपासन ब्रह्मचारी के चरित्र के आधार-तत्त्व थे, जिससे उसके चरित्र का उत्थान होता था।[16]

(३) मनुष्य के व्यक्तित्व का उत्थान :—

शिक्षा और ज्ञान की प्राप्ति से मनुष्य के व्यक्तित्व का उत्कर्ष होता था। विभिन्न प्रकार के निर्देशों, संयमों और नियमों से मनुष्य का जीवन सुव्यवस्थित होता था, जिससे उसके व्यक्तित्व का विकास होता था। शिक्षाप्राप्ति से ही व्यक्ति विभिन्न कर्त्तव्यों का पालन कर सकने में सफल होता था। इससे उसके भीतर आत्मसंयस, आत्मचिन्तन, आत्मविश्वास, आत्मविश्लेषण, विवेक-भावना, न्याय-प्रवृत्ति और आध्यात्मिक वृत्ति का उदय होता था।

आत्मविश्वास की भावना से ही व्यक्तित्व का विकास समुचित रूप से होता है। प्राचीन भारत में यह माना गया कि शिक्षार्थी में आत्मविश्वास का होना उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का कारण है। अपने कर्मों और उत्तरदायित्वों को आत्म-विश्वास से ही, सही ढंग से निष्पन्न किया जा सकता था। इसीलिये ब्रह्मचारी में यह आत्मविश्वास जागृत कराया जाता था कि वह भावी जीवन की भयंकर कठिनाइयों में भी स्थिर-मति रह सके। इसी विश्वास के साथ वह गुरु के सानिध्य में रहकर, विभिन्न नियमों का पालन करता था और अपने अद्भुत साहस का परिचय देता था। भविष्य के संकटमय जीवन को अनुकूल बनाने में उसका आत्म-विश्वास ही उसका एकमात्र सहायक होता था। शिक्षा प्रारम्भ करने के पूर्व जब उपनयन संस्कार होता था, उसी समय उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मविश्वास जगाया जाता था। अग्नि से यह अर्चना की जाती थी कि वह छात्र पर अपनी दयादृष्टि रखे और उसकी बुद्धि, मेधा और शक्ति में वृद्धि करे।[17] जिससे अग्नि-शिखा की तरह उसकी विद्या और शक्ति-कीर्ति सभी दिशाओं में प्रसारित हो। अनेक देवताओं के पूजन के साथ उसमें यह भावना दृढ़ की जाती थी कि ये देवतागण उसकी रक्षा करेंगे। ब्रह्मचारी की चोट, रोग और मृत्यु के समय सविता देवता उसकी रक्षा करता था।[18]

ब्रह्मचारी से आत्मसंयम की अपेक्षा की जाती थी। आत्मसंयम का अभिप्राय आत्मनियन्त्रण से था। अपने कर्त्तव्यों का पालन करने की दृष्टि से, इन्द्रियों और मन की उच्छृंखल प्रवृत्तियों को नियन्त्रित और व्यवस्थित रखना आत्मसंयम था।

इससे व्यक्तित्व का उत्कर्ष स्वाभाविक गति से होता था। गीता में कहा गया है कि संयमयुक्त योग ही दुःखों को दूर करता है, जो यथायोग्य सोनेवाला और जागनेवाला होता है।[19] इस तरह व्रत, नियमित और व्यवस्थित आचरण, आत्मसंयम का महत्वपूर्ण आधार था। इससे विवेक–भावना और न्याय–प्रवृत्ति का उदय होता था, जिससे धार्मिकता और आध्यात्मिकता की अभिवृद्धि होती थी। अतः व्यक्तित्व के उत्थान में इन सभी तत्वों का सक्रिय योग रहा है।

(४) सामाजिक उत्तरदायित्वों का निष्पादन—

शिक्षित होने के कारण व्यक्ति अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को निष्ठापूर्वक निष्पन्न करता था। स्नातक के रूप में वह अपने ही हित का ध्यान नहीं रखता था, अपितु वह साधनहीन-जिज्ञासु विद्यार्थियों को निःशुल्क विद्या भी प्रदान करता था। वह अपने कर्म करते हुये अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा दृढ़ रखता था। पुत्र, पति और पिता के रूप में वह अपने विभिन्न उत्तरदायित्वों को सम्पन्न करता था। विद्यार्थी के समावर्तन समारोह के उपदेश में उसके लिये तैत्तिरीय उपनिषद् में इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया था, "सत्य बोलना, धर्म का आचरण करना। स्वाध्याय में प्रमाद न करना। आचार्य की दक्षिणा दे देने पर सन्तति-उत्पादन की परम्परा विच्छिन्न न करना। सत्य से न हटना। धर्म से न हटना। लाभ-कार्य में प्रमाद न करना। महान् बनने के शुभ-अवसर से न चूकना। पठन-पाठन के कर्त्तव्य में प्रमाद न करना। देवता और पितरों के कार्य (यज्ञ और श्राद्ध आदि) से आलस्य न करना। माता को देवी समझना। पिता को देवता समझना। आचार्य को देवता समझना। अतिथि को देवता समझना। अन्यान्य दोषरहित कार्यों को करना।[20] इस कथन से स्पष्ट है कि मनुष्य के अनेकानेक उत्तरदायित्व थे, जिन्हें वह शिक्षा-प्राप्ति के बाद सोत्साह मनोनिवेश-पूर्वक निष्पन्न करता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी वर्णों और जातियों के अपने पृथक्-पृथक् कर्म थे, जिनको सम्पादित करना उनका परमधर्म था। सबके अपने व्यवसाय थे, जिनके अनुसार वे अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते थे। शिक्षा और ज्ञान के कारण मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता था, अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों को निष्पन्न करता था तथा अपने उद्देश्यों को पूरा करने में सन्नद्ध हो जाता था। कार्य-विभाजन के अनुसार सभी वर्णों और जातियों के भिन्न-भिन्न कर्म थे, जिनका अनुपालन करना सभी लोगों का अपना कर्त्तव्य था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अपने विभिन्न कर्म थे, जिन्हें वे निष्ठापूर्वक सम्पादित करते थे। यद्यपि ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब इन वर्णों के कतिपय सदस्यों ने आपत्तिकाल में अपने वर्णगत कार्य का त्याग करके, दूसरे वर्णों के कर्म अपना लिये, जिससे वे अपने परिवार और समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कर सकें।

(५) सांस्कृतिक जीवन का उत्थान—

शिक्षा और विद्या के माध्यम से मनुष्य के सांस्कृतिक जीवन का भी उत्कर्ष होता है। शिक्षा से ही अतीत की संस्कृति वर्तमान में जोती है तथा पहले से चली आती हुई परम्परायें जीवन्त हो उठती हैं। अतः अपनी सन्तति को शिक्षा द्वारा ही शिक्षित करना और प्राचीन संस्कृति की ओर प्रवृत्त करना इसका प्रधान लक्ष्य था। वैदिक साहित्य तथा अन्यान्य विषयों का ज्ञान और उसका प्रसार, शिक्षा का प्रधान आधार था। वेदों को कण्ठस्थ करना और उन्हें यत्नपूर्वक मस्तिष्क में सुरक्षित रखना, तत्कालीन शिक्षार्थी का प्रधान कर्त्तव्य था, साथ ही आर्य संस्कृति का प्रधान उद्देश्य भी।

सांस्कृतिक जीवन के उन्नयन के लिये ऋण से मुक्ति की अनिवार्यता मानी गयी।[21] प्रत्येक द्विज परिवार में इन तीनों ऋणों की सम्यक्रूपेण पूर्ति करना प्रधान कर्त्तव्य था। वस्तुतः ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन कर व्यक्ति ऋषिऋण से तथा सन्तान (प्रजनन) द्वारा पितृऋण से उऋण होता था। देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण ये तीन ऋण थे, जिनसे मनुष्य को मुक्त होना अवश्यंभावी था। देव-ऋण से तब मुक्ति मिलती थी, जब परिवार-समाज में यज्ञ सम्पन्न किये जाते थे। ऋषि-ऋण से छुटकारा ग्रन्थों का सांगोपांग अध्ययन करने से मिलता था। पितृ-ऋण सन्तान उत्पन्न करने से उतरता था। इस प्रकार मनुष्य के सांस्कृतिक जीवन का विकास होता था।

ऊपर के विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा के उद्देश्य अत्यन्त उदात्त और गरिमामय थे, जिनकी दार्शनिक पीठिका अत्यन्त दृढ़ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सशक्त थी। यही कारण है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति एक सुनियोजित और सुव्यवस्थित मार्ग से अग्रसर हुई तथा शिक्षा के विभिन्न आयामों को पराकाष्ठा तक पहुँचाया।

सन्दर्भ—

१—अथर्ववेद, ११।३।१५

२—रश्मिमाला, १०।२, व्रतानां पालनेनैव तद्गूढ़मात्मदर्शनम्।
जायते यमिनां नूनमात्मविश्वासकारणम्॥

३—छां०उ०, ४।१०१, उपकौशलो ह्वै कामलायनः सत्यकामै बाबलै ब्रह्मचर्यमुपास। तस्य ह द्वादश वर्षाण्यग्नीन् परिचर्चाः।

४—मनु० २।६९, उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च, तै०उ०, १।११, ...धर्मं चर......
धर्मान्त... प्रमदितव्यम्।

५—तै०उ०, १।११, अथ यदि ते कर्मोविचिकित्सा वा वृत्तिविचिकित्सा वा स्यात्, ये तत्र ब्राह्मणः संभर्शिनी युक्ता आयुक्ता आलूक्षा धर्मकायाः स्यु यथा ते तत्र वर्तेरन्, तथा तत्र वर्तेथाः। अथाभ्यारव्यातेषु। ये तेषु वर्तेरन तथा तेषु वर्तेथाः।

६—अमृतमन्थन, १५।४, सर्वे धर्माः क्षयं यान्ति यदि सत्यं न विद्यते।

७—छां० उ०, ३।१७।४, अथ यत्तयो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः।

८—छां०उ०, २।३१।३, त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः। तप एव द्वितोया। ब्रह्मचर्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्। सर्वे एते पुण्यलोका भवन्ति।

९—महाभारत, अनुशासनपर्व, १२।३२।७८।

१०—अथर्ववेद, ११।५।२४, ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद विभर्त्ति। तस्मिन देशअधि विश्वे निषेदुः॥

११—वही, ११।५।४, ब्रह्मचारी समिधा मेखलया। श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति॥

१२—वही, ११।५।१७, ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्र वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥

१३—गोपथ ब्राह्मण, १।२, १-७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४–अमृत मन्थन, १।१।४५-४६, सर्वेषामपि भूतानां यत्तत्कारणमव्ययम् । कूटस्थं शाश्वतं दिव्यं, वेदो वा, ज्ञानमेव यत् ।। तदेतदुभयं ब्रह्म ब्रह्मणव्देन कथ्यते । तदुद्दिश्य व्रतं यस्य ब्रह्मचारी स उच्यते ।

१५–प्रश्नो०,५।३, स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ।

१६–भा०गृ०सू०, १।५, अयं ते इधा आत्मा जात वेदः तेन वर्द्धश्व चेद्धि वर्द्धय चार मान् ।

१७–आश्व०गु०सू०, १।२०।६, देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी स मा मृत ।

१८–गीता, ६।१७, युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तास्वप्ना वबोधस्य योगी भवति दुःखहा ।।

१९–तै०उ०, १।११, सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायमात्मन् प्रमदः । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तु मां व्यवच्छेत्सीः सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्त प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् । देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्य देवो भव । अतिथि देवो भव । यान्यनवदानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि ।

२०–श०ब्रा०, १।५।५ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन शिक्षा के प्रतिमान

—प्रो० डा० हर्षनारायण
लखनऊ

वैदिक जीवन–दृष्टि के अनुसार मनुष्य के तीन जन्म होते हैं। तीन प्रकार के जन्म, जिन्हें **शतपथ–ब्राह्मण** में इस प्रकार निरूपित किया गया है–'त्रिर्हवै पुरुषो जायते । एतन्नु एव मातुश्चाधि पितुश्चाग्रे जायते, अथ यं यज्ञ उपनयति स यद् यजते तद् द्वितीयं जायते, अथ यत्र म्रियते यत्रैनामग्नावभ्याद-धति स यत् ततस् सम्भवति तत् तृतीय जायते ।[1] अर्थात् प्रथम जन्म माता-पिता के प्रति माता के गर्भ से होता है। यह जन्म सर्वसाधारण है, सभी मनुष्यों का होता है। द्वितीय जन्म यज्ञ द्वारा होता है और तृतीय जन्म पुनर्जन्म **है** जो मरने और अग्नि को समर्पित होने के बाद मनुष्य को प्राप्त होता है। बृहन्नारदीय-पुराण में तीन जन्म किंचिद भेद के साथ कथित हैं—

'ब्राह्मण:, क्षत्रियो, वैश्यो, द्विजाः प्रोस्तास्त्रिजस्तथा,
मातृतश्चोपनयाद्, दीक्षाया जन्म वै क्रमात् ।'[1 क]

यह तीसरा जन्म भी सर्वसाधारण है। इनमें से तृतीय जन्म वाच्यार्थतः जन्मान्तर है, इस जीवन के बाद घटित होने वाला है, अतः प्रथम दो जन्म इस जीवन में महत्वपूर्ण हो जाते हैं। जिनके ये दोनों जन्म सिद्ध हो जाते हैं वे द्विज अथवा द्विजाति हैं, और शेष एक जाति। शास्त्रानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य (द्विज) द्विजाति हैं, जबकि शूद्र (एकज)—एक जाति।

'ब्राह्मणाः, क्षत्रिया, वैश्यास्त्रयो वर्णा द्विजातयः,
चतुर्थ एकजातिस् तु शूद्रोः, नास्ति तु पंचमः ।'[2]

प्रथम जन्म तो सभी प्राणियों का होता है, द्वितीय जन्म ही मनुष्य-कारक है, वास्तविक है, स्थायी है, स्थायी महत्व का है—

'आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद् वेदपारगः,
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्यां साजराऽमरा ।'[3]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस द्वितीय जन्म के विषय में **अथर्ववेद** की काव्यमयी उक्ति है—

'आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस् तिस्त्र उदरे विभर्ति, तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ।'[4]

अर्थात् आचार्य ब्रह्मचारी (छात्र) को, उसका उपनयन-संस्कार करते हुए, तीन रात अपने गर्भ में धारण करता है और इस प्रकार से उत्पन्न ब्रह्मचारी को देखने के लिए देवता भी दौड़ पड़ते हैं।

द्वितीय जन्म की तुलना में प्रथम जन्म का कितना कम महत्व है, यह **शतपथ-ब्राह्मण** के अधोलिखित वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है—

'मनद्धेव वा अस्यातः पुरा जानं भवति। इदं ह्याहुः रक्षांसि योषितमनुसचन्ते, तदुत रक्षांस्येव रेत आदधतीति । अथात्राद्धा जायते यो ब्राह्मणो यो यज्ञान् जायते। तस्मादपि राजन्यं वा वैश्यो बा ब्राह्मण इत्येव ब्रुयात्, ब्राह्मणो हि जायते यो यज्ञाज्जायते ।'[5]

अर्थात् उपनयन अथवा दीक्षा के पूर्व जो जन्म हुआ होता है वह वस्तुतः अविनिश्चित ही होता है। कहते हैं कि उस जन्म में राक्षसों के वीर्य का भी सम्मिश्रण रहता है। अतः वास्तविक जन्म वह है जो ब्रह्म (वेद) और यज्ञ द्वारा सम्पन्न होता है। और चूंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ब्रह्म और यज्ञ से भी उत्पन्न होते हैं, अतः क्षत्रिय और वैश्य को भी ब्राह्मण कह सकते हैं।

अस्तु छात्र की महिमा **अथर्ववेद** की उपर्युदाहृत इस उक्ति से भलीभाँति प्रकट होती है कि उसे उपनीत होकर निकलते देखने के लिए देवता दौड़ पड़ते हैं। **भारद्वाज-गृह्यसूत्र** में तो यहाँ तक कहा गया है कि समावर्तन-संस्कार के पूर्व ब्रह्मचारी प्रातःकाल एक कमरे में बन्द कर दिया जाता था, ताकि उसकी ज्योति सूर्य की ज्योति को लज्जित न कर दे।[6] वस्तुतः विद्यार्थी के मार्ग से राजा भी हट जाता था।[7]

वस्तुतः प्रथम जन्म प्रकृति में होता है और द्वितीय जन्म संस्कृति में। प्रथम जन्म प्राकृतिक होता है और द्वितीय जन्म सांस्कृतिक और संस्कृति ही मनुष्य को अन्य प्राणियों से भिन्न करती है। वैदिक परम्परा के अनुसार मनुष्य का संस्कृति में जन्म, उपनयन-संस्कार, यज्ञोपवीत-संस्कार से होता है। यह संस्कार संस्कृति, शिक्षा, आचार्यकुल अथवा गुरुकुल के लिए प्रवेशपत्र है। यह प्रवेशपत्र व्रतहीनों के लिए नहीं है, उनके लिए है जो संस्कृति के लिए व्रत लेने को तैयार हों, संस्कृति के प्रति प्रतिश्रुत और प्रतिबद्ध हों, अनृत से सत्य की ओर संक्रमण की निष्ठा रखते हों, जिसका संकेत अधोलिखित वेद-मन्त्र में पाया जाता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तच्छकेयं, तन्मे राध्यताम् ।
'इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ।'[8]

व्रत से ही दीक्षा प्राप्त होती है, दीक्षा से दक्षिणा, दक्षिणा से श्रद्धा, और श्रद्धा से सत्य—

'व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्,
'दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते ।'[9]

विद्याव्रत प्राचीन काल में प्रायः 'द्विजों' (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों) के लिए प्रतिपादित था। वस्तुतः उक्त तीन वर्ण द्विज इसीलिए कहलाते थे कि उनका उपनयन, यज्ञोपवीत और व्रत द्वारा दूसरा जन्म सम्पन्न होता था। **बोधायन-गृह्यसूत्र** रथकार (बढ़ई) के लिए भी उपनयन का द्वार खोलता है।[10] (रथकार वैश्य पुरुष और शूद्र स्त्री से उत्पन्न सन्तान का अभिधान है)। **महाभारत** से सूचना मिलती है कि अति प्राचीनकाल में चाण्डालों को भी वेद-श्रवण (वेदाध्ययन) का अधिकार था—

'पुरा वेदान् ब्राह्मणा ग्राममध्ये धुष्टस्वरा वृषलान् श्रावयन्ति ।[11]

महाभारत के अधोलिखित श्लोक से भी यह सिद्ध होता है—

'सर्वे वर्णा-ब्राह्मणा ब्रह्मणाश् च सर्वे-नित्यं व्याहरन्ते तं ब्रह्म ।
'तत्वं शास्त्रं ब्रह्मबुद्ध्या ब्रवीमि, सर्वं विश्वं ब्रह्म चैतत् समस्तम् ।'[12]

अहिर्बुध्न्य-संहिता चारों वर्णों को वेदाध्ययन का अधिकार देती है—

'ये हि ब्रह्ममुखादिभ्यो वर्णाश्चत्वार उद्गताः,
'ते सम्यगधिकुर्वन्ति त्रय्यादीनां चतुष्टयम् ।'[13]

जैमिनि से प्राचीनतर मीमांसासूत्रकार बादरि वैदिक धर्म-कर्म में शूद्र का भी अधिकार मानते थे—

'निमित्तार्थेन बादरिः, तस्मात् सर्वाधिकारं स्यात् ।'[14]

भारद्वाज-श्रौतसूत्र के अनुसार किन्हीं आचार्यों का मत है कि शूद्र भी तीनों वैदिक अग्नियाँ जला सकता है।'[15] लघुविष्णुस्मृति पंचमहायज्ञ का अधिकार शूद्र को देती है—

'पंचयज्ञविधानं तु शूद्रस्यापि विधीयते ।'[16]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृद्धहारोत-स्मृति शूद्र को भी मन्त्राधिकार देती है—

'मन्त्राधिकारिण: सर्वे, ह्यनन्यशरणा यदि ।'[17]

महाभारत में शूद्रसहित चारों वर्णों के वेदाधिकार के सम्बन्ध में एक विधि-वाक्य भी प्राप्त होता है—

'श्रावमेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रत: ।
वेदस्याध्ययनं हीदं, तच्च कार्यं महत् स्मृतम् ।'[18]

और यजुर्वेद में अत्यन्त सुस्पष्ट शब्दावली में मन्त्राधिकार शूद्र आदि सबको दिया गया है—

'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य: ।
ब्रह्म-राजन्याभ्यां, शूद्राय, चार्याय च, स्वाय, चारणाय च ।'[19]

इस प्रकार सिद्ध होता है कि यद्यपि शूद्र को वेदाध्ययन का अधिकार सामान्यत: वर्जित था, तथापि ऐसे आचार्य हो गये हैं जिन्होंने वेदाध्ययन का द्वार शूद्र के लिए खोलने का उपक्रम किया ।

स्वामी दयानन्द ने एक स्थान पर लिखा है— 'और जो कुलीन शुभ लक्षणयुक्त शूद्र हों, तो उसको मन्त्रसंहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे । शूद्र पढ़े परन्तु उसका उपनयन न करें, यह मत अनेक आचार्यों का है ।[20] हमें उन आचार्यों का पता नहीं ।'

स्त्रियों के वेदाध्ययन आदि को लेकर भी प्राचीन ग्रन्थों में मतभेद पाया जाता है । पुराण आदि में शूद्र के साथ-साथ स्त्री को भी वेदाध्ययन का निषेध किया गया है—

'स्त्री-शूद्र द्विजबन्धूनां त्रयो न श्रुतिगोचरा ।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ।'[21]

किन्तु अति प्राचीनकाल में स्त्री का यज्ञोपवीत भी होता था और उसे वेदाध्ययन तथा गायत्री का भी अधिकार था—

'पुराकल्पेषु नारीणां मौन्जीबन्धनमिष्यते,
अध्यापनं च वेदानां, सावित्रीवचनं तथा ।'[22]

अथर्ववेद में कन्या के लिए भी ब्रह्मचर्य के बाद विवाह का विधान है—
'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।'[23]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कन्दपुराण की अंगभूत **सूतसंहिता** में कण्ठतः स्वीकार किया गया है कि वेदाभ्यास का अधिकार द्विज-स्त्रियों को भी है—

'द्विजस्त्रीणामपि श्रोतयज्ञेऽधिकारिता ।'[24]

कहीं-कहीं 'यज्ञोपवीतनी' कन्या का भी उल्लेख है,[25] और यह भी आता है कि पति के साथ पत्नी भी वेद-पाठ करे ।'[26] और **गोभिल गृह्यसूत्र** में यह बात साफ की गई है कि पत्नी बिना पढ़े हवन नहीं कर सकती—'न हि खलु अनधीत्य शक्नोति पत्नी होतुम् ।'[27] मध्व-सम्प्रदाय में अधोलिखित श्लोक प्रचलित है—

'आहुरप्युजमस्त्रीणामधिकारं तु वेदिके ।
यथोर्वशी समीचैव, शच्याधाश् च, तथाऽपराः ।'[28]

हारीत-स्मृति में दो प्रकार की स्त्रियाँ मानी गयी हैं–ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू । ब्रह्मवादिनी को उपनयन, मौंजीबन्धन और स्वगृह में भिक्षाचर्या का अधिकार है, जबकि सद्योवधू का उपनयन नहीं होता–'द्विविधा हि स्त्रियः-ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश च। तत्र ब्रह्मवादिनमुनयनं, अग्निन्धनं, स्वगृहे भिक्षाचर्यं च । सद्योवधूनामुपनयनम कृत्वा विवाहः कार्यः ।'[29]

इस प्रकार हम देखते हैं कि शूद्रों और स्त्रियों के उपनयनाधिकार और वेदाध्ययनाधिकार को लेकर प्राचीन काल में दोनों परस्पर विरोधी मत प्रचलित थे ।

किन्तु यह मतभेद केवल वेदाध्ययन के सम्बन्ध में था, अध्ययन मात्र के सम्बन्ध में नहीं । अन्य प्रकार के अध्ययन में सैद्धान्तिक रूप से प्रायः सबको अधिकार था, यहाँ तक कि ब्रह्मविद्या में भी । जो शंकराचार्य शूद्र के लिए वेदाध्ययन का बलपूर्वक निषेध करते हैं, वेद–मन्त्र सुननेमात्र से शूद्र के कान लाख और सीसे से भर देने की **गौतम-धर्मसूत्र** में प्रतिपादित परम्परा का अनुमोदन उल्लेख करते हैं,[30] वे ही विदुर, धर्मव्याध आदि को आत्मज्ञानी[31], तथा वाचक्नवी, रैक्व आदि को ब्रह्मज्ञानी[32] मानते हैं, जबकि ये सब या तो शूद्र या शूद्रोत्पन्न हैं या अज्ञातजन्मा ।

एक बात और स्पष्ट है । सम्पूर्ण भारतीय निगमागम में सहशिक्षा की कोई कल्पना नहीं है । वस्तुतः केवल पुरुषों के आचार्यकुलों, गुरुकुलों की सूचना प्राप्त होती है । आचार्य से ही दो स्त्रीलिंग शब्द बनते हैं–आचार्यानी और आचार्या । आचार्यानी का अर्थ तो आचार्य-पत्नी है[33] किन्तु आचार्या को आचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समकक्ष अवश्य माना जाता है। वस्तुतः वैयाकरण 'आचार्या' शब्द का अर्थ करते हुए कहते हैं, 'आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी। ——आचार्या स्वयं-व्याख्यात्री।'[34] और ऊपर टिप्पणी २२ में जिस श्लोक का हवाला दिया गया है उसे उद्धृत करते हुए कहते हैं कि प्राचीनकाल में जो ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ हो गयी हैं उन्हीं को लक्ष्य करके उपाध्यायी और आचार्या शब्द बनाये गये हैं।[35] इससे स्पष्ट हो जाता है कि कभी स्त्रियाँ आचार्य भी हुआ करती थीं, और आचार्य की परिभाषा **मनुस्मृति** में इस प्रकार की गई है—

'उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यायेद् द्विजः,
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते।'[36]

अर्थात्, वेद का अध्यापक आचार्य कहलाता था, अतः वेद की अध्यापिका आचार्या कही जाती थी। तथापि उनकी अध्यापन–संस्था अथवा अध्यापन-प्रक्रिया आदि के विषय में, जहाँ तक हमें पता है, परम्परा नहीं है। ऐसा नहीं सुना जाता कि अमुक कन्या यज्ञोपवीतनी अथवा उपनीत होकर किसी आचार्या के कुल में अध्ययनार्थ गयी हो।

यही दशा 'उपाध्यायी' शब्द की है। उपाध्यायानी उपाध्याय–पत्नी और उपाध्यायी स्वयं व्याख्यात्री। ऊपर टिप्पणी ३३ से ३५ तक दिये हुए सन्दर्भों में इस पर भी उसी प्रकार विचार हुआ है। उपाध्याय की परिभाषा देते हुए मनु कहते हैं कि जो वेद का केवल एक अंश अथवा वेदान्त पढ़ाये और वह भी वृत्ति लेकर, उसे उपाध्याय कहते हैं—

'एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः,
योऽध्यापयति वृत्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते।'[37]

उपाध्यायी के विषय में वही प्रश्न उठता है जो आचार्या के प्रसंग में अभी उठाया गया है।

यहाँ प्रसंगतः यह भी उल्लेखनीय है कि वृत्ति लेकर विद्या–दान को प्राचीनकाल में निन्दनीय माना जाता था। शास्त्र–विक्रयी की निन्दा सर्वत्र है। कालिदास ज्ञान बेचने वाले को वणिक् घोषित करते हैं :—

'यस्यागमः केवल जीविकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।'[38]

अस्तु, छात्र दो प्रकार के होते थे–(१) अन्तेवासी,[39] अथवा 'आचार्य-कुलवासी'[40] और (२) 'दण्डमाणव'[41]— जैसे आजकल के छात्रावासी और दैनन्दिन विद्यार्थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीनकाल में पाठ्यक्रम तीन प्रकार का था—(१) वेद-विद्या (त्रयी-विद्या) (२) धर्मशास्त्र–मोक्षशास्त्र और (३) लोकायत (सेक्युलर)। वेदाध्ययन चरणों में और शाखाओं में होता था। वेद के अनेक चरण, अनेक शाखायें बन गये। प्रत्येक शाखा से सम्बद्ध विशालकाय वांग्मय बन गया–अनुशाखा, ब्राह्मण, अनुब्राह्मण, आरण्यक, निषद्, उपनिषद्, कल्प, अनुकल्प। शाखाध्यायिनी स्त्रियाँ भी होती थीं। कठशाखाध्यायिनी 'कठी' इत्यादि।[42] वेद–विद्या (त्रयी–विद्या) का प्रचार-प्रसार मुख्यतः ब्राह्मणों में रहा। राजाओं के लिए भी इस विद्या का अध्ययन शास्त्रतः अनिवार्य था, यद्यपि व्यवहार में इस प्रकार का राजन्य–वर्ग के बीच घटता गया है। धर्मशास्त्र का प्रचार ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वर्णों में था। मोक्षशास्त्र की शिक्षा-दीक्षा में क्षत्रिय एक समय, उपनिषत्काल में ब्राह्मणों से बाजी मार ले गये। **छान्दोग्योपनिषद्** में ब्रह्मविद्या विशेष के सम्बन्ध में राजा प्रवाहण जैबलि के मुख से ब्रह्मर्षि गौतम के प्रति कहलाया है, 'इयं न प्राक् त्वतः पुरा विद्या ब्राह्मणान् गच्छति।'[43] **बृहदारण्यकोपनिषद्** में भी कहा गया है, 'इयं विद्येतः पूर्वं न कस्मिश्चन ब्राह्मण उवाच।'[44] **गीता** में कृष्ण का वक्तव्य है कि उनके द्वारा उपदिष्ट कर्मयोग राजर्षि परम्परा में ही प्रचार–प्रसार को प्राप्त हुआ।'[45] इस विद्या में आगे चलकर श्रमणों ने भी पर्याप्त योगदान किया। इसी में आन्वीक्षिकी, दर्शनशास्त्र अथवा तर्कशास्त्र का भी विकास हुआ, जिसे ब्राह्मण आरम्भ में शंका की दृष्टि से देखते थे। काश्यप के प्रति शृगालत्वापन्न इन्द्र की उक्ति **महाभारत** में इस प्रकार है—

'अहमासं पण्डितकां, हेतुकां वेदनिन्दकः,
आन्वीक्षिकीं तर्कविद्यामनुरक्तो निरर्थकाम्।
हेतुवादान् प्रवदिता, वक्ता संसत्सु हेतुमत्,
आक्रोष्टा, चाभिवक्ता च, ब्रह्मवाक्येषु च द्विजान्,
नास्तिकः, सर्वशंगी च, मूर्खः, पण्डितमानिकः,
तस्येय फलनिर्वृत्तिः शृगालत्वं मम द्विज।'[46]

लोकायत बाद में चलकर चार्वाक का पर्याय बन गया, परन्तु मूलतः वह लौकिक विद्यात्मक शास्त्रसम्भार के रूप में उद्भावित हुआ था। वैदिक ब्राह्मणों और धर्मदर्शनज्ञ ब्राह्मणों, क्षत्रियों और श्रमणों की समता में लोकायतिक ब्राह्मणों का भी एक वर्ण बन गया था। रामायण में राम, भरत से प्रजा का कुशल-मंगल पूछते हुए लोकायतिक ब्राह्मणों का भी कुशल-क्षेम पूछते हैं। यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि उसी सन्दर्भ में उनके प्रति निन्दा का स्वर पीछे से मिला दिया गया है—

'कच्चिन् न लोकायतिकान् ब्राह्मणान् तात। सेवसे ?
अनर्थकुशला ह्येते बालाः पण्डितमानिनः।'[47]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो विद्यायें पढ़ाई जाती थीं उनकी सूचियाँ प्राप्त होती हैं। राजन्य वर्ग के लिए आन्वीक्षिकी अर्थात् तर्कशस्त्र, वेदत्रयी, वार्ता अर्थात् आज के शब्दों में अर्थशास्त्र, और दण्डनीति अर्थात् राजनीति–ये चार विद्याएँ निर्धारित थीं।'[48] विद्याओं की दो लम्बी सूचियाँ हैं, एक चौदह की और दूसरी अट्ठारह की। चौदह विद्याओं की गणना इस प्रकार की गई है–

'पुराण-न्याय-मीमांसा-धर्मशास्त्रांग-मिश्रिताः,
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।'[49]

अर्थात् पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र छह वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) और चार वेद–यही चौदह विद्याएँ हैं। इनमें चार उपवेद जोड़ दें तो संख्या अट्ठारह हो जाती है–

'अंगानि वेदाश्चत्वारो, मीमांसा, न्यायविस्तरः।
पुराणं, धर्मशास्त्रं च–विद्या ह्येताश्च चतुर्दश।
आयुर्वेदः, धनुर्वेदः, गान्धर्वश चैव ते त्रयः,
अर्थशास्त्रं चतुथं तु–विद्या ह्यष्टादशेव ताः।'[50]

उपवेद और भी हैं जिनकी गणना नहीं की गई है। वे प्रायः सभी लौकिकविद्याविषयक हैं। हम समझते हैं कि लोकायत–परम्परा का मूल, उपवेद ही हैं। इसलिए इसके अध्येता पहले ब्राह्मण हुए, जिनकी संज्ञा लोकायतिक ब्राह्मण पड़ी। बाद में उन्होंने अन्यों को दीक्षा दी और लोकायत–परम्परा वर्णाश्रम–सांकर्य द्वारा अन्ततः चार्वाक के रूप में परिणित हो गयी। नारद ने जिन विद्याओं का अध्ययन किया था उनकी सूची इस प्रकार है–'ऋग्वेदं भगवो। अध्येमि, यजुर्वेदं, सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदं, पित्र्यं, राशिं, दैवं, निधिं, वाकोवाक्यमेकायनं, देवविद्यां, ब्रह्मविद्यां, भूतविद्यां, नक्षत्र-विद्यां, क्षत्रविद्यां, सर्पदेवजन–विद्यास्।'[51]

प्राचीन शिक्षा के विषय में एक बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कम से कम वेद-विद्या और धर्मशास्त्र–मोक्षशास्त्र की शिक्षा का उद्देश्य केवल बुद्धि का संस्कार नहीं था। **निरुक्त** में उदाहृत **संहितोपनिषदब्राह्मण** तथा **वसिष्ठ–स्मृति** का वचन है–

'विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम, गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि।
असूयकायानृजवेदयताय न मा ब्रूया, वीर्यवती यथास्याम्॥'[52]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् विद्या ब्राह्मण के पास आई और बोली—मेरी रक्षा करो। तुम यदि मुझे हृष्ट-पुष्ट देखना चाहते हो तो मुझे ईर्ष्याद्वेष से आक्रान्त, बेईमान और असंयमी के पास न भेजना।

ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिए आचार्य के आदेश पर वर्षों ब्रह्मचर्यवास करना पड़ता था, तपस्या और श्रम करना पड़ता, जैसा नचिकेता के उपाख्यान से ज्ञात होता है। वेदान्त आदि शास्त्र पढ़ने के लिये साधनाएँ निर्धारित की जाती थीं। शंकराचार्य ने उनका समाहार साधन–चतुष्टय में किया है। षट्क-सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधि और श्रद्धा), नित्यानित्यवस्तु-विवेक, इहामुत्रार्थभोगविराग और मुमुक्षुत्व।[53]

किन्तु यह एक प्रकार की धर्मशिक्षा है जो उच्चतर शिक्षा की अनिवार्य पूर्वपीठिका थी। आज भी धर्मशिक्षा की बात उठती है, किन्हीं विश्वविद्यालयों में इसकी व्यवस्था भी यत्किंचित है, किन्तु वैसे ही जैसे कि शराब में गंगाजल। अकबर इलाहाबादी का शेर है —

'नयी तालीम में भी मज़हबी तालीम शामिल है,
मगर यूँही कि जैसे आबेजमजम में मै दाखिल है।

इसके अतिरिक्त धर्मशिक्षा का व्यावहारिक रूप तो आज सोचा भी नहीं जा रहा है।

किन्तु प्राचीन शिक्षा में, इसके कारण और अन्यथा भी, अतिगोपनीयता की प्रवृत्ति बढ़ गयी थी, जिसके परिणामस्वरूप बहुत-सारा ज्ञान-विज्ञान आचार्यों अथवा उनके इने-गिने शिष्यों के साथ ही लुप्त हो गया।

वैदिक शिक्षा सदा मौखिक हुआ करती थी। लिखित-पाठक की निन्दा की गयी है—

'गीती, शीघ्री, शिरस्कम्पी, तथा लिखित-पाठकः,
अनर्थज्ञो, अल्पकण्ठश्च—षडेते पाठकाधमाः'[54]

नियम से मौखिक वेदाध्ययनाध्यापन का परिणाम यह हुआ कि वैदिक संहिताओं में पाठभेद, उच्चारणभेद, संस्करणभेद आदि अनेक भेद उत्पन्न हो गये और तीन-चार के स्थान पर ग्यारह सौ तीस-इकत्तीस अथवा इससे भी अधिक संहिताएँ अस्तित्व में आ गयीं। साथ ही साथ इनमें प्रायः प्रत्येक ने अपने-अपने स्वतन्त्र ब्राह्मण, अनुब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदें, कल्प और अनुकल्प उद्-भावित कर लिये। वस्तुतः इस प्रकार इतना विशाल वैदिक वांग्मय उपस्थित हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया, जो अध्येताओं और अध्यापकों के नियन्त्रण से बाहर हो गया, विशेषत: उनके मौखिक अध्ययनाध्यापन के आग्रह के कारण। फलत: अनेक शाखाओं को अध्येता-अध्यापयिता नहीं मिले, और अधिकतर उनका लोप हो गया। आज हमें केवल ग्यारह पूर्ण संहिताएँ और एक अपूर्ण संहिता प्राप्त होती है। ब्राह्मण और आरण्यक उससे भी कम मिलते हैं। कल्पसूत्रों की भी यही दशा है। उपनिषदें कुल लगभग दो सौ प्राप्त होती हैं, जिनमें से अधिक से अधिक बीस ही प्राचीन हैं।

वैदिक ग्रन्थ-राशि कण्ठस्थ करते-करते अध्येताओं की आयु का बड़ा भाग व्यतीत हो गया था और प्राचीन सन्दर्भों के अनुशीलन से पता चलता है कि यह भी प्रवाद प्रचलित हो चला था कि इससे बुद्धि पर भी कुप्रभाव पड़ता है। युधिष्ठिर के प्रति भीम कह जाते हैं—

'श्रोत्रियस्यैव ते राजन् मन्दकस्याविपश्चितः,
अनुवाक-हता बुद्धिरनैषा तत्वार्थदर्शिनी ।'[55]

यहाँ युधिष्ठिर के प्रति खीझ के कारण भीम उनकी बुद्धि की उपमा श्रोत्रिय की मन्द वेदवाक्यों से कुण्ठित बुद्धि से देते हैं। कालिदास पुरूरवा के मुख से उर्वशी के रूपलावण्य का बखान कराते-कराते यहाँ तक कहला गये हैं कि ऐसा मनोहर रूप वेदाभ्यासजड़ ब्रह्मा भला कैसे रच सकते हैं—

'अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः।
श्रृंगारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यास जड़ः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलोः
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ।'[56]

कुछ ऐसी ही बात श्रीमद्भागवत के अधोलिखित श्लोक में भी कही गई है—

'प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं,
देव्या विमोहितमतिर्बत माययाऽलम्।
त्रय्यां जड़ीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां,
वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः।'[57]

इन परिस्थितियों में यदि वैदिक ज्ञान-विज्ञान के लोप की स्थिति आ पहुँची हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मशास्त्र और मोक्षशास्त्र का अध्ययनाध्यापन भी अधिकतर मौखिक ही था। तदर्थ सूत्र बने, फिर उन पर भाष्य, वार्तिक, वृत्ति, टीका आदि व्याख्या-ग्रन्थों की रचना हुई। स्मरण-सौन्दर्य के लिए काशिकाएँ भी लिखी गयीं। लिपिबद्ध करने का चलन कम होने के कारण अनेक ग्रन्थ उनके रचयिताओं-अध्येताओं के साथ ही कालकलवित हो गये। हमें तो अब केवल बची-खुची ग्रन्थराशि उपलब्ध है।

लोकायत, लौकिक विषयों से सम्बद्ध साहित्य की भी यही दशा है। उपवेदों का तो अब केवल नाम ही रह गया है।

यहाँ यह भी उल्लेख है कि यहाँ कभी मूवदेव अपर नाम कर्णीसुतकरण्टक रचित स्तेयशास्त्र भी हुआ करता था।'[58] इस प्रकार के अन्य ग्रन्थ भी थे। पता नहीं उनके अध्ययनाध्यापन की व्यवस्था थी या नहीं।

बौद्धों के उत्कर्ष-युग में नालन्दा, विक्रमशिला और उदन्तपुरी जैसे विश्वविद्यालयों की परम्परा का पता चलता है। नालन्दा में प्रवेश के लिए प्रखर पाण्डित्य की शर्त थी। प्रवेशार्थी को द्वार-पण्डितों से शास्त्रार्थ करके अपनी अर्हता सिद्ध करनी पड़ती थी। वह आज की अपेक्षा अधिक सही अर्थों में उच्च-शिक्षा का केन्द्र था।

सन्दर्भ

१—शतपथ ब्राह्मण ११-२-१-१
   १—क बृहन्नारदीय पुराण २२-८

२—मनु-स्मृति १०-४
३—तत्रैव २-१४८
४—अथर्ववेद ११-५-३
५—शतपथ-ब्राह्मण ३-२-१-४०
६—भारद्वाज-गृह्यसूत्र २-१-८
७—मनु-स्मृति २-१३८-१३९
८—यजुर्वेद १-५-तु० २-१८
९—तत्रैव १९-३०
१०—बौधायन-गृह्यसूत्र २-५-८-९
११—महाभारत, अनुशासन-पर्व ६४-११
१२—तत्रैव, शान्ति-पर्व ३१८-८९
१३—अहिर्बुध्न्य-संहिता १५-२०-२१
१४—मीमांसा-सूत्र ६-२-७-२७
१५—भारद्वाज-श्रौतसूत्र ५-२-८ द्रष्टव्य जरनल आफ वैदिक स्टडीज, सितम्बर १९३४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६—लघुविष्णु-स्मृति ५-६
१७—वृद्धहारीत-स्मृति ६-२५७
१८—महाभारत, शान्ति-पर्व ३२७-४६
१६—यजुर्वेद २६-२
२०—स्वामी दयानन्द, सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ३, सं० युधिष्ठिर मीमांसक, १६७२, पृ० ६७ ।

२१—श्रीमद्भागवत १-४-२५
२२—मनुपरिशिष्ट, पृ० १४
२३—अथर्ववेद ११-५-१८
२४—सूतसंहिता, शिवमाहात्म्यखण्ड ७-२०
२५—गोभिल-गृह्यसूत्र, प्रपाठक १, खण्ड १
२६—आश्वलायन-श्रौतसूत्र १-२, गोभिल गृह्यसूत्र १-३, २-३, पारस्कर० ६-२-१, आपस्तम्ब० १२-३-१२

२७—गोभिल-गृह्यसूत्र १-३
२८—मध्वः, ब्रह्मसूत्रभाष्यम्, जगन्नाथयति-कृत भाष्यदीपिका संवलित, गोपालकृष्णाचार्य । सं० (मद्रास: ग्रोव प्रेस, १६००), १-१-१, पृ० ३१

२६—हारीत-स्मृति ३१।२३
३०—शंकर, शारीरक भाष्य १-३-३६, गौतम-धर्मसूत्र २-३-४
३१—शारीरक भाष्य १-३-३६
३२—तत्रैव ३-४-३६
३३—पाणिनि, अष्टाध्यायी ४-१-४६
३४—भट्टोजि दीक्षित, सिद्धान्तकौमुदी, स्त्रीप्रत्ययप्रकरण १५, —सूत्र ४-१-४६,

३५—वासुदेव दीक्षित, बालमनोरमा, तत्रैव
३६—मनु-स्मृति २-१४०
३७—तत्रैव २-१४१
३८—कालिदास, मालविकाग्निमित्र १-१७
३६—अष्टाध्यायी ४-३-१३०, छान्दोग्योपनिषद् ४-१०-१, आदि आदि ।
४०—छान्दोग्योपनिषद् २-२३-१
४१—अष्टाध्यायी ४-३-१३०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४२—पतन्जलि महाभाष्य, प्रदीपोद्द्योत—सहित, ४-१-६३
४३—छान्दोग्योपनिषद् ५-३-७
४४—बृहदारण्यकोपनिषद् ६-२-८
४५—श्रीमद्भगवतगीता ४-१-२
४६—महाभारत, शान्ति-पर्व १८०-४७-४६
४७—बाल्मीकि रामायण २-१००-३८
४८—मनु-स्मृति ७-४३
४९—याज्ञवल्क्य-स्मृति १-३
५०—विष्णु-पुराण ३-६-२८-२६
५१—छान्दोग्योपनिषद् ७-१-२
५२—संहितोपनिषद् ब्राह्मण, राधाकमल मुकर्जी, एँशेंट इण्डियन एजुकेशन, पृ० ३७-३८ के अनुसार, निरुक्त १-२-४,

वसिष्ठ-स्मृति २-१४, तु० मनु-स्मृति २-११४

५३—शारीरक भाष्य १-१-१
५४—पाणिनीय-शिक्षा ३२
५५—महाभारत, शान्ति-पर्व १०-१
५६—कालिदास, विक्रमोर्वशीय १-१०
५७— श्रीमद्भागवत ७-३-२५
५८—करणीसुत: करण्टक: स्तेयशस्त्रप्रवर्तक:……इति बृहत्कथायां कथा निबद्धा । भानुचन्द्रमणि, कादम्बरी-निरन्तरव्याख्या (निर्णयसागर प्रेस, १९२१), पृ० ३९ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिसर परिक्रमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय मनोविज्ञान पर ग्रीष्मकालीन संस्थान

—डा० हरगोपाल सिंह
प्रोफ़ेसर, मनोविज्ञान विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में यूनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन द्वारा आयोजित भारतीय मनोविज्ञान पर ग्रीष्मकालीन संस्थान का आयोजन २५ जून से ६ जुलाई १९८६ तक किया गया, जिसमें अखिल भारतीय विश्वविद्यालयों से आये प्रोफेसरों ने प्रशिक्षण लिया। इस संस्थान का उद्घाटन-भाषण २५ जून को देते हुए डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, विश्वविद्यालय विजिटर ने कहा कि वैदिक युग से भारत आत्मचिन्तन, उन्नत मानव-व्यवहार तथा मनोविज्ञान में पारंगत रहा है। इस प्रकार का ज्ञान कितने ही आर्ष ग्रन्थों में भरा पड़ा है जिसे विदेशों में प्रकाशित करना भारतीय मनोवैज्ञानिकों का उत्तरदायित्व है। अपने स्वागत-भाषण में माननीय श्री आर. सी. शर्मा, कुलपति ने बताया कि भारतीय मनोविज्ञान पर इस प्रकार का यह प्रथम आयोजन है जिसकी शुरुआत भारतीय संस्कृतिप्रधान संस्था गुरुकुल कांगड़ी ने की है। यह शृखला अवश्य आगे बढ़ेगी जिससे भारत में मनोविज्ञान अधिक जीवनोपयोगी सामग्री प्रस्तुत कर सकेगा और मानवजीवन अधिक सुखी बन सकेगा।

इस संस्थान में वैदिकमनोविज्ञान, मनोचिकित्सा, योगमनोविज्ञान, व्यक्तित्व प्रकार एवं संवर्धन, गीता का मानस ज्ञान, स्वर विज्ञान और मानव व्यवहार, आयुर्वेदीय मानसरोग, विज्ञानभूत विद्या, जैन एवं बौद्ध मनोविज्ञान, उपनिषद् एवं पुराणों में मनोविज्ञान, भारतीय एवं पाश्चात्य मनोविज्ञान की तुलना, भारतीय मनोविज्ञान पर सामग्री संकलन, शोधप्रक्रिया के सम्भावित विषयों का उच्चस्तरीय प्रशिक्षण दिया गया। इसके डायरेक्टर प्रोफेसर हरगोपाल सिंह के साथ बाहर से आये विद्वानों ने भी प्रशिक्षण दिया। प्रशिक्षणार्थियों ने यहाँ रहकर भारतीय मनोविज्ञान के विभिन्न विषयों पर शोधपत्र लिखकर प्रस्तुत किये।

६ जुलाई को समापन-समारोह के अध्यक्षीय-भाषण में डा० ए. के. सिन्हा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिटायर्ड प्रोफेसर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय ने कहा कि भारतीय संस्कृति सबसे पुरानी संस्कृति है और आत्मा, मन और मानवव्यवहार ऐसे विषय हैं जिनमें भारत विश्व को निर्देशन दे सकता है। योगमनोविज्ञान द्वारा मानव व्यवहार को उन्नत कर देवत्व तक पहुँचाया जा सकता है और बहुत-सी अलौकिक सिद्धियाँ भी प्राप्त की जा सकती हैं। प्रोफेसर रामप्रसाद, उप-कुलपति ने शिक्षार्थियों को कोर्स प्रमाणपत्र वितरित किये। डायरेक्टर प्रोफेसर हरगोपाल सिंह ने कोर्स की रिपोर्ट में प्रशिक्षण की विस्तृत जानकारी देते हुए आशा प्रकट की, कि प्रशिक्षार्थियों के उत्साह से स्पष्ट है कि वे अपने विश्वविद्यालयों में जाकर अवश्य भारतीय मनोविज्ञान का पठन-पाठन और शोध-कार्य प्रारम्भ करेंगे जिससे मनोविज्ञान की विषयसामग्री के साथ-साथ इसकी अन्य उपयोगितायें भी बढ़ेंगी। अन्त में श्री वीरेन्द्र अरोड़ा, कुलसचिव ने विश्वविद्यालय की ओर से सबको धन्यवाद दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्षारोपण समारोह : हिमालय पर्यावरण शोध योजना

—डा० बी०डी० जोशी
निदेशक, हिमालय शोध योजना
जन्तु विज्ञान विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार (उ० प्र०)

विगत कई वर्षों से दुनिया भर की समस्त सरकारें हमारे बदलते और बिगड़ते पर्यावरण के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हो चुकी हैं। इन्हीं भावनाओं के अन्तर्गत भारत सरकार का पर्यावरण, वन तथा वन्य-जन्तु विभाग भी पर्यावरण सुधार की दिशा में अत्यन्त व्यग्रता तथा जागरूकता के साथ, पर्यावरण सुरक्षा की दिशा में अनेक समन्वित योजनाओं के द्वारा पूरे देश में अनेक छोटी-बड़ी योजनाएँ चला रहा है। इसी प्रकार की अनेक योजनाओं में से एक योजना हमारे विश्वविद्यालय के जन्तु विज्ञान विभाग द्वारा भी चलायी जा रही है। योजना को हम संक्षेप में 'हिमालय पर्यावरण शोध योजना' के नाम से जानते हैं। मूलतः यह योजना तीन वर्षों की अवधि के लिए स्वीकृत हुई है। विश्वविद्यालय प्रशासन के सौजन्य से मुझे इस वृहत् शोध योजना का निदेशक होने का सौभाग्य मिला है। यह योजना हमारे द्वारा, महाकवि कालीदास द्वारा वर्णित "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" की पृष्ठभूमि के रमणीय क्षेत्र महर्षि कण्व की तपःस्थली, मालनी नदी द्वारा पोषित, कण्व घाटी में चलायी जा रही है। सुनते हैं, आज से हजारों वर्ष पूर्व इस घाटी में कण्व ऋषि अपना, लगभग दस हजार छात्रों का एक ऋषिकुल चलाते थे। इसी कण्व घाटी में महाप्रतापी राजा दुष्यन्त का अप्सरा-पुत्री शकुन्तला से परिणय-बन्धन हुआ था। इन्हीं घाटियों में राजकुमार भरत का जन्म हुआ था और वह विभिन्न प्रकार के हरिणों, मृग-शावकों, व्याघ्रों, शारदूलों, मयूर आदि अन्य वन्य-जन्तुओं के साथ क्रीड़ा करते थे। तब अभिज्ञान शाकुन्तलम् के अनुसार घाटियाँ नाना प्रकार की सुगन्धित पुष्प-लताओं, मालती कुञ्जों, आम्र वाटिकाओं, पाटल, कदली, विल्व और साल वृक्षों की सघनता से आच्छादित थीं। मालनी एक निर्मल, मोहक, पावन धारा के रूप में बहती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज यह सब प्राकृतिकता प्राय: लुप्त-सी हो चली है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए, मालनी के विकराल रूप को एक संयमित सौन्दर्य प्रदान करने, स्थानीय स्तर पर बाढ़ नियन्त्रण हेतु हमारी योजना के अन्तर्गत विगत लगभग एक वर्ष से इस क्षेत्र में कार्य किया जा रहा है।

हमारी इस योजना के अनेक कार्यों में से एक महत्वपूर्ण कार्य वार्षिक वृक्षारोपण शिविरों का आयोजन करना भी है। इसी उद्देश्य से हमने १ अगस्त १९८६ से १२ अगस्त १९८६ तक एक १२-दिवसीय वृक्षारोपण शिविर का आयोजन किया। इस शिविर में इन्दिरा प्रियदर्शनी इन्टर कालेज, मोटाढाक, कोटद्वार जिला पौड़ी गढ़वाल के १०० छात्रों ने भाग लिया तथा इस इन्टर कालेज के व्यवस्थापक श्री देवानन्द बलोधी तथा कालेज के अनेक गुरुजनों के अमूल्य सौजन्य तथा सहयोग से ही इस शिविर को सफलता प्राप्त हुई।

इस शिविर का औपचारिक उद्घाटन ३ अगस्त १९८६ के दिन भारत सरकार के पूर्व वाणिज्य राज्य मन्त्री तथा सम्प्रति पेट्रोलियम मन्त्री माननीय श्री ब्रह्मदत्त जी द्वारा पौध लगाकर किया गया। इस अवसर पर उपस्थित जन-समुदाय को सम्बोधित करते हुए माननीय मन्त्री जी ने हिमालय के शाश्वत महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि हिमालय की पर्वत श्रृंखलाएँ, न केवल वन और खनिज सम्पदाएँ देती हैं, अपितु जीवनदायिनी गंगा-यमुना जैसी पवित्र नदियों का स्रोत भी हिमालय ही है। यह नदियाँ मात्र जल की धाराएँ ही नहीं अपितु गंगा-यमुना के दोआब में जन्मी तथा फली-फूली महान भारतीय संस्कृति की जननी भी हैं। यदि हम हिमालय के जर्जर होते पर्यावरण की रक्षा नहीं कर पायेंगे तो भारतीय संस्कृति स्वयमेव विनष्ट हो जायेगी। वृक्षारोपण के महत्व पर विस्तार से आर्थिक विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा कि यदि आज हम एक लाख वृक्ष लगा सकें और इनमें से यदि ५० हजार वृक्ष भी दस वर्ष तक जीवित रह सकें और प्रतिवृक्ष यदि मात्र सौ रुपया भी मिलता है, तो दस वर्ष बाद हमें पचास लाख रुपये प्राप्त होंगे। अब यदि एक पौधे के ऊपर औसत पाँच रुपया प्रतिवर्ष की लागत से व्यय भी किया जाये तो भी हमें लगभग २०-२५ लाख रुपयों का शुद्ध लाभ तो मिलेगा ही, हमारा पर्यावरण भी संवर्धित होगा। इसी तरह हिमालय की घाटियों में वेगवती नदियों के प्रवाह को बाँध कर हम यत्र-तत्र जल विद्युत-गृहों का जाल-सा बिछा सकते हैं। इससे भी हमारा पर्यावरण संवर्धित होगा, हजारों लोगों को रोजगार मिलेगा और हम पैदा हुई बिजली का सदुपयोग औद्योगीकरण हेतु तथा अन्य प्रान्तों को निर्यात हेतु कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्री महोदय ने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा चलायी जा रही इस शोध-योजना की प्रगति पर अत्यन्त सन्तोष प्रकट किया तथा विश्वविद्यालय के कुलपति श्री आर०सी० शर्मा जी की प्रशंसा करते हुए कहा कि श्री शर्मा हमारी उत्तर प्रदेश सरकार के एक अत्यन्त सुयोग्य और अनुभवी प्रशासक रहे हैं। मुझे विश्वास है कि श्री शर्मा के कुशल नेतृत्व में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय प्रत्येक क्षेत्र में चतुर्मुखी उन्नति करेगा। माननीय मन्त्री जी ने योजना के निदेशक को भी बधाई देते हुए, वृक्षारोपण के कार्य को और अधिक विस्तृत क्षेत्र में बढ़ाने का सुझाव दिया।

इस अवसर पर माननीय मन्त्री जी का स्वागत करते हुए कुलपति श्री आर० सी० शर्मा जी ने बताया कि उन्हें इस क्षेत्र के प्रति पहले से ही बहुत लगाव है, क्योंकि भारतीय प्रशासनिक सेवा के अन्तर्गत, आज से २६ वर्ष पूर्व, वह कोटद्वार-लैन्सडाउन क्षेत्र के डिप्टी कलेक्टर रह चुके हैं। माननीय कुलपति जी ने मन्त्री महोदय को आश्वासन देते हुए कहा कि हमारा विश्वविद्यालय देश की प्रगति के हर सोपान से जुड़ा है और आज गुरुकुल अपनी चारदीवारी से बाहर निकल कर, समाज तथा पर्यावरण के सर्वांगीण विकास में इन योजनाओं के माध्यम से अत्यन्त सक्रिय है।

इस अवसर पर मन्त्री महोदय का स्वागत करते हुए, उपस्थित जन-समुदाय को विश्वविद्यालय के उपकुलपति आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार जी ने भी सम्बोधित किया। उन्होंने भारतीय संस्कृति में वृक्ष और वन के महत्व की व्याख्या करते हुए वृक्षारोपण को एक पुण्य यज्ञ कहा।

इसी अवसर पर उपस्थित समुदाय को बद्री-केदार क्षेत्र के विधायक श्री संतन बड़थवाल, पौड़ी के कांग्रेस (इ) के अध्यक्ष श्री मधुर शास्त्री जी ने भी सम्बोधित किया और योजना द्वारा स्थानीय जनता को अपने साथ लेकर, स्थानीय जलवायु के अनुकूल वृक्षों की नर्सरी बनाकर, कण्व घाटी की ग्रामीण जनता में निःशुल्क पौध वितरण करने के लिए योजना के निदेशक डा० जोशी को बधाई दी।

इस बारह-दिवसीय शिविर के दौरान शिविरार्थियों ने लगभग ६-७ हेक्टेयर भूमि में २०-२५ हजार पौधों का रोपण किया। बारह दिन की अवधि में इतने क्षेत्रफल से झाड़ियों को साफ कर और फिर २०-२५ हजार गड्ढे खोद कर पौध लगाना अपने आप में एक महान कार्य रहा। इस शिविर के दौरान प्रमुखतः शीशम, कन्जु, खैर, और पापुलर की क्रमशः ६ हजार, ६ हजार, १० हजार तथा ३ हजार पौध लगायी गईं। इनमें से १० हजार पौध स्थानीय वन विभाग द्वारा, ३ हजार पौध स्थानीय सिंचाई विभाग द्वारा उपलब्ध करायी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई। शेष लगभग १२ हजार पौध योजना की अपनी नर्सरी से ली गई।

इस शिविर का औपचारिक समापन समारोह १३ अगस्त १९८६ को इन्दिरा प्रियदर्शनी इन्टर कालेज, मोटाढाक के प्रांगण में हुआ। इस समारोह की अध्यक्षता वहाँ के स्थानीय भू० पू० ब्लाकप्रमुख श्री चन्द्रसिंह रावत जी ने की, जो कि एक वयोवृद्ध स्वतन्त्रता सेनानी भी रहे हैं। समापन समारोह के मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए लैन्सडाउन वनप्रभाग के उप-वनसंरक्षक श्री मदनमोहन तिवारी जी ने हिमालय पर्यावरण शोध योजना द्वारा व्यापक वृक्षारोपण की सराहना करते हुए वनविभाग द्वारा भविष्य में भी सहयोग देने की बात कही।

अन्त में अब यह कहना उचित प्रतीत होता है कि वृहत् बंजर क्षेत्रों में पौध लगाना समस्या नहीं है अपितु वास्तविक समस्या तो लगाये गये पौधों की सुरक्षा की है। इसके लिए किसी भी स्तर पर, सामाजिक, आर्थिक अथवा प्रशासनिक व्यवस्था का प्रबन्ध सरकार को ही करना होगा।

आभार

अपनी इस हिमालय पर्यावरण शोध योजना के समस्त सदस्यों की ओर से मैं सबसे पहले तो भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मन्त्रालय के प्रति आभारी हूँ कि उन्होंने हमें यह वृहत् शोध योजना प्रदान की। माननीय श्री ब्रह्मदत्त जी के प्रति भी हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं कि आप संसदीय सत्र के चलते हुए भी अपनी व्यस्तता में से समय निकाल कर हमारे मध्य आये। मैं विशेष रूप से अपने कुलपति श्री आर. सी. शर्मा जी का आभारी हूँ, जिन्होंने अत्यन्त रुचि लेकर हमें समय-समय पर प्रेरणा दी। योजना की ओर से हम विश्वविद्यालय के उपकुलपति जी, कुलसचिव जी, वित्त अधिकारी महोदय, प्राचार्य विज्ञान महाविद्यालय प्रो० सुरेशचन्द त्यागी जी के भी आभारी हैं, जिन्होंने अत्यन्त खराब परिस्थितियों एवं प्रतिकूल मौसम के बावजूद भी विभिन्न प्रकार से हमारी सहायता की तथा शिविर में आये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक का नाम	—	**भारतेन्दु और भारतीय नव जागरण**
सम्पादक	—	**शम्भुनाथ, अशोक जोशी**
प्रकाशन	—	**आने वाला कल, ६३ राधा बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता**
मूल्य	—	**४५ रुपये**
पृष्ठ संख्या	—	२१२

भारतीय नव जागरण ने भारतीय भाषाओं के साहित्य और चिन्तन को बहुत दूर तक प्रभावित किया। हिन्दी के आधुनिक युग का सूत्रपात नव जागरण के विद्रोही स्वरों के बीच हुआ, इसे प्रायः सभी विद्वान् एक मत से स्वीकार करते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० रामविलास शर्मा, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय तथा श्री मदनगोपाल प्रभृति विद्वानों ने १८५७ के स्वाधीनता आन्दोलन और राष्ट्रीय संवेदना के परिप्रेक्ष्य में भारतेन्दु की रचनाओं और विचारधारा का मूल्यांकन किया है। देश के नव जागरण कर्मियों में राजा राम-मोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, लोकहितवादी गोपालहरि देशमुख तथा कर्सन दास मूल जी के नाम प्रमुख हैं। इन्होंने बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र तथा उत्तर भारत में सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण की नई रोशनी फैलाई। राजा राममोहन राय की भी अपेक्षा अधिक आधुनिक दृष्टि यंग बंगाल आन्दोलन के जन्मदाता तथा हिन्दू कालेज के प्राध्यापक हेनरी विवियन डेरोज़िओ के पास थी जिसने फ्रांसीसी क्रान्ति से प्रेरणा ग्रहण कर, मुक्तचिन्तन को प्रमुखता दी तथा नारी शिक्षा की माँग करते हुए मुक्ति, समानता के लिए ह्रासोन्मुख परम्पराओं के त्याग की ओर प्रेरित किया। राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख नेता सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने डेरोज़िओ की प्रशंसा की है।

महर्षि दयानन्द और भारतेन्दु ने हिन्दीभाषी क्षेत्र में पाखंड-खंडन, भारतीय अस्मिता के प्रतिष्ठापन, जर्जर प्रथाओं और रूढ़ियों के निरसन तथा स्वाधीनताप्राप्ति के लिए भारतीयों को प्रेरित किया। भारतेन्दु वैष्णव संस्कारों के होते हुए भी दयानन्द जी के प्रति इतने श्रद्धावान थे कि दयानन्द जी के काशी पधारने पर उनकी अगवानी के लिए स्टेशन पर पहुँचे। भारतेन्दु का बलिया में दिया गया भाषण दयानन्द के विचारों को छाया है। स्वामी जी भारत को सब प्रकार से उन्नत देखना चाहते थे। उन्होंने बड़ौदा में कहा था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि भारतवासी योग्य हो जावें तो विदेशी लोग स्वयं कह देंगे कि अब तुम अपना शासन-प्रबन्ध आप करो। स्वामी जी ने राज्य-व्यवस्था से लेकर व्यक्ति-निर्माण तक के लिए वैदिक विचारधारा से पुष्ट आचार-संहिता दी थी। भारतेन्दु ने भारत-दुर्दशा, जातीय संगीत तथा नये ज़माने की मुकरियाँ आदि लिखकर देशवासियों को पराधीनता के विरुद्ध लड़ने के लिए खड़ा किया। १८८४ में दिये गए बलिया-भाषण की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

'भाइयो, अब तो नींद से चौंको, अपने देश की सब प्रकार उन्नति करो। जिसमें तुम्हारी भलाई हो, वैसी ही किताब पढ़ो; वैसे ही खेल खेलो, वैसी ही बातचीत करो। परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा पर भरोसा मत रखो। अपने देश में, अपनी भाषा में उन्नति करो।'

स्वामी दयानन्द ने १८८३ के एक पत्र में रावराजा तेजसिंह को लिखा 'स्वदेशोन्नति में आप सब लोगों को दृढ़ोत्साह करके, आप लोगों के द्वारा एक आर्यावर्त देश की बढ़ती कराके, इस महापुण्य कीर्ति के भागी आप लोगों को करें।'

भारतेन्दु ने नव जागरण के प्रचार के लिए कवियों का एक मण्डल तैयार किया। कुछ लोगों ने भारतेन्दु की १८८२ में प्रकाशित कविता 'विजयनी विजय वैजयंती' को लेकर उन पर राजभक्ति का आरोप लगाया है, पर दयानन्द की तरह राष्ट्रीयतावादी कथ्य के अनुयायी भारतेन्दु, उदार शासन की प्रशंसा की आड़ में भारतवासियों की दुर्दशा तथा औपनिवेशिक आतंकवाद की धज्जियाँ उड़ाने में सदा तत्पर रहे। भारतेन्दु ने १८५७ का विद्रोह दयानंद की तरह तो नहीं जिआ था, पर आतंकवाद को गहराई के साथ अनुभव किया था। इसीलिए उन्होंने कहा—

'कठिन सिपाही द्रोह अनल जा जन-बल नासी
जिन भय सिर न हिलाइ सकत कहुँ भारतवासी।

डा० रामविलास जी के बाद भारतेन्दु के समग्र मूल्यांकन पर शंभुनाथ और अशोक जोशी के सम्पादन में उक्त पुस्तक उल्लेखनीय कही जा सकती है। इस पुस्तक की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें बीस विद्वानों ने भारतेन्दु के अलग-अलग पक्षों पर अधिकारपूर्वक लिखा है। डा० शिवकुमार मिश्र का निबन्ध 'भारतेन्दु : अन्तर्विरोधों के बीच से'; शंभुनाथ का निबन्ध 'राष्ट्रीय जागरण और भारतेन्दु'; डा० परमानंद श्रीवास्तव का निबन्ध 'भारतेन्दु की सार्थकता'; डा० कुंवरपाल सिंह का निबन्ध 'भारतेन्दु की पत्रकारिता'; डा० विश्वंभरनाथ उपाध्याय का निबन्ध 'भारतेन्दु का पुनर्मूल्यांकन' तथा चंचल चौहान का निबन्ध 'भारतीय राष्ट्रवाद का उदय और भारतेन्दु के नाटक' इस पुस्तक के महत्वपूर्ण लेख हैं जिनमें नई जानकारी के साथ हिन्दी पाठकों को भारतीय जागरण के सांस्कृतिक इतिहास को सुनने-जानने का अवसर मिलता है। दयानंद और भारतेन्दु के बीच होने वाले वैचारिक मतभेद को भी इस पुस्तक में उरेहा गया है। पर यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोराणिक संस्कृति का कट्टर प्रतिवाद करने वाले स्वामी जी के प्रति राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की दृष्टि से भारतेन्दु का गहरा लगाव है। डा० शिवकुमार मिश्र का यह कथन भी असंगत जान पड़ता है कि 'स्वामी जी का वैदिक वाङ्मय की गरिमा का प्रतिपादन अपनी जगह सही है परन्तु वे कदाचित् भारतीय मानस को उसके तल पर जाकर नहीं पहचान सके, फलतः उनका आर्य समाज देश के एक सीमित भाग तक ही अपना प्रभाव डालकर रह गया।' बात यह है कि आर्यसमाज, नव जागरण और हिन्दी कविता का तथ्याश्रित मूल्यांकन हिन्दी में वैसा नहीं हुआ जैसा होना चाहिए था। 'आर्य समाज का इतिहास' का पाँचवा खण्ड डा० सत्यकेतु विद्यालंकार तथा डा० भवानीलाल भारतीय के सम्पादन में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ में पहली बार, उस सारी सामग्री पर अधिकृत रूप से प्रकाश डाला गया है जिससे स्पष्ट होता है कि भारतीय नव जागरण और साहित्य के इतिहास में आर्यसमाजी रचनाकर्मियों की कितनी प्रभावशाली भूमिका रही है। हिन्दी के शास्त्रीयतावादी, शुद्ध कलावादी तथा प्रगतिवादी समीक्षकों ने प्रस्तावित पुस्तक में भारतेन्दु के योगदान का विवेचन-विश्लेषण किया है। भारतेन्दु की भाषानीति, इतिहास-बोध, संगठनभावना, भक्ति, नाट्य रचनात्मकता, मिथक-प्रयोग, हास्य और व्यंग्य, खड़ी बोली कविता तथा आधुनिकता पर भी विद्वान् लेखकों ने अधिकारपूर्वक लिखा है। मैं शंभुनाथ जी के इस प्रस्ताव से सहमत हूँ— 'भारतेन्दु की रचनावली सबसे पहले छपनी चाहिए थी लेकिन यह काम अभी तक नहीं हुआ।' भारतेन्दु की अनेक ऐसी रचनाएँ हैं जो भारतेन्दु ग्रन्थावली (तीन भाग) में संकलित नहीं हैं। उनकी अनेक कविताएँ, टिप्पणियाँ तथा पत्र नज़र से दूर हैं और धीरे-धीरे विलुप्त होने की प्रक्रिया में हैं। संग्रहालयों से 'कविवचन सुधा' और 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' आदि की अनेक फाइलें गायब हो चुकी हैं। इसी तरह बहुत-सी चीजें खो रही हैं या उन पर धूल जमी हुई है। **जब कोई जाति अपने सांस्कृतिक इतिहास तथा परम्परा के प्रति इतना अधिक उदासीन हो जाती है कि इन्हें बचाने की बुद्धिमत्ता धीरे-धीरे खोने लगती है तो सोचना पड़ता है कि संकट जितना कहा जा रहा है, उससे ज्यादा गहरा है।**

भारतेन्दु की जन्मशती पूरे देश में मनाई गई। सरकार ने भी बड़े-बड़े अनुदान आयोजनों के लिए दिए। समारोह हुए और हवा में विलीन हो गए। भारतेन्दु का रचना-संसार जनसाधारण तक न पहुँच सका। भारतेन्दु के प्रति सहज और सही समझ बनाने में 'भारतेन्दु और भारतीय नव जागरण' पुस्तक सहायक सिद्ध होगी, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है, पर भारतेन्दु का शास्त्र-प्रतिष्ठापक तथा व्रजभाषाकाव्यकर्मी रूप अपनी मौलिकता और परम्परा के साथ पुस्तक में प्रतिष्ठित नहीं हो सका, यह एक कमी भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यसाधना और जनसेवा भारतेन्दु के व्यक्तित्व के पूरक पक्ष हैं और इसीलिए वह लोकनायक हैं। परम्परा की वस्तुनिष्ठता के साथ की गई पहचान इस पुस्तक का मूल स्वर रही है, अतः भारतेन्दुविषयक मूल्यांकन में इस पुस्तक की पहचान होनी ही चाहिए।

पुस्तक संग्रहणीय और पठनीय है।

—डा० विष्णुदत्त राकेश
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक का नाम	—	**भारतीय दर्शन की समस्यायें**
लेखक	—	**डा० जयदेव वेदालंकार**
प्रकाशक	—	**प्राच्य विद्या शोध प्रकाशन, हरिद्वार**
वर्ष	—	**१९८६**
पृष्ठ संख्या	—	**४००**
मूल्य	—	**१२५ रुपये**

प्रस्तुत पुस्तक एक समालोचनात्मक अध्ययन है जिसमें लेखक ने भारतीय दर्शन की बारह समस्याओं को निरूपित किया है। इसमें ज्ञानमीमांसा, तत्वमीमांसा, ब्रह्म, जीवात्मा, सृष्टि-रचना, ख्यातिवाद, विज्ञानवाद एवं शून्यवाद, प्रामाण्यवाद, कर्मफल, अन्तःकरण, आचारशास्त्र और मोक्ष जैसी दार्शनिक समस्याओं का विवेचन सविस्तार एवं तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ में वेद, उपनिषद्, षड्दर्शन, जैन-बौद्ध तथा मध्यकालीन आचार्य शंकर, रामानुज, माधव और महर्षि दयानन्द की दार्शनिक मान्यताओं का विशद् रूप से विश्लेषण हुआ है।

प्रस्तुत ग्रंथ डा० जयदेव वेदालंकार की परिश्रमपूर्ण रचना है। विषय की नवीनतम शोध-उपलब्धियों को हिन्दी भाषा में उपलब्ध कराने का यह महत्वपूर्ण प्रयास है। हिन्दी भाषा में दर्शन का इतिहास, क्रम से विवेचन तो अनेक विद्वानों ने किया है परन्तु दर्शन शास्त्र की समस्याओं को लेकर हिन्दी भाषा में ग्रंथ प्रायः नहीं के बराबर हैं। डा० जयदेव ने इस ग्रंथ में भारतीय दर्शन की समस्या के विवेचन में कहीं-कहीं पाश्चात्य दर्शन को भी उद्धृत किया है। विषय का चयन इस दृष्टि से किया गया है कि विश्वविद्यालय के छात्र, शोधार्थी तथा सामान्य पाठक, सभी इस ग्रंथ से लाभ उठा सकते हैं।

इस ग्रन्थ की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि दर्शन शास्त्र की प्रमुख समस्याओं पर वैदिक मान्यताओं का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। विषयों का गठन बड़ी योग्यता से किया गया है। प्रतिपादन में कहीं दुरूहता नहीं है तथा भाषा मंजी हुई है। समस्यायें प्रामाणिक ढंग से उठायी गयी हैं। प्रत्येक विषय के विवेचन में भारतीय दर्शन की कोई शाखा प्रतिनिधित्व से वंचित नहीं की गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० हर्षनारायण ने ठीक ही लिखा है कि "लेखक का अपना एक सुनिश्चित, सुचिन्तित दृष्टिकोण है जो ग्रन्थ में साद्यन्त प्रतिफलित पाया जाता है। मैं समझता हूँ कि यह इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषता है।"

—डा० विनोदचन्द्र सिन्हा
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग
गु० कां० विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्शदातृ–मण्डल

१—श्री ओम्प्रकाश मिश्र	—	प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, मनोविज्ञान-विभाग
२—डा० राधेलाल वार्ष्णेय	—	प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, अंग्रेजी-विभाग
३—डा० निगम शर्मा	—	रीडर तथा अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
४—डा० जयदेव वेदालंकार	—	रीडर तथा अध्यक्ष, दर्शन-विभाग
५—डा० भारतभूषण विद्यालंकार	—	रीडर, वेद-विभाग
६—डा० जबरसिंह सेंगर	—	रीडर, इतिहास विभाग
७—श्री चन्द्रशेखर त्रिवेदी	—	रीडर, मनोविज्ञान विभाग

मुद्रक—जैना प्रिन्टर्स, ज्वालापुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

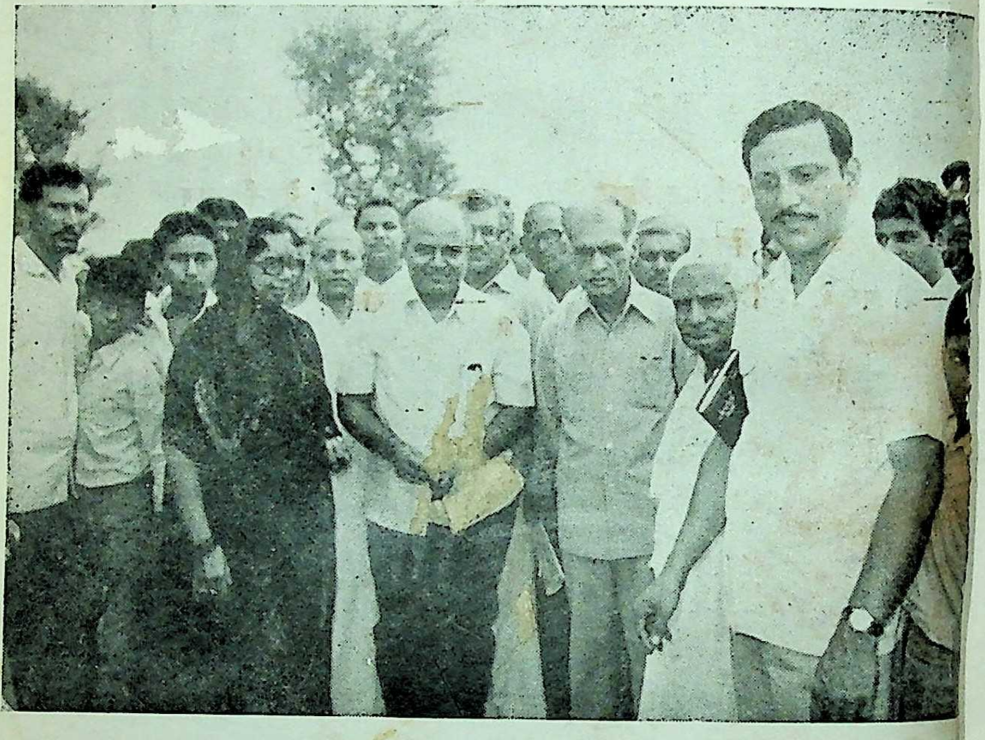

वृक्षारोपण शिविर में वृक्षारोपण के बाद माननीय श्री ब्रह्मदत्त जी शर्मा, मंत्री भारत सर
कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा, श्रीमती रामचन्द्र शर्मा तथा आचार्य रामप्रसाद जी वेदालंकार शि
संयोजक तथा उपस्थित जनसमूह के साथ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लाद

संग्रहालय विशेषांक

सेवक हनुमान आज्ञा प्राप्त करते हुए (गुरुकुल संग्रहालय कलादीर्घा से)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष १९५८ में भूतपूर्व प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू गुरुकुल संग्रहालय का अवलोकन करते हुए। पं० हरिदत्त वेदालंकार तथा आचार्य प्रियव्रत संग्रहालय का परिचय दे रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रह्लाद

(प्राच्यविद्याओं की त्रैमासिक शोध-पत्रिका)

सम्पादक

डा० विष्णुदत्त राकेश

पी-एच.डी., डी. लिट्.

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग

संयुक्त-सम्पादक

डा० बिनोदचन्द्र सिन्हा

एम०ए०, पी-एच०डी०

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व

जौलाई से सितम्बर—१९८७

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रधान संरक्षक

श्री रामचन्द्र शर्मा
आई०ए०एस० (सेवानिवृत्त)
कुलपति

संरक्षक

श्री रामप्रसाद वेदालंकार
आचार्य एवं उप-कुलपति

प्रकाशक

डा० वीरेन्द्र अरोड़ा
कुलसचिव

व्यवस्थापक

जगदीश विद्यालंकार
पुस्तकालयाध्यक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* विषय सूची *

क्रम विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१—वैदिक वन्दना		१
२—सम्पादक की कलम से	डा० विष्णुदत्त राकेश	२
३—जिहाद का झंडा	श्री बलभद्रकुमार हूजा	११
४—नाम	श्री बलभद्रकुमार हूजा	१२
५—उत्तराखण्ड में लोकशिक्षण का एक नया केन्द्र	डा० कृष्णदत्त वाजपेयी	१३
६—पुरातत्व संग्रहालय : संक्षिप्त परिचय	डा० विनोदचन्द्र सिन्हा	१६
७—भारतीय मृण-मूर्तियाँ एवं गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का मृणमूर्ति-संग्रह	डा० सूर्यकान्त श्रीवास्तव	२२
८—गुरुकुल संग्रहालय में सुरक्षित पाषाणप्रतिमाएँ	श्री सुखबीरसिंह	२८
९—पुरातत्व संग्रहालय में श्रद्धानन्द वीथिका	डा० जबरसिंह सेंगर	३१
१०—पुरातत्व संग्रहालय की पाण्डुलिपियाँ	डा० राकेशकुमार शर्मा	३९
११—मृदिकापात्र संग्रह	श्री ब्रजेन्द्रकुमार जैरथ	४२
१२—गुरुकुल संग्रहालय की मुद्रा-वीथिका	डा० सुखवीर सिंह	४८
१३—हरिहर-हिरण्यगर्भ	श्री शशिकान्त पाठक एवं सुश्री अनामिका पाठक	५१
१४—संस्कृति के विविध आयाम	डा० सन्तराम वैश्य	५५
१५—प्राचीन भारतीय युद्धनियम	डा० रामसिंह	६०
१६—राजानक अलक सूरि	डा० निगम शर्मा	६६
१७—निकष पर (पुस्तक समीक्षा)	डा० विष्णुदत्त राकेश	८३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

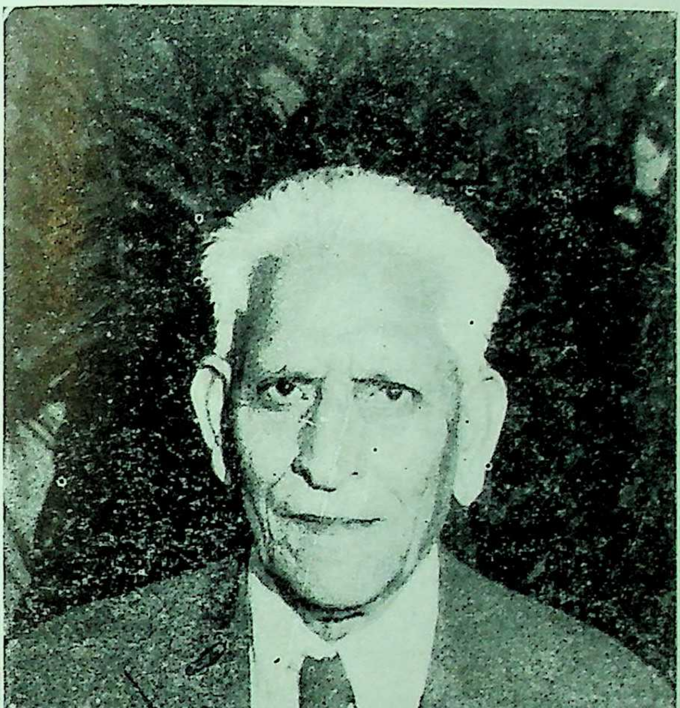

विश्वविद्यालय के नव-नियुक्त परिद्रष्टा श्री सोमनाथ जी मरवाहा
(वरिष्ठ अधिवक्ता : उच्च न्यायालय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक वन्दना

ॐ यज्ञं यन्तं मनसा बृहन्तम्
अन्वारोहामि तपसा सयोनिः ।
उपहूता: अग्ने जरसः परस्तात्
तृतीये नाके सधमादं मदेम ।

अथर्व ६, १२२,४

शब्दार्थ— (बृहन्तम्) महान् (यज्ञम्) यज्ञ में (यन्तम्) जाते हुए विद्वानों के साथ (तपसा) तपस्या से (सयोनिः) सगोत्र, समान शक्तिसम्पन्न, (मनसा) मन से (अन्वारोहामि) यज्ञभूमि में चढ़ता हूँ। (अग्ने) हे अग्निदेव (उपहूताः) आपके द्वारा आमंत्रित हम (जरसः परस्तात्) वृद्धावस्था के पश्चात्, इस शरीर के त्याग देने के बाद, (तृतीये नाके) सर्वोच्च मुक्तिपद में (सब दुःखों से रहित स्वर्ग में), (सधमादम्) साथ प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए (मदेम) आनन्द का अनुभव करें।

हिन्दी अर्थ— महान् यज्ञ में जाते हुए विद्वानों के साथ, तपस्या से समान शक्तिवाला, मैं मन से यज्ञभूमि में जाता हूँ। हे अग्निदेव ! आपके द्वारा आमंत्रित हम वृद्धावस्था के पश्चात् (शरीरत्याग कर) परममुक्तिधाम में साथ ही प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए आनन्दित हों।

—डा० कपिलदेव द्विवेदी

यज्ञ हेतु जाने वाले शिवसंकल्पी बुधजन के साथ,
तप-समता सम्पन्न लिए मन पकड़ूँ अग्निदेव का हाथ,
देहाध्यास छोड़ आत्मा की यज्ञभूमि पर गमन करूँ,
उस सर्वोच्च मुक्तिपद में रसरूप ब्रह्म में रमण करूँ।

—डा० विष्णुदत्त राकेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादक की कलम से—

८७वाँ दीक्षान्त

१४ अप्रैल '८७ को विश्वविद्यालय का दीक्षान्त समारोह विश्वविद्यालय भवन में सम्पन्न हुआ। कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा ने विश्वविद्यालय का प्रगति-विवरण प्रस्तुत करते हुए शिक्षाप्रसार तथा शोध के क्षेत्र में अर्जित उपलब्धियों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा—"गुरुकुल प्रणाली वर्तमान परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय अखण्डता, समाजसेवा, मानवजाति की एकता, विश्वव्यापी प्रेम, चरित्रनिर्माण, आत्मानुशासन, सामाजिक तथा लोकतांत्रिक न्याय, सामूहिक कार्यचेतना, ज्ञान की खोज तथा प्रसार जैसे उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो सकती है। गुरुकुल के ब्रह्मचारी व्रताभ्यास, योगाभ्यास तथा आत्मानुशासन से बल ग्रहण करके ही राष्ट्रीय जीवन में योगदान कर सकते हैं।"

दीक्षान्त-भाषण उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री माननीय श्री वीरबहादुर सिंह ने किया। गुरुकुल के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए मुख्यमन्त्री जी ने कहा – 'गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शिक्षानीति के आधार पर की थी। धर्म एवं देश की रक्षा तथा समाजसुधार के लिए स्वामीजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन समाज को समर्पित कर दिया था। गुरुकुल खोलने में उनका उद्देश्य एक ऐसी संस्था की स्थापना करना था जहाँ विद्यार्थियों का चरित्र-निर्माण हो, शांति एवं पवित्र वातावरण में शिक्षा ग्रहण कर सकें, प्राच्य एवं आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के विषयों का अध्ययन करें तथा भारतीय संस्कृति के पोषक बनकर समाज-कल्याण पर चिंतन करें। गुरु-शिष्य परम्परा में छात्रगण आश्रम में रहकर गुरु के गुण को ग्रहण कर चरित्रवान् एवं उत्तम नागरिक बनें। मुझे प्रसन्नता है कि गुरुकुल ने अपना यह लक्ष्य बहुत दूर तक पूरा किया है।' शिक्षा के उद्देश्य की पूर्णता तभी है जब व्यक्ति में ज्ञान-वृद्धि के साथ-साथ व्यक्तिगतगुणों में भी अभिवृद्धि हो और उसमें सामाजिक दायित्व के निर्वाह तथा अर्थोपार्जन की अपेक्षित क्षमता का विकास हो। अब समय आ गया है कि देश, काल एवं परिस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षापद्धति में बुनियादी परिवर्त्तन लाया जाए। मैकाले की शिक्षापद्धति, जिसका उद्देश्य अंग्रेजी सरकार के कामकाज के लिए 'बाबू' तैयार करना मात्र था, अब हमारे स्वतन्त्र राष्ट्र के लिए अधिक उपयोगी नहीं रह गई है। अब यह देश अंग्रेजों का नहीं, हमारा है, आपका, हम सबका है। अब शिक्षा के वर्तमान ढाँचे में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता और इसे समाज एवं व्यक्ति के लिए उपयोगी बनाया जाना चाहिए। स्वतन्त्रता के पूर्व महात्मा गाँधी ने हमें शिक्षा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध में एक नई दिशा दी थी और बुनियादी शिक्षा के रूप में उन्होंने बुनियादी दस्तकारियों के माध्यम से शिक्षा देने के सिद्धान्त को प्रतिपादित कर भारतवासियों को स्वावलम्बन एवं आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ाया था। स्वतन्त्रता के बाद पण्डित जवाहरलाल नेहरू तथा श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने शिक्षा को देश की बदलती हुई आवश्यकताओं से जोड़ा और अब श्री राजीव गाँधी ने शिक्षा को राष्ट्रीय एकता और विकास से सम्बद्ध करने पर बल दिया है तथा शिक्षा को नई दिशा दी है। इन प्रयासों से ही शिक्षा के इस नये प्रारूप में सम्पूर्ण देश में शिक्षा की दिशा एक होगी और समाज के योग्य तथा प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति, चाहे वे किसी कमजोर वर्ग के या किसी जाति के क्यों न हों, सभी अपनी योग्यतानुसार अच्छी से अच्छी शिक्षा प्राप्त करने के अधिकारी होंगे। हमें चाहिए कि एकजुट होकर सत्यनिष्ठा एवं अटूट लगन से कठिन परिश्रम करके राष्ट्र के विकास में सतत् योगदान देते रहें। नैतिक मूल्यों को जीवन में उतारें तथा अपने व्यक्तिगत दायित्वों के साथ-साथ अपने सामाजिक कर्त्तव्यों को भी पूरा करें।

मुख्यमन्त्री जी ने इस अवसर पर पुस्तकालय के लिए ७ लाख रुपये तथा संग्रहालय के लिए १ लाख रुपये का विशेष अनुदान देने की घोषणा की। परिसर में विशाल स्पोर्ट्स स्टेडियम बनवाने की घोषणा वह पहले ही कर चुके थे। कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा ने मुख्यमन्त्री जी को कुलवासियों तथा इस अवसर पर पधारे शिष्टपरिषद्, कार्यपरिषद्, शिक्षापटल के मान्य सदस्यों तथा श्रद्धालु आर्यजनों की ओर से धन्यवाद दिया तथा आशा व्यक्त की, कि मुख्यमन्त्री जी इन घोषणाओं की पूर्ति यथाशीघ्र करायेंगे।

विश्वविद्यालय के कुलाधिपति तथा सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने दीक्षान्तसमारोह की अध्यक्षता की। डा० वीरेन्द्र अरोड़ा, कुलसचिव ने कार्यक्रम का सफल संचालन किया।

विश्वविद्यालय के नये परिद्रष्टा

विश्वविद्यालय के कुलसचिव डा० वीरेन्द्र अरोड़ा द्वारा दी गई सूचना के अनुसार विश्वविद्यालय की शिष्टपरिषद् ने अपनी एक बैठक में आर्यसमाज के कर्मठ नेता, विधिविशेषज्ञ और उच्च न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सोमनाथ जी मरवाह को विश्वविद्यालय के नए परिद्रष्टा के रूप में सर्वसम्मति से चुन लिया है। अभी तक इस पद पर गुरुकुल के यशस्वी स्नातक तथा सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कार्यरत थे। उनका कार्यकाल समाप्त हो गया था। उनके स्थान पर श्री मरवाह के नाम का प्रस्ताव आर्यसमाज की सार्वदेशिक सभा के प्रधान स्वामी आनन्दबोध सरस्वती ने किया था। श्री मरवाह सभा के कोषाध्यक्ष भी हैं। इससे पूर्व श्री मरवाह विश्वविद्यालय के निःशुल्क कानूनी सलाहकार रहे हैं। हर संकट की घड़ी में विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रक्षा के लिए उनकी सेवाएँ उपलब्ध रही हैं। १९७७ से १९८० तक के संघर्ष और उसके बाद के समय में गुरुकुल को व्यवस्थित, विकसित तथा उन्नत करने में उन्होंने कोई कसर उठाकर नहीं रखी। वे गुरुकुल के साथ अभिन्न हैं तथा प्रयत्नशील हैं कि गुरुकुल ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार के साथ वैदिकधर्म तथा आर्यसमाज के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो।

आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार

गुरुकुल कांगड़ी के प्रारम्भिक आचार्यों में एक तथा हिन्दी में भौतिक विज्ञान तथा रसायन विज्ञान पर पुस्तकें लिखने वाले आचार्य गोवर्धन शास्त्री १९१४ में गुरुकुल छोड़कर दिल्ली के रामजस हाईस्कूल में मुख्याध्यापक हो गए थे। १९०५ में लाहौर से आपने बी०ए० किया तथा स्वामी श्रद्धानन्द जी के अनुरोध पर गुरुकुल आ गए। १९१८ में आपने संस्कृत में एम० ए० तथा १९२२ में एम० ओ० एल० तथा शास्त्री की परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। 'वेदों का अनादित्व' पुस्तक लिखकर आपने वेदों की प्राचीनता और प्रामणिकता पर गम्भीर प्रकाश डाला। पाकिस्तान के डेरा गाजीखान जनपद के ताशाशरीफ गाँव में वेद-प्रचार के केन्द्र के रूप में आपने संघड़ वर्नाकुलर हाईस्कूल की स्थापना की। यहाँ से वह पश्चिमी सीमाप्रांत में आर्यसमाज व आर्यधर्म का प्रचार करने का अभियान चलाना चाहते थे। आपके सुपुत्र श्री बलभद्रकुमार हूजा गुरुकुल के कुलपति रहे तथा विश्वविद्यालय को आत्मनिर्भर बनाने में आपने अविस्मरणीय योगदान किया। संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर ने आर्यसमाज, साहित्य, शिक्षा, समाजसेवा तथा प्रचारकार्य के लिए शास्त्री जी की स्मृति में एक पुरस्कार की प्रतिष्ठा की है। इसमें प्रशस्तिपत्र, उत्तरीय तथा एक सहस्र रुपये सम्मान-राशि के रूप में उक्त कार्यों के लिए किसी व्यक्ति को प्रतिवर्ष समर्पित किए जाते हैं। १९८१ में पहला पुरस्कार प्रो० रामप्रसाद वेदालंकार, उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी को दिया गया। अब तक क्रमश: पुरस्कार के विजेता डा० भवानीलाल भारतीय, पण्डित विश्वनाथ, विद्यामार्तण्ड पण्डित सत्यकाम विद्यालंकार, वेदमार्तण्ड पण्डित भगवद्दत्त वेदालंकार, वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत, शतायु हिन्दी-लेखक श्री संतराम बी० ए० रहे हैं। इस वर्ष का पुरस्कार वेदमनीषी डा० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, शिक्षाशास्त्री श्री दत्तात्रेय बावले तथा समाजसेवी लाला चेतनदास (मरणोपरांत) को दिया गया है। डा० सत्यव्रत जी वेदों के उद्भट् विद्वान् हैं। उन्होंने दर्शन, धर्म, शिक्षा, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, योग तथा होमियोपैथी पर हिन्दी, अंग्रेजी में उच्चकोटि के मौलिक ग्रन्थों की रचना की है। उनके गीताभाष्य की प्रशंसा श्री लाल बहादुर जी शास्त्री तथा श्री जयप्रकाश नारायण और उपनिषद्भाष्य की प्रशंसा डा० राधाकृष्णन जैसे विश्वविख्यात विद्वानों ने की है। श्री दत्तात्रेय बावले डी० ए० वी० कालेज अजमेर के प्राचार्य रहे हैं। आपके प्रयत्नों से ही ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के कार्य को बढ़ावा देने के लिए दयानन्द कालेज में दयानन्द शोधपीठ की स्थापना हुई है। पद्मभूषण डा० सूरजभान आपके कालेज को 'लघु विश्वविद्यालय' कहते थे। आपकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैक्षिक तथा साहित्यिक सेवाओं के लिए १९७१ में तत्कालीन उपराष्ट्रपति डा० गोपाल स्वरूप पाठक की अध्यक्षता में आपका सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया था। विरजानन्द स्कूल आदि १३ शिक्षणसंस्थाएँ खोलकर तथा भारतीय रेडक्रास समिति जिला शाखा अजमेर के अध्यक्ष के रूप में निर्धन, पिछड़े एवं दलित वर्गों के कल्याण के लिए अनेक योजनाएँ क्रियान्वित कर आपने प्रशंसनीय सेवाएँ की हैं।

लाला चेतनदास जालन्धर के निष्काम समाजसेवी रहे और वर्षों तक संघड़ सभा के साथ संलग्न होकर उन्होंने उल्लेखनीय सेवाएँ कीं। इन तीनों महानुभावों को 'आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार' से सम्मानित कर संघड़ सभा ने आदर्श कार्य किया है। १९ अप्रैल '८७ को तालकटोरा गार्डन दिल्ली में विश्वविद्यालय के कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा ने तथा श्री बलभद्रकुमार हूजा ने पुरस्कार समर्पण का कार्य किया। महात्मा हंसराज दिवस समारोह पर प्रदत्त इन पुरस्कारों का उपस्थित शिक्षाविद्, साहित्यकार तथा आर्यबन्धुओं ने करतल ध्वनि से समर्थन किया।

शोषितजन की ऊर्जा और मनुष्य के भीतर की प्रेम-लौ के साधक

कवि केदारनाथ अग्रवाल सम्मानित

२३ फरवरी १९८७ को साहित्य अकादमी ने हिन्दी कवि केदारनाथ अग्रवाल को उनकी रचना 'अपूर्वा' के लिए पुरस्कृत किया। अग्रवाल जी का जन्म १९११ में बाँदा जिले के कमासिन गाँव में हुआ। प्रयाग और आगरा विश्वविद्यालय से बी० ए० तथा एल-एल० बी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। निराला और डा० रामविलास जी से निकटतम सम्पर्क रहा। हिन्दी के प्रगतिशील आन्दोलन से सक्रियरूप से जुड़े तथा हँस और नया साहित्य में नियमित लिखते रहे। प्रगतिवादी दृष्टि तथा उद्बोधनात्मक शैली प्रारम्भिक रचनाओं में अधिक दिखाई पड़ती है। भाषाशैली और छन्दविधान सहज और व्यावहारिक है। प्रकृति के क्षेत्र में बिखरा जीवन-उत्साह उनके सामने था। गाँव, खेत, खलिहान, नदी, नाले, आस-पास का परिवेश और जनसंकुलता उन्हें आकृष्ट कर रही थी। तीखी व्यक्तिगत संवेदना और सामाजिक पीड़ा का उन्होंने खुलकर अनुभव किया था। १९४७ में उनके दो काव्यसंकलन 'नींद के बादल' तथा 'युग की गंगा' नाम से प्रकाशित हुए। नींद के बादल संग्रह की रचनाओं में प्रेम का ज्वार था, सौन्दर्य की गरमाहट थी और थी कविप्रिया की गंधवर्णी संवेदनाएँ। उनकी रचनाओं में पर-नारी की मूर्ति नहीं, उनकी पत्नी श्रीमती पार्वती देवी की दाम्पत्य-छवि है। यह यथार्थ से उपजी है, इसे उन्होंने प्रिया-प्रियंवद नाम दिया है, यह कहते हुए—

है न उतना गीत में रस
है न इतना काव्य में रस,
रूप में जितना तुम्हारे
प्राणप्यारी है भरा रस।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'युग की गंगा' में प्रगतिवादी रचनाएँ संकलित हैं। वर्ग-वैषम्य, शोषित जीवन की संवेदना और आभिजात्य की विसंगति इन रचनाओं में फूट पड़ी है। छायावादी भाषा का कुहरा छाँटने वाले तथा मानवसभ्यता के ऐतिहासिक विकास में आस्था रखने वाले प्रगतिशील कवियों में केदार जी महत्वपूर्ण हैं। जनजीवन में सौन्दर्य की खोज करते-करते, मानवघाती परम्पराओं पर प्रहार करते-करते और नवयुग की आकांक्षाओं की पूर्ति करते-करते वह मानवतावादी हो गए हैं। निरुद्देश्य क्रान्ति उनके पास नहीं, आग्रहबद्ध जड़ता वहाँ फटकती नहीं, जनविश्वास और सामाजिकसम्बन्धों को उभारना ही उनका लक्ष्य है। लोकसंपृक्ति उनकी कविता की प्रमुख पहचान है। चित्रकूट कविता की कुछ पंक्तियाँ यहाँ इस आशय से उद्धृत हैं, जिनमें धार्मिक रूढ़ियों पर व्यंग्य किया गया है—

चित्रकूट के बौड़म यात्री
सतुआ, गुड़ गठरी में बाँधे
गठरी को लाठी पर साधे,
लाठी को काँधे पर टाँगे,
दिन भर अधरम करने वाले
पर नर को ठगने वाले
पर सम्पति को हरने वाले।

स्वयं कवि के शब्दों में—'युग की गंगा में समाज की अर्थनीति के विरुद्ध प्रहार है, कटुजीवन का व्यंग्य है, प्रकृति का किसानी चित्रण है। जिंदगी की भीड़ की इन कविताओं में जनता के मोर्चे की प्रतिध्वनि है।'

केदार जी की अन्य रचनाएँ हैं—फूल नहीं रंग बोलते हैं, आग का आईना, समय-समय पर, लोक-आलोक, बोले-बोल अबोल तथा अपूर्वा। केदार जी के दीर्घजीवी होने के लिए अनेक मंगलकामनाएँ।

संस्कृतव्याकरण का एक स्तम्भ गिरा

९० वर्ष की परिणत वय तक निरन्तर संस्कृत भाषा और व्याकरण पर चिन्तन, मनन और लेखन का कार्य करते रहने वाले विद्वान् पण्डित चारुदेव शास्त्री का निधन हो गया। सन् १९७१ में उन्हें राष्ट्रपति सम्मान मिला था। दिल्ली संस्कृत साहित्य सम्मेलन की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर डा० राधाकृष्णन जी ने उन्हें विद्यावाचस्पति की उपाधि से अलंकृत किया था। जीती-जागती सरल संस्कृत लिखने-पढ़ने की वह सदैव प्रेरणा देते रहे। उन्होंने स्वयं संस्कृतव्याकरण को महाभारत, काव्य, नाटक आदि के प्रयोगों से जोड़कर रोचक बनाया। वह संस्कृतव्याकरण को सर्जना की सजीव भाषा से जोड़ने के पक्षधर थे। पाँच खण्डों में लिखा उनका व्याकरण चन्द्रोदय ग्रन्थ इस कथन की पुष्टि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है। व्याकरणिक प्रयोग और शिष्ट प्रयोगों की महत्ता उन्होंने समझाई। संस्कृत के पुराने मुहावरों की विशेषता बताते हुए संस्कृत के मानकरूप की व्याख्या शास्त्री जी ने अपने ग्रन्थों में की। शब्दापशब्द विवेक, वाक्यमुक्तावली और वाग्व्यवहारादर्श उनकी ऐसी पुस्तकें हैं। गाँधिचरित की भाषा देखकर आप मुग्ध हो उठेंगे। इसमें गाँधी जी के समसामयिक समस्याओं पर लिखे भाषणों और पत्रों का बोलचाल के अंदाज में संस्कृत अनुवाद है। पतंजलि के महाभाष्य के ९ आह्निकों का हिन्दी अनुवाद कर तथा कैयट और नागेश के मन्तव्यों का सरल हिन्दी में व्याख्यान कर, हिन्दीविद्वानों का मार्ग साफ किया। भर्तृहरि के वाक्यपदीय के भाषाशास्त्रीय अध्ययन की ओर विद्वानों का ध्यान उन्होंने ही आकृष्ट किया था। संस्कृतअध्यापन की वैज्ञानिक तथा सरस शैली का भी आविष्कार शास्त्री जी ने किया था। उनका 'उपसर्गार्थ चन्द्रिका' ग्रन्थ व्याकरण के क्षेत्र में अभूतपूर्व है क्योंकि इसमें उपसर्गों के उदाहरण विशाल संस्कृत वांग्मय से एकत्र किए गए हैं। व्याकरण और व्यवहार को एक साथ रखकर संस्कृतशब्दों के विश्लेषण की गंभीर क्षमता शास्त्री जी में थी। संस्कृत के ऐसे ऋषितुल्य विद्वान् के निधन से हुई अपार क्षति की पूर्ति असंभव है। उनकी स्मृति को प्रणाम। ❀

अरे यायावर रहेगा याद !

हिन्दी के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त कवि श्री सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय का निधन हो गया। उनके भतीजे सिद्धार्थ वात्स्यायन, प्रसिद्ध लेखक शील काफ निगम, कवि-सम्पादक केशव मलिक तथा प्रोफेसर मानसमुकुल दास उनके अस्थिअवशेष लेकर हरिद्वार पधारे। मुझे इस अवसर पर स्वर्गीय कवि की एक कविता स्मरण हो आई और उसे मैंने श्रद्धांजलि के रूप में पढ़ा—

मैं मरूँगा सुखी,
क्योंकि तुमने जो जीवन दिया था,
उससे मैं निर्विकल्प खेला हूँ,
खुले हाथों मैंने उसे बारा है,
मैं मरूँगा सुखी
मैंने जीवन की धज्जियाँ उड़ाई हैं।

आज अज्ञेय नहीं हैं, पर जीवन के प्रति उनका अनासक्त लगाव मुझे उनकी सतत् उपस्थिति का आभास दे रहा है। पेड़ पर वह बालकों के घरोंदे जैसा घोंसला बना रहे थे। उसमें कविता सुनाने वाले थे पर चिड़िया की कहानी बन गया उनका जीवन। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' की ये पंक्तियाँ चरितार्थ हो उठीं—

उड़ गई चिड़िया,
कांपी, फिर,
थिर
हो गई पत्ती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी डाल से चिड़िया के उड़ जाने पर पत्ती काँपती है और फिर धीरे-धीरे स्थिर हो जाती है जैसे कुछ हुआ ही न हो, निस्पंद और निर्विकार। इसी तरह जीवन की चिड़िया संसार के उपवन से उड़ जाती है, परिवार में हलचल होती है और फिर सब कुछ शांत हो जाता है। संसार का कार्य पूर्ववत् चलने लगता है। पर क्या अज्ञेय का चला जाना एक छोटे-से क्रियाव्यापार तक सीमित रहेगा ? उनके उड़ जाने पर क्या साहित्यिकों का मनरूपी पत्ता काँप कर फिर सहज स्थिर हो जाएगा। नहीं, यह रिक्ति कभी भरेगी नहीं। अज्ञेय हिन्दी-वाटिका की 'हरी घास पर क्षणभर' बैठने के लिए भले ही आए हों पर वह 'बावरा अहेरी' जिसने 'इन्द्रधनुष रौंदे हुए' देखकर भी 'इत्यलम्' नहीं समझा, बराबर याद आता रहेगा। उन्होंने अपने कविजीवन को स्वयं प्रतीक देते हुए कहा था—'अरे यायावर रहेगा याद'।

अज्ञेय का जन्म ७ मार्च १९११ को देवरिया के कसया स्थान पर हुआ। उनके पिताश्री हीरानंद शास्त्री पुरातत्त्ववेत्ता थे। कुशीनगर या कसया में बीता अज्ञेय का बचपन। उनका अन्तर्मन श्रमणसंस्कारों से भरा था, उसमें शिशु बुद्ध का आलोक ठहर गया था और बाद में जब वह फ्रांस गए तो इसी भाव के कारण वह 'पियेर द क्ववीर' ईसाई मठ में ठहरे। अज्ञेय जी ने १९२९ में फॉरमन कालेज लाहौर से बी०एस-सी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। अंग्रेजी, संस्कृत, बंगला पर उनका पूर्ण अधिकार था। उनका सम्पर्क क्रांतिकारियों से भी रहा। हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना के सदस्य रहे। भगतसिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद, सुखदेव तथा भगवतीचरण बोहरा से उनका परिचय बढ़ा। भगतसिंह को छुड़ाने के लिए बम बनाने का कार्य शुरु किया। १५ नवम्बर १९३० को गिरफ्तार कर लिए गए। १९३६ तक उनका जीवन यातनाओं और संघर्ष में बीता। क्रांति तब उनके जीवन और रचनाओं में रच-पच गई थी। इत्यलम् में उन्होंने कहा—

तुम जो महलों में बैठे दे सकते हो आदेश,
मरने दो बच्चे, ले आओ खींच पकड़कर केश,
नहीं देख सकते निर्धन के घर दो मुट्ठी धान,
सुनो तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान।

सैनिक, विशाल भारत, प्रतीक, दिनमान, नवभारत जैसी पत्रिकाओं का सम्पादन कर अज्ञेय ने न केवल आजादी की लड़ाई का शिविर लगाया अपितु देश-विदेश की राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक रपट तैयार करवाने में हिन्दी को विश्वभाषा का रूप देने का उद्यम किया। शब्दों को गढ़ा और दृश्य-श्रव्य के माध्यम के रूप में हिन्दी की विश्वसनीयता बढ़ाई। १९५५ में यूनेस्को के निमन्त्रण पर यूरोप गए तथा विश्व के बड़े कवि-लेखकों से मिले। १९६१ में केलिफोर्निया में भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रोफेसर नियुक्त हुए तथा फिर रूमानिया, युगोस्लाविया, रूस, मंगोलिया, जापान, आस्ट्रेलिया की यात्रा कर भारतीय साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया। जोधपुर विश्वविद्यालय में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीक्षान्त-समारोह, दाएँ से—कुलसचिव श्री वीरेन्द्र अरोड़ा, कुलपति श्री रामचन्द्र शर्मा से विचार-विमर्श करते हुए। कुलाधिपति डा० सत्यकेतु विद्यालंकार तथा मुख्यमन्त्री उत्तर प्रदेश, माननीय श्री वीरबहादुर सिंह जी (मुख्य-अतिथि) के साथ शिष्ट परिषद् के मान्य सदस्य मंच पर विराजमान हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय भाषा और साहित्य विभाग के निदेशक-आचार्य भी रहे। एक जगह घुमक्कड़ अज्ञेय रहे ही नहीं। इसीलिए उन्हें यायावर या परिव्राजक कहा जाए तो अनुचित न होगा। उपन्यास, कहानी, कविता, निबन्ध, गद्यगीत, आलोचना, फोटोग्राफी, बागवानी, चर्मशिल्प, मृत्तिका प्रतिमानिर्माण, पर्वतारोहण, सिलाईकला तथा सम्पादन जैसी बहुआयामी वृत्तियों के धनी इस कलाकार को देखकर लगता था कि अनेक को एक में साधने की कला कोई इनसे सीखे। उन्हें कई राष्ट्रीय पुरस्कार मिले। 'कितनी नावों में कितनी बार' रचना पर ज्ञानपीठ, आँगन के पार द्वार पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। मरणोपरांत उत्तर प्रदेश ने एक लाख रुपये का भारत-भारती पुरस्कार दिया। ज्ञानपीठ पुरस्कार की विपुल राशि से 'वत्सल निधि' की स्थापना कर नवोदित प्रतिभाओं के विकास के लिए कई कार्यक्रम आयोजित किए। सम्पूर्ण देश में लेखक-शिविर लगाए।

अज्ञेय हिन्दी में प्रयोगवाद के जन्मदाता हैं। तारसप्तक के सम्पादन से उन्होंने हिन्दी में कविता और उसकी भाषा को एक नया मोड़ दिया। वैज्ञानिक युगबोध, आधुनिकता, व्यक्तिगत अभाव और कुंठा, यौनचेतना, सामाजिक विसंगति, कला और क्षतिपूर्ति, क्षणवाद, नैतिकता, मूल्य और उद्देश्य, राग तथा बौद्धिकता जैसे विषयों पर उन्होंने रचनाएँ लिखीं। उन्होंने व्यक्तिचेतना और समाजबोध को अलग करके नहीं देखा, उन्होंने लिखा—

सूरज का जपा फूल सागर हाथों
अम्बा तिमिरमयी को नैवेद्य चढ़ चला।

*   *

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता पर
इसे भी पंक्ति को दे दो।

अज्ञेय का साहित्यिक जीवन १९३३ से प्रारम्भ हुआ, भग्नदूत के प्रकाशन के साथ। फिर चिन्ता, तारसप्तक, इत्यलम्, हरी घास पर क्षणभर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, अरी ओ करुणा प्रभामय, आँगन के पार द्वार, कितनी नावों में कितनी बार, क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, सागरमुद्रा, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ, पूर्वा, सुनहले शैवाल, जैसे संकलन निकले। हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, भवंती, अंतरा, जोगलिखी, संवत्सर तथा अद्यतन जैसे निबन्धसंकलन प्रकाशित हुए। शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप, अपने-अपने अजनबी जैसे उपन्यास छपे जो हिन्दीउपन्यासों की श्रृंखला में नया विषय तथा नया शिल्प लेकर आए थे। १९५९ में नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन कर, १९४६ में प्रतीक का सम्पादन कर तथा १९६५ में दिनमान का सम्पादन कर उन्होंने सांस्कृतिक अभियान तथा संगठनशक्ति का परिचय दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज्ञेय का काव्य हिन्दी में एक बृहत्तर माध्यम की खोजयात्रा कहा जा सकता है। नये प्रतीक और मिथक, नये बिम्ब और भाषामुद्रा, तीव्र संवेग और कल्पना तथा जीवंत भावानुभवों ने उनकी कविताओं को समृद्ध बनाया है। 'जोग लिखी' में कहीं उन्होंने लिखा है—'हर कृतिकार कृति के द्वारा मुक्त होता है। अगर उस मुक्ति का लाभ और बोध उसको नहीं होता तो फिर उसने जो लिखा है, वह रचना नहीं है।'

लम्बे सर्जना के क्षण कभी भी हो नहीं सकते
बूँद स्वाती की भले हो।
बेधती है मर्म सीपी का उसी निर्मम त्वरा से,
वज्र जिससे फोड़ता चट्टान को,
भले ही फिर व्यथा के तम में,
बरस पर बरस बीते,
एक मुक्ता रूप को पकते।

अज्ञेय ने मनुष्य की मुक्ति के लिए गुहार लगाई। रूढ़ियों और अज्ञान से जूझते मनुष्य को ऊपर उठाने का संकल्प लिया। हर टूटते किन्तु सतत संघर्षरत व्यक्ति के प्रति उनकी हमदर्दी है। सामाजिक न्याय के लिए खड़े होने वाले के साथ वह खड़े हैं। अज्ञेय की यही अपनी पहचान है और इसीलिए उनकी कविता जीवित रहेगी—

क्योंकि जिसने कोड़ा खाया है
वह मेरा भाई है,
क्योंकि यों मैं उसकी मार से तिलमिला उठा हूँ,
इसके लिए मैं उसके साथ नहीं चीखा चिल्लाया हूँ,
मैं उस कोड़े को छीन कर तोड़ दूँगा।
मैं इंसान हूँ और इंसान वह अपमान नहीं सहता।

संग्रहालय अंक

गुरुकुल विश्वविद्यालय का संग्रहालय पुरातत्त्व, भारतीय संस्कृति और इतिहास की सुन्दर धरोहर है। इसका उद्घाटन पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने किया था। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा० वासुदेवशरण अग्रवाल भी उस समय उपस्थित हुए थे। प्रो० हरिदत्त वेदालंकार, डा० गंगाराम जी गर्ग तथा डा० बिनोदचन्द्र सिन्हा ने अपने कार्यकाल में इसकी उन्नति के लिए बड़ा परिश्रम किया। सम्प्रति इसके निदेशक डा० जबरसिंह सेंगर हैं।

इस अंक में दी गई सामग्री से गुरुकुल संग्रहालय का परिचय प्राप्त होगा। इसके लिए संग्रहालय के निदेशक डा० जबरसिंह सेंगर तथा संग्रहालयाध्यक्ष डा० सूर्यकान्त श्रीवास्तव को हम विशेषरूप से धन्यवाद देते हैं।

—डा० विष्णुदत्त राकेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिहाद का झंडा

—कुमार हिन्दी*

बुजुर्गों ने नौजवानों के कत्लेआम का
हुक्म दे दिया है।
उनका बस चले तो वह नौजवानों को
बुजुर्ग बना दें
जवानी का जवानी में खून कर दें
नौजवान इसे खूब समझते हैं
वह विद्रोह करते हैं
क्या कत्लेआम के हुक्म के खिलाफ़
विद्रोह करना जुर्म है ?
क्या आत्मरक्षा करना गुनाह है ?
उठो, दकियानूसी सत्ता के विरुद्ध
जिहाद का झंडा बुलन्द करो
पाखण्ड और धर्मान्धता का विनाश करो
बुजु.र्ग जिज्ञासा का हनन करते हैं
खुले चिन्तन का ह्रास करते हैं
उठो, रूढ़ियों को तोड़ो
पुराने ढर्रों से मुक्त हो
मूर्खों से, पाखण्डियों से, लोहा लेना होगा !
भ्रष्टाचार का मुकाबला करना होगा !
अकेले पड़ सकते हो
दुरदुराए जा सकते हो
धमकाए जा सकते हो
सताए जा सकते हो
लेकिन, अन्याय सहन करना महापाप है
नौजवानों,
तुम्हें भविष्य बुला रहा है
भविष्य की झाँकी देखो
अपने कत्लेआम के हुक्म के विरुद्ध
जिहाद का झंडा बुलन्द करो।

* *

---

* **श्री बलभद्रकुमार हूजा 'कुमार हिन्दी'**
पूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम

—कुमार हिन्दी

नाम !
निमानियों का मान है
नितानियों की तान है
निराश्रितों का आश्रय
निस्सहायों का सहाय
दलितों की आशा
पतितों का उद्धारक
    क्योंकि उनका कोई और तो है नहीं
लेकिन
    केवल नाम ही नाम
    अनस्थीसिया है
    ट्रांक्विलाइज़र है
क्या नाम ने
    सोमनाथ के पुजारियों की रक्षा की ?
    मुहम्मद शाह रंगीले की रक्षा की ?
    सिराजुद्दौला की रक्षा की ?
नाम मदद करता है
    महमूद ग़ोरी की,
    नादिरशाह की,
    राबर्ट क्लाइव की !
हाँ, नाम भक्तों को हौंसला प्रदान करता है—
नाम ने हौंसला प्रदान किया
    ईसा मसीह को
    गुरु अर्जुनदेव को
    गुरु तेग़बहादुर को
    शहीदे आज़म भगतसिंह को
    राजगुरु, सुखदेव, वीर हरिकृष्ण को ।
नाम
    शान्ति भी, शक्ति भी प्रदान करता है
तब, जब जुबान पर नाम हो
    हाथ में तलवार हो ।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी

उत्तराखण्ड में लोकशिक्षण का एक नया केन्द्र

डा० कृष्णदत्त वाजपेयी
पूर्व अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग, सागर विश्वविद्यालय

वर्तमान युग में संग्रहालयों की उपादेयता की ओर लोगों का ध्यान गया है। यूरोप और अमेरिका में तो विविध प्रकार के संग्रहालयों की संख्या बहुत बड़ी है और दिन पर दिन उसमें वृद्धि होती जा रही है। वहाँ प्राय: प्रत्येक नगर में एक न एक सार्वजनिक संग्रहालय मिलेगा। शिक्षा-संस्थाओं के अपने संग्रहालय अलग होते हैं, जिनमें विद्यार्थियों के उपयोग की वस्तुएँ प्रदर्शित रहती हैं। पश्चिमी देशों में बहुत-से संग्रहालय ऐसे मिलेंगे जो व्यक्तियों के द्वारा अपने निजी धन से स्थापित किए गए हैं। दुर्भाग्य से हमारे देश में इस दिशा में बहुत कम प्रगति हुई है। सारे भारत में सभी प्रकार के सार्वजनिक संग्रहालयों की संख्या १५० से अधिक न होगी। इनमें से भी बहुत-से केवल नाम के ही मिलेंगे। हमारे यहाँ के संग्रहालयों की सामग्री का वैसा उपयोग भी नहीं होता जैसा कि पश्चिम में हो रहा है। भारत के विभिन्न प्रदेशों में स्थापत्य, मूर्तिकला एवं चित्रकला के अवशेष तथा प्राचीन सिक्के, हस्तलिखित ग्रन्थ आदि वस्तुएँ बहुत बड़ी संख्या में बिखरी पड़ी हैं। इनमें से बहुत कृतियाँ नष्ट हो रही हैं। शासन तथा जनता को अब इस ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिए, जिससे हमारी यह प्राचीन धरोहर नष्ट होने से बच सके तथा उसका यथोचित उपयोग किया जा सके।

भारत में संग्रहालयों की संख्या तथा उनकी उत्तरोत्तर उन्नति की दृष्टि से उत्तर प्रदेश का स्थान अग्रगण्य है। पिछले अनेक वर्षों में इस दिशा में बहुत कुछ प्रगति हुई है, जिसका मुख्य श्रेय इस प्रदेश के विद्वान् पूर्व शिक्षामंत्री डा० सम्पूर्णानन्द जी को है। १९४७ ई० में उन्होंने इस प्रदेश के सार्वजनिक संग्रहालयों की दशा सुधारने एवं उनमें वृद्धि करने के उद्देश्य से एक संग्रहालय समिति की स्थापना की थी। इस समिति ने जो अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की वह अब धीरे-धीरे कार्यान्वित हो रही है।

समिति ने इस प्रदेश के जिन नगरों में नये संग्रहालयों की स्थापना की सिफारिश की है उनमें एक हरिद्वार भी है। यह नगर हिन्दुओं के मुख्य तीर्थ स्थानों में है। प्रति-वर्ष यहाँ भारत के कोने-कोने से बहुत बड़ी संख्या में लोग आते हैं, कुम्भ तथा अर्ध-कुम्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अवसर पर इन दर्शकों की संख्या बहुत अधिक हो जाती है। सौभाग्य से हरिद्वार की मुख्य शिक्षासंस्था गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने भी अपने यहाँ के 'वेद मन्दिर' में एक संग्रहालय की स्थापना की है, जिसे उत्तर प्रदेशीय सरकार ने भी मान्यता दी है। इस संग्रहालय में चार विभाग हैं—१. मूर्तिकला विभाग, २. चित्रकला विभाग, ३. सिक्कों का विभाग ४. विविध वस्तुओं का विभाग।

मूर्ति विभाग में उत्तराखंड के विविध स्थानों से प्राप्त अनेक मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं। ये मुख्यत: पूर्वमध्यकाल तथा उत्तरमध्यकाल की हैं। इनमें महिषमर्दिनी दुर्गा, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, जैन तीर्थङ्करों आदि की मूर्तियाँ हैं। चतुर्मुखब्रह्मा का एक सिर भी यहाँ प्रदर्शित है जिसका अलंकृत जटाजूट तथा मुखों की मुद्रा अत्यन्त सुन्दर है। यह कलाकृति ईस्वी आठवीं शताब्दी के अन्त की है। हाल में मिट्टी की भी कुछ मूर्तियाँ संग्रहालय के लिए उपलब्ध हुई हैं, जो मौर्यकाल से लेकर गुप्तकाल तक की हैं। सहारनपुर जिले के झींवरहेड़ी नामक स्थान से एक शिलापट्ट मिला है जिसमें देवताओं और असुरों के द्वारा समुद्र-मन्थन का दृश्य बड़ी सजीवता के साथ अंकित किया गया है।

चित्र विभाग में पहाड़ी कला के अनेक चित्र प्रदर्शित हैं। इनमें से कुछ चित्र उच्च-कोटि के भी हैं। टिहरी-गढ़वाल की रियासत में (जो अब उत्तर प्रदेश का एक जिला बन गयी है) १८वीं और १९वीं शती में चित्रकला की पहाड़ी शैली का अच्छा विकास हुआ। मुगल दरबारों में रहने वाले अनेक चित्रकार टिहरी नरेशों के संरक्षण में रहे थे। उनके तथा उनके वंशजों के द्वारा पहाड़ी चित्रकला को बहुत प्रोत्साहन मिला। इस शैली के कितने ही चित्र अब भी पूर्वी पंजाब, टिहरी-गढ़वाल, गढ़वाल तथा अल्मोड़ा जिले के विभिन्न स्थानों में पड़े हुए हैं। अच्छा हो यदि इनमें से कुछ चुने हुए चित्रों का संग्रह हरिद्वार के संग्रहालय में किया जा सके।

हाल में गुरुकुल संग्रहालय के कार्यकर्ताओं ने कनखल के कुछ भित्तिचित्रों का संग्रह अपने यहाँ किया है। ये चित्र 'निर्मला अखाड़ा' नामक एक बड़ी इमारत की दीवारों पर मिले हैं। इनमें से कुछ १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ के तथा कुछ मध्य के बने हुए हैं। मुझे संग्रहालय के मन्त्री श्री हरिदत्त वेदालंकार के साथ इन भित्तिचित्रों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और इन्हें देखने पर तत्कालीन चित्रकला की एक झाँकी मिली। इस कला में मुगल, पहाड़ी तथा यूरोपीय शैलियों का अच्छा सम्मिश्रण हुआ है। कुछ चित्रों में रंग, रेखा, वर्ण्यविषय तथा भाव की ओर कलाकारों ने काफी ध्यान दिया है। झूला झूलती हुई स्त्रियाँ, विविध राग-रागनियों के चित्र, पौराणिक दृश्य, राजाओं की शोभायात्रा, आदि विभिन्न विषय इनमें मिलते हैं। मुख्य भित्तिचित्रों के प्रतिचित्र बनवा कर संग्रहालय में प्रदर्शित कर दिए गए हैं। इनमें आसावरी रागिनी, शुक के साथ क्रीड़ा करती हुई वनिता, विरहिणी नायिका, होली का दृश्य, राम का अभिषेक, शृङ्गार में तल्लीन स्त्री तथा विविध नायिकाओं के चित्र उल्लेखनीय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संग्रहालय में सिक्कों का विभाग भी दर्शनीय है। इस विभाग में प्रारम्भिक आहत सिक्कों से लेकर अर्वाचीन काल तक के सिक्के प्रदर्शित हैं। विदेशों के सिक्कों का भी अच्छा संकलन किया गया है। विभिन्न कालों के अनुसार सिक्के अलग-अलग रक्खे गए हैं।

चौथे विभाग के अन्तर्गत विविध मानचित्र, लिपिपत्रक आदि हैं। ब्राह्मी, खरोष्ठी आदि प्राचीन लिपियों के लगभग ६० चार्ट अब तक तैयार हुए हैं जो कि कालक्रमानुसार भवन में प्रदर्शित किए गए हैं।

संग्रहालय की स्थापना तथा उसकी समृद्धि में इन पंक्तियों के लेखक ने सहयोग देकर अपना श्रम सफल किया है।

वस्तुत: यह संग्रहालय एक बड़ी कमी को दूर करता है। इसके द्वारा गुरुकुल विश्वविद्यालय तथा हरिद्वार की अन्य शिक्षासंस्थाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों का लाभ तो होता ही है, जनसाधारण भी इससे लाभान्वित होते हैं। संग्रहालय के संचालक ने इस बात का ध्यान रक्खा है कि उसमें संग्रहीत सामग्री का पूरा उपयोग प्रादेशिक इतिहास के अन्वेषण में किया जाए। उनका यह भी उद्देश्य है कि इस संग्रहालय के द्वारा शिक्षण का कार्य अग्रसर हो तथा जनसाधारण का ध्यान भारत के प्राचीन गौरव की ओर आकर्षित हो। उत्तरप्रदेशीय सरकार ने हाल में प्रादेशिक संग्रहालय निर्माण की जो महत्त्वपूर्ण योजना बनायी है उसकी पूर्ति की ओर गुरुकुल संग्रहालय अग्रसर है। आशा है कि शासन एवं जनता के सहयोग से उत्तराखण्ड के सम्बन्ध में पुरातत्त्व, नृतत्व, चित्रकला आदि की यथेष्ठ सामग्री इस संग्रहालय में शीघ्र संकलित हो सकेगी, जिसके द्वारा विशेषकर इस प्रदेश के अज्ञात इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरातत्व संग्रहालय : संक्षिप्त परिचय

डा० बिनोदचन्द्र सिन्हा

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, प्रा०भा० इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग

विश्वविद्यालय परिसर में दयानन्द द्वार से लगभग १०० मीटर पूर्व की ओर संग्रहालय भवन अवस्थित है। पीले रंग में पुता हुआ यह दोमंजिला भवन अपने विस्तार के लिए तीसरी मंजिल के निर्माण की प्रतीक्षा कर रहा है। इस भवन में संग्रहालय वर्तमान दशक के प्रारम्भ में ही नियोजित किया गया था किन्तु अपने अतीत में यह लगभग ८० वर्षों का इतिहास सँजोए है।

संग्रहालय शब्द अंग्रेजी शब्द म्यूजियम का हिन्दी रूपान्तर है। म्यूजियम ग्रीक देवी म्यूज के नाम से बना है। ग्रीक गाथाओं में म्यूज ललितकलाओं की देवी के रूप में प्रतिष्ठित है।

स्थापना और विकास

स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रेरणा से इस संग्रहालय की स्थापना १९०७–८ में गंगा पार पुण्यभूमि पर हुई। संग्रहालय की स्थापना के पीछे उस समय मूल भावना यह थी कि यह विद्यार्थियों के अध्ययन में सहायक हो तथा साधारण जनता में भी विभिन्न विषयों के प्रति रुचि उत्पन्न हो। शिक्षाप्रसार के साधन के रूप में संग्रहालय की उपयोगिता प्रमाणित है। अनेकों ग्रन्थों के पढ़ने के बाद जो विद्या उपार्जित की जाती है, थोड़े ही समय में उसका सामान्य ज्ञान संग्रहालय बड़ी सुगमता से करा देता है। बच्चों के मनोरंजन तथा ज्ञानवर्धन के लिए तो संग्रहालय की उपयोगिता सर्वमान्य है। अत: १९४५ में जब संग्रहालय का पुनर्गठन किया गया तब ऐतिहासिक वस्तुओं के संग्रह पर विशेष बल दिया गया। मार्च १९५० में गुरुकुल की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर वेद मन्दिर में वर्तमान संग्रहालय का उद्घाटन किया गया। उद्घाटन करते हुए प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता स्वर्गीय डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस संग्रहालय के उज्ज्वल भविष्य की कामना की।

वर्ष १९७२ में संग्रहालय को विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्त्व विभाग का अंग बना दिया गया। इस विभाग के अध्यक्ष संग्रहालय के पदेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

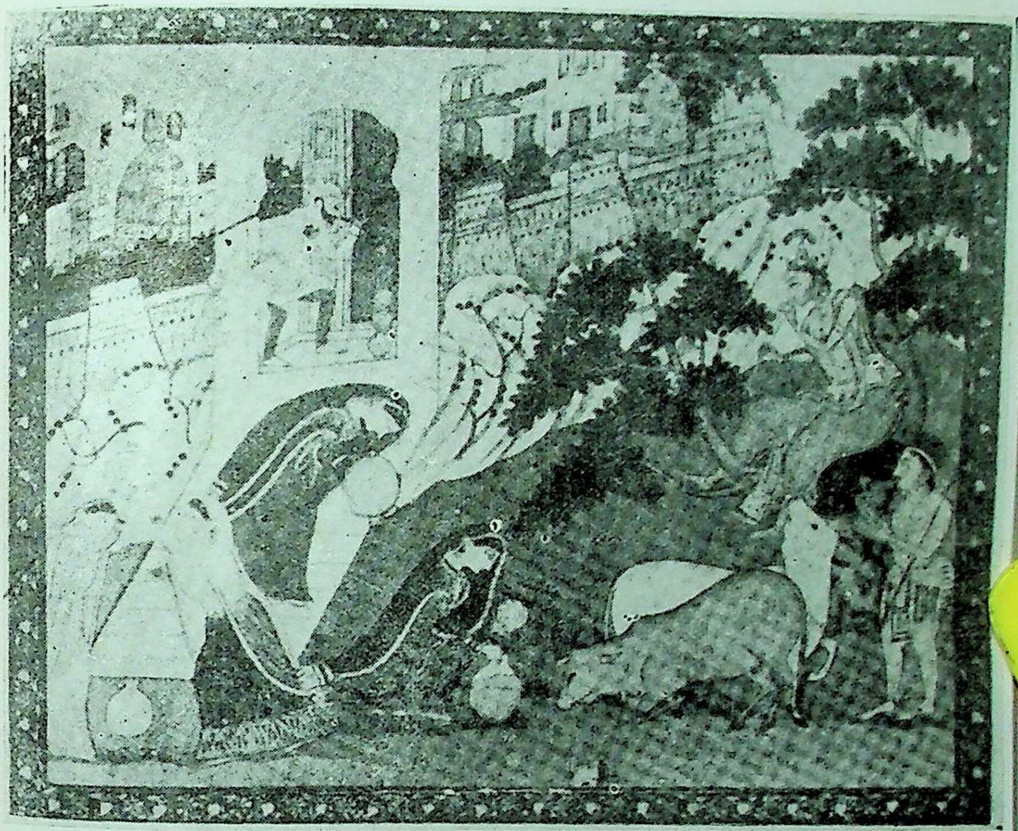

पनघट पर कन्हैया—पहाड़ी शैली का एक चित्र (१९वीं शती)
(गुरुकुल संग्रहालय कलादीर्घा से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्र मंथन का पाषाण-फलक

पुरातत्व संग्रहालय को यह फलक ग्राम झींवरहेड़ी (सहारनपुर) से प्राप्त हुआ। इस फलक में कच्छप पर मन्दराचल पर्वत की मथानी है जिसमें शेषनाग रज्जु के स्थान पर लपेटा गया है। फलक में दायीं ओर एक देवता और बायीं ओर आठ दैत्य खड़े हुए समुद्र का मन्थन कर रहे हैं। फलक में शेषनाग का मुँह देवताओं की ओर तथा पूँछ दैत्यों की ओर स्पष्ट है। यह फलक लंदन के भारतोत्सव के अन्तर्गत प्रदर्शनी में रखा गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांगड़ी ग्राम (विजनौर) से प्राप्त आसवपायी कुबेर (९-१०वीं शती ई०)
(गुरुकुल संग्रहालय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निदेशक नियुक्त किए गए। १९८१ में संग्रहालय अपने वर्तमान नवीन भवन में स्थानांतरित कर दिया गया।

अल्पकाल में गुरुकुल संग्रहालय ने जो उन्नति की है उसकी सराहना देश के अनेक विद्वानों और पुरातत्त्ववेत्ताओं ने मुक्तकण्ठ से की है। प्रतिवर्ष हजारों धर्मपरायण यात्री हरिद्वार पावन गंगा में स्नान करने आते हैं, उनके लिए यह संग्रहालय स्वस्थ मनोरंजन एवं ज्ञानवर्धन का महत्त्वपूर्ण साधन बन गया है। विद्यार्थियों तथा शिक्षितवर्ग की ज्ञानपिपासा की शान्ति के लिए इतिहास, पुरातत्त्व, अभिलेखशास्त्र, मुद्राशास्त्र आदि की विविध सामग्री संग्रहालय में विद्यमान है। लगभग पूरे वर्ष दर्शकों की चहल-पहल से संग्रहालय भवन व्याप्त रहता है। पंचपुरी-हरिद्वार की विभिन्न शिक्षण-संस्थाएँ अपने छात्रों को क्रियात्मक ज्ञान देने के लिए गुरुकुल संग्रहालय का उपयोग कर रही हैं। देहरादून, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, चण्डीगढ़, हरियाणा आदि की छात्र-मण्डलियाँ भी अपनी सरस्वती-यात्राओं में इसे देखने प्रतिवर्ष आया करती हैं।

वर्ष १९५२ में गुरुकुल के पास ही बहादराबाद में खुदाई कराने वाले पुरातत्व विभाग के उत्खनन शाखा के अधीक्षक डा० यज्ञदत्त शर्मा ने वहाँ से प्राप्त प्रागैतिहासिक अवशेषों को जब गुरुकुल के संग्रहालय में दिखाया तो उपस्थित लोगों की आस्था सहज रूप में अपनी प्राचीन संस्कृति में जागृत हो उठी। पुरातत्व, कला, संस्कृति तथा इतिहास आदि विषयों पर संग्रहालय द्वारा आयोजित व्याख्यानों में देश के जाने-माने विद्वान आमंत्रित किये जाते हैं।

इस संग्रहालय ने स्थानीय कला को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कनखल की अनेक इमारतों पर १९वीं शती के भित्तिचित्र हैं। इन चित्रों में कुछ ईस्ट इण्डिया शैली के हैं। चित्रों से यह स्पष्ट है कि इनका निर्माण बहुत कुशल हाथों से नहीं हुआ, फिर भी कहीं-कहीं उत्तम कला के उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। रामाभिषेक, झूले की नारियाँ, राजाओं की शोभायात्रा, समुद्रमन्थन तथा राधा-कृष्ण के चित्रों में प्राचीन कांगड़ा शैली के तत्व पाये जाते हैं। गुरुकुल संग्रहालय ने इन भित्तिचित्रों के कुछ फोटो भी तैयार करवाये हैं। इस प्रकार भावी संतति के लिए एक लुप्त होती हुई कला को सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया है।

प्रागैतिहासिक सामग्री

इसमें मोहनजोदेड़ो, हड़प्पा तथा कालीबंगा से प्राप्त सामग्री प्रदर्शित की गई है। प्रागैतिहासिक काल के ताँबे के हथियार, मंगलौर तहसील जिला सहारनपुर के निकट नसीर पुर नामक एक गाँव से डा० देशपाण्डे को उत्खनन द्वारा प्राप्त हुए थे। इनमें काँटेदार बर्छी, हारपून्स, कुल्हाड़ी आदि नौ हथियार हैं। इन हथियारों का प्रयोग तत्कालीन मानव अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करता था। इन्हें गंगा घाटी के हथियार के नाम से भी पुकारा जाता है। ये हथियार सम्भवतः १८वीं शती ई०पू० के हैं।

सिन्धु घाटी सभ्यता से सम्बन्धित सामग्री में मिट्टी की मूर्तियाँ, मृत्तिका पात्र, खिलौने आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मिट्टी की मूर्ति में मातृदेवी की मूर्ति अपना विशेष स्थान रखती है। यद्यपि कला की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण नहीं है, इसमें शरीरसौष्ठव नहीं है। गले में हार है, आँख और स्तन अलग से मिट्टी के टुकड़े चिपकाकर बनाये गए हैं। धार्मिक दृष्टि से इनका महत्व अवश्य ही रहा होगा क्योंकि ये मूर्तियाँ उपासना की दृष्टि से बनाई गई होंगी। खिलौनों में कुत्ते, हाथी आदि की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। कालीबंगा राजस्थान से प्राप्त सामग्री में मृत्तिका पात्रों के टुकड़े, खिलौने तथा हाथीदांत से बनी हुई वस्तुएँ हैं। मृत्तिका पात्रों के टुकड़ों पर सिन्धु सभ्यता की भाँति काले रंग से रेखाँकन किया गया है। ये भूरे रंग के हैं। खिलौनों की आकृति भी सिन्धु सभ्यता से साम्य रखती हैं।

तक्षण कृतियाँ

इस संग्रहालय की तक्षणदीर्घा में करीब ३५० प्रस्तर तथा धातु प्रतिमाएँ संग्रहीत हैं। इनमें प्रमुख रूप से कुषाणकाल से लेकर मध्यकाल तक की हिन्दू, बौद्ध तथा जैन मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ अधिकतर हरिद्वार के आसपास के क्षेत्रों से संग्रहीत की गई हैं। कुषाणकालीन मूर्तियाँ लाल चित्तीदार पत्थर पर उत्कीर्ण की गई हैं। ये मूर्तियाँ सौन्दर्य-प्रदर्शन के अतिरिक्त भावभंगिमा तथा शिल्पकारी की दृष्टि से उत्कृष्ट कला की परिचायक हैं। इन मूर्तियों में शीर्षहीन बुद्ध, गजलक्ष्मी, शेषशायी विष्णु, स्तम्भ के सहारे स्त्री तथा एकमुख शिवलिंग आदि मूर्तियाँ विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

गुप्तकालीन मूर्तियों में बुद्ध का सिर, शेषशायी विष्णु तथा महिषासुरमर्दिनी की मूर्तियाँ उच्चस्तरीय हैं। ये मूर्तियाँ अधिकतर हरिद्वार के आसपास के क्षेत्रों से संग्रहीत की गई हैं।

हिन्दू धर्म से सम्बन्धित मूर्तियों में विष्णु, त्रिमूर्ति, हरिहर, कुबेर, सिंहवाहिनी दुर्गा, शिव-पार्वती तथा समुद्रमंथन आदि उल्लेखनीय हैं। मध्यकालीन बुद्ध की मूर्तियों में पद्मपाणि बुद्ध की प्रतिमा और बुद्ध के पार्श्व में चावरधारी परिचारियकाओं तथा उड़ते हुए गंधर्वों को दर्शाया गया है। जैन मूर्तियों में चौबीसवें तीर्थंकर महावीर जी की शीर्षहीन मूर्ति, जैन मन्दिर का शिखर उल्लेखनीय है। इस संग्रहालय का समुद्र मंथन का पाषाणफलक लन्दन में हुए "भारत उत्सव" वर्ष १९८२ में प्रदर्शित किया गया। गुरुकुल के लिये यह बड़े गौरव की बात है।

पाषाणप्रतिमाओं के अतिरिक्त करीब ११५ धातु प्रतिमाएँ भी संग्रहालय में संग्रहीत हैं। इनमें विविध धातुओं से युक्त विष्णु, लक्ष्मी और दुर्गा आदि की मूर्तियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्लेखनीय हैं। ये सभी मूर्तियाँ अधिकतर अष्टधातु से निर्मित हैं। इसी प्रसंग में उल्लेखनीय है कि दिल्ली के मेसर्स शान्ति विजय कम्पनी ने ९२ अष्टधातु की मूर्तियाँ उपहारस्वरूप प्रदान कीं। स्वर्गीय डा० बी०एन० शर्मा के सहयोग से इन मूर्तियों को प्राप्त करने का श्रेय लेखक को है।

मृण्मूर्तियाँ

भारतीय इतिहास के निर्माण में मृण्मूर्तियों का विशेष योगदान रहा हैं। इस संग्रहालय में ३९३ मृण्मूर्तियाँ संग्रहीत हैं, जो मौर्यकाल से लेकर गुप्तकाल तक की हैं। इनका संग्रह प्रमुख रूप से मथुरा, कौशाम्बी तथा समीपवर्ती स्थानों से किया गया है।

मथुरा से प्राप्त मौर्यकालीन मृण्मूर्तियाँ काली हैं। भूरी मिट्टी से निर्मित हैं। मौर्यकालीन मृण्मूर्तियों में मातृदेवी की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। गले में पड़ी माला तथा शरीर के अवयव देखकर स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये अलग से बनाकर चिपकाये गये हैं। शुंगकालीन मूर्तियाँ उत्कृष्ट कला की द्योतक हैं। अधिकाँश रूप में सभी मृण्मूर्तियाँ साँचे से ढालकर बनाई गई हैं। ये मूर्तियाँ सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति पर प्रभाव डालने के साथ-साथ कला के विकास और उत्कर्ष की भी द्योतक हैं।

कुषाणकालीन मृण्मूर्तियाँ सौन्दर्य की दृष्टि से शुंगकालीन मृण्मूर्तियों से हीन हैं। कुषाणकालीन मृण्मूर्तियों में पंखदार पगड़ी धारण किए हुए पुरुष मस्तक, दोनों हाथ जोड़े पूजा भाव में मिट्टी से बनी पुरुष की मूर्ति में केश घुँघराले ओर गले में माला है। त्रिशूल धारण किए हुए देवी की मूर्ति आदि दर्शनीय हैं।

गुप्तकालीन मृण्मूर्तियों का उत्तम संग्रह इस संग्रहालय में है। हाथ से निर्मित मृण्मूर्तियाँ केश-विन्यास, भावभंगिमा, वस्त्राभूषण आदि की दृष्टि से कला की सर्वोत्तम उपलब्धियाँ हैं। ये तत्कालीन समाज एवं धर्म के विभिन्न पहलुओं पर भी प्रकाश डालती हैं। इन मूर्तियों में मेखला धारण किए हुए तथा दोनों हाथ कमर पर रखे हुए स्त्री-प्रतिमा का धड़, कलापूर्ण ढंग से केश-विन्यास किए हुए तथा कानों में कुण्डल धारण किए हुए स्त्रीप्रतिमा का सिर तथा शिव-पार्वती की खण्डित मूर्तियाँ उल्लेनीय हैं।

मृतिका पात्र

इस संग्रहालय में विभिन्न प्रकार के मृतिका पात्र भी संहीत हैं। प्राचीन स्थानों की खुदाई में विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तन और ठीकरे प्राप्त हुए हैं। इनमें कटोरा, कुल्हड़, कुण्डे, तश्तरी, बट्टे और भिक्षापात्र आदि मुख्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृतिका पात्र विभिन्न स्थानों, जैसे मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, कालीबंगा, कुन्दनपुर (सहारनपुर), मंडावर (बिजनौर), नसीरपुर (सहारनपुर), राखीगढ़ (हिसार), मित्ताथल (भिवानी) आदि स्थानों से संग्रहीत किए गए हैं।

मुद्रा कक्ष

प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण में सिक्कों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इनसे तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दशा का अच्छा परिचय होता है। प्राचीन भारतीय इतिहास में अनेक ऐसे स्थल हैं जिनकी जानकारी केवल सिक्कों के माध्यम से ही हुई है। राजनीतिक परिवर्तनों के साथ ही ये सिक्के विभिन्न नामों से पुकारे गए हैं, जैसे निष्क, शतमान, दीनार, मोहर एवम् रुपया आदि।

आरम्भिक आहत सिक्कों से लेकर अर्वाचीन काल तक के सिक्के प्रदर्शित किए गए हैं। सिक्कों में उत्तरमौर्यकाल में ढाले गए सिक्के, इण्डोग्रीक राजाओं के सिक्के, पश्चिमी क्षत्रपों के सिक्के, कुषाण राजाओं के सिक्के, राष्ट्रकूट एवम् यौधेयों के सिक्के, गुप्तवंशी राजाओं के सिक्के, कन्नौज के गुर्जर राजाओं के सिक्के, मध्यकालीन मुगलों के सिक्के, ब्रिटिशकालीन भारत के सिक्के तथा स्वतन्त्रता से पूर्व विभिन्न देशी रियासतों के सिक्के अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं।

पाण्डुलिपि कक्ष

संग्रहालय में हस्तलिखित ग्रन्थों का भी संग्रह है। इनमें सभी धर्मों को प्रतिपादित करने वाले हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह का प्रयास किया गया है।

हिन्दू धर्म के पवित्र ग्रन्थों में बाल्मीकिकृत रामायण, महाभारत के कई प्रकार के संस्करण, काश्मीरी (शारदा) लिपि में लिखित प्रार्थनापुस्तक, बंगलाभाषा में लिखित देवी-स्त्रोत, १६वीं शती के लगभग तिब्बती भाषा में लिखित तन्त्र-ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। पाण्डुलिपियों में गुरुग्रन्थसाहेब और कुरानशरीफ का महत्वपूर्ण स्थान है।

अस्त्र-शस्त्र कक्ष

प्रागैतिहासिक काल में जब मानव को अपने अस्तित्व का बोध हुआ, उसी समय से उसने अपने जीवन की रक्षा के लिए अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग प्रारम्भ किया। पाषाण काल में मानव के विविध हथियार और अन्य उपकरण पाषाण निर्मित थे। जैसे-जैसे मानव ने विकास किया, उसके अस्त्र-शस्त्र उन्नतिशील होते गए। ताम्रकाल में ताँबे के और जब लोहे का ज्ञान हुआ तो अस्त्र-शस्त्र लोहे के बनने लगे।

इस संग्रहालय में अस्त्र-शस्त्र का भी एक पृथक कक्ष है। इनमें धनुषबाण, तलवार, ढाल तथा कवच प्रमुख हैं। युद्ध में बजने वाली तुरही उल्लेखनीय है। इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिरिक्त द्वितीय महायुद्ध के समय की कुछ बन्दूकें, मशीनगन आदि भी प्रदर्शित की गई हैं।

श्रद्धानन्द बलिदान कक्ष

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संस्थापक स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी की स्मृति में यह कक्ष स्थापित किया गया है। यह कक्ष आर्यसमाज की एक बहुत बड़ी धरोहर है। इस प्रदर्शनी में पहुँचकर दर्शक आत्मविभोर हो उठते हैं। इसमें स्वामी जी के आरम्भिक जीवन काल से अन्तिम समय तक की झाँकी प्रस्तुत की गई है।

विविध सामग्री कक्ष

इस कक्ष में प्रदर्शित वस्तुओं में लाख कला के नमूने, नाथद्वारा तथा कांगड़ा शैली के चित्र, पं० नेहरू को उपहार में प्राप्त कुछ विदेशी खिलौने, उत्तराखण्ड के प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अन्त में छटी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विभाग की उपलब्धि का उल्लेख महत्वपूर्ण है। पुरातत्व संग्रहालय के लिए पचास हजार रु० का विशेष अनुदान प्राप्त हुआ। संग्रहालय के कुशल संचालन के लिए क्यूरेटर और संग्रहालय सहायक के पद भी प्राप्त हुए। सहायक क्यूरेटर का पद विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने बहुत पहले ही सृजित कर दिया था। संग्रहालय को वर्तमान रूप प्रदान करने में संग्रहालय के कर्मचारियों का योगदान प्रशंसनीय रहा है।

संग्रहालय के विकास में विश्वविद्यालय के कुलपति, उपकुलपति, कुलसचिव और वित्तअधिकारी ने समय-समय पर जो रुचि ली, वह अत्यन्त ही उपयोगी और प्रेरणादायक रही है। वर्तमान कुलपति श्री आर० सी० शर्मा संग्रहालय के विकास के लिए व्यक्तिगत रूप से प्रयत्नशील हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि उनके कार्यकाल में यह संग्रहालय राष्ट्रीय स्तर प्राप्त करने में शीघ्र ही समर्थ होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय मृण-मूर्तियाँ एवं गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का मृणमूर्ति-संग्रह

डा० सूर्यकान्त श्रीवास्तव
संग्रहालयाध्यक्ष

कला की अनुभूति साधारण से साधारण व्यक्ति को होती है। अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है माध्यम। अतः आसानी से उपलब्ध मिट्टी को सर्वसाधारण ने माध्यम के रूप में अपनाया। सुविधापूर्वक सुलभ मिट्टी के निर्मित खिलौनों (मृण मूर्तियाँ) को भारतीय कला में विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ। मृण-मूर्तियों का निर्माण मात्र अभिव्यक्ति ही नहीं वरन् धार्मिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भी किया गया। यही कारण है कि मृण-मूर्तियाँ जनसाधारण में अधिक लोकप्रिय कला है।

भारतीय उपमहाद्वीप में मृणमूर्तियाँ निर्माण की प्राचीनता का साक्ष्य बलूचिस्तान के मेहरगढ़ नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। हाल में हुए उत्खनन में मेहरगढ़ के नव-पाषाण काल के स्तर से मानवीय एवं पशु मृणमूर्तियाँ प्राप्त हुयी हैं। कालक्रम के आधार पर इनकी प्राचीनता सातवीं सहस्राब्दी के पूर्वार्ध में मानी गयी है। समय के साथ में संस्कृतियों के परिवर्तनचक्र में कलाकार हर बार जन्मा और समाप्त हुआ लेकिन मृण-मूर्ति निर्माण कला किसी न किसी रूप में चलती रही। संस्कृतियों के परिवर्तन के साथ ही आधार एवं शैली में परिवर्तन हुआ जो मृण-मूर्तियों पर दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणतया सिन्धु सभ्यताकालीन मातृदेवी की मृण-मूर्ति एवं पशु वृषभ मूर्ति, मौर्य एवं कुषाणकालीन मातृ-देवी एवं पशु मूर्तियाँ शैली में भिन्नता प्रस्तुत करती हैं। यही कारण है मृणमूर्तियाँ के निर्माणशैली विभिन्न संस्कृतियों के साथ जानी जाती हैं।

नवपाषाणकाल से सिन्धुसभ्यताकाल के मध्य निर्मित मृण-मूर्तियाँ विभिन्न सांस्कृतिक शैलियों में विभाजित की गयी हैं। यथा झोब से प्राप्त मातृदेवी की मृणमूर्ति, कुल्ली से प्राप्त मातृदेवी एवं चतुर्थ सहस्राब्दी के अन्तिम चरण या तृतीय सहस्राब्दी के प्रारम्भिक चरण में बनाई गयी मृण-मूर्तियों का उल्लेख विशेषरूप से किया जा सकता है। मृण-मूर्तियों के निर्माण की परम्परा का क्रम निवासा एवं ईनाम गांव से प्राप्त मृणमूर्तियों के रूप में चलता रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर भारत में सिन्धु सभ्यता के पश्चात काल में लालकिला जिला बुलन्दशहर से प्राप्त गेरुये रंग वाले मृद भाण्ड वाली संस्कृति से प्राप्त मानवीय मृण-मूर्ति है। तदुपरान्त चित्रित भूरे रंग वाले मृद भाण्ड वाली संस्कृति (Painted Grey Ware Culture) से प्राप्त जखेड़ा की मृण-मूर्तियों का उल्लेख आवश्यक है। उत्तरी कृष्णमार्जित मृद भाण्ड (Northern Black Polished Ware Culture) वाली संस्कृति के अयोध्या उत्खनन से प्राप्त हाथ से बनी नारी मूर्ति है जिस पर उत्तरी कृष्णमार्जित चमक की गयी है, अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

उत्तर प्रदेश एवं बिहार के अनेक स्थानों से प्राप्त, हाथ से बनी मूर्तियाँ इस काल की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इन मृणमूर्तियों का काल निश्चित नहीं है अत: इन्हें Ageless Archaeo Terracotta कहा जाता है। इनका निर्माण अनवरत ऐतिहासिक काल तक चलता रहा।

ऐतिहासिक काल का आरम्भ तृतीय शताब्दी ईसापूर्व ब्राह्मीलिपि के साथ माना गया है। मौर्यकाल में निर्मित मृणमूर्तियाँ मानवीय तथा पशु दोनों ही बनाई गई। मूर्ति को अलंकृत करना इस युग की विशेषता है। अलंकरण में छोटे-छोटे गोल तथा हल्के बिंदुओं से सज्जित मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। मानवीय मूर्तियों में नारी मृण - मूर्तियाँ बहुतायत से बनायी गयी। सम्भवत: धार्मिक अनुष्ठान के लिए मातृदेवी की मूर्तियों का निर्माण किया गया। इनके निर्माण के मुख्यस्थल मथुरा, कौशाम्बी, पाटिलीपुत्र एवं गंगाघाटी के अन्य स्थान हैं। एक काल एवं शैली में क्षेत्रीय विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणस्वरूप पाटिलीपुत्र में निर्मित मृणमूर्तियाँ आकर्षक, सुन्दर एवं देखने में कमनीय हैं। हाथ से बनी मूर्तियों में अलंकरण अधिकतर अलग से बनाकर लगाए गए हैं। लेकिन इनके चेहरे साँचे द्वारा निर्मित हैं।

शुंगकाल में मृण-मूर्ति कला को नवीन शैली प्राप्त हुई। इस शैली का विकास सम्भवत: मृण-मूर्तियों की लोकप्रियता का जनसामान्य में अपनाया जाना था। अभी तक मृणमूर्तियों के चेहरे ही सांचे में बनाये जाते थे। नयी तकनीक में एक ही साँचे से सम्पूर्ण प्रतिमा को बनाया जाता था। इससे आकृति के शरीरसौष्ठव प्रदर्शन में चपटापन अवश्य आया लेकिन एक ही प्रकार की कई मूर्तियाँ कम समय में जनसाधारण के लिए बनाना सुलभ हो गया। अलंकरण पूर्ववत किया जाता रहा, अलंकरण के लिए ठप्पे का उपयोग एवं पगड़ी की वेशभूषा में विभिन्नता भी दिखायी देती है। लाल मिट्टी एवं भूरे रंग दोनों ही प्रकार की मृण-मूर्तियाँ बनायी गयीं। शुंगकाल लगभग १०० वर्ष तक ही रहा लेकिन कला की दृष्टि से यह अत्याधिक समृद्ध कहा जा सकता है।

मृण फलक भी साँचे से इस युग में बनाए गए। भारतीय मृणमूर्ति कला में प्रथम बार दैनिक जीवन की विषयवस्तु, प्रतिमाविज्ञानशास्त्र पर आधारित एवं प्राचीन साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में वर्णित विषयों पर मृणफलक बनाए गए। इनके अतिरिक्त मिथुन युगल एवं प्रेमप्रसंगों को भी स्थान प्राप्त हुआ। प्रेम-प्रसंगों में विक्रम एवं उर्वशी, उदयन एवं वासवदत्ता तथा यक्ष एवं यक्षी का चित्राँकन सुन्दर ढंग से किया गया है। शुंगकालीन मृणमूर्तिकला के निर्माण के मुख्य स्थानों में मथुरा, पटना, कौशाम्बी, बक्सर, तामलुक तथा चन्द्रकेतुगढ़ मुख्य हैं।

ईसा के प्रारम्भिक काल में शक-कुषाण राजाओं के समय में मृणमूर्तिकला का ह्रास हुआ। कुषाणकाल में मृणमूर्तियों के निर्माण में खोखले शरीर की प्रतिमाएँ बनाई गईं। सिर का भाग अलग से बनाकर मुख्य शरीर से बेलनाकार मिट्टी के बने भाग से जोड़ दिया जाता था। मूर्तियाँ बड़ी भारी आकार की बनाई गयीं। मौर्य एवं शुंगकालीन अलंकरण का स्थान अलग से चिपकाई मिट्टी के हार तथा कमरबन्द ने ले लिया जिस पर ठप्पे या लकड़ी से गहरी लाइने बनाकर सजाया जाता था। नग्नता का भी चित्रण किया गया। विभिन्न प्रकार की नारीमूर्तियाँ बनाई गयीं जिसमें 'हारंती' तथा माँ-बच्चे की मृणमूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। यक्षपरम्परा से प्रभावित शैली में लक्ष्मी, कुबेर, शिव आदि की मूर्तियाँ बनाई गयीं। प्रस्तरप्रतिमाओं का निर्माण इसी काल में प्रारम्भ हुआ जिसका प्रभाव मृणमूर्तिकला पर स्वाभाविक रूप से लक्षित है।

दक्षिणशैली में इस काल में मृणप्रतिमाएँ कुछ छोटी बनाई गयीं। काओलिन का प्रयोग भी मृणमूर्तियों के निर्माण में किया गया।

गुप्तकाल में मृणमूर्तिकला अन्य कलाओं की तुलना में चरमोत्कर्ष पर थी। मौर्य-शुंगकालीन अलंकरण नयी शैली में विकसित हुआ। अर्धमीलित नेत्र, तीखे नक्श का चित्रण, ऊपरी सौन्दर्यबोध के प्रदर्शन ही नहीं बल्कि आन्तरिक मानसिक अनुभूतियों का प्रस्तुतीकरण अपने आप एक विशिष्टता प्रकट करता है। केशसज्जा में विभिन्नता इस काल की प्रमुख देन में से एक है, विशेषरूप से त्रिभागीय केशसज्जा गुप्तकाल की विशेषता है। देवी-देवता, मिथुन युगल, दैनिक जीवन के उपयोग की विशेषता एवं सामाजिक विषयों को भी मृणफलक का विषय चुना गया। विभिन्न धायमूर्तियों का प्रस्तुतीकरण इसका विशेष उल्लेखनीय उदाहरण है।

गुप्तकाल में प्राय: सभी कलाओं को मान मिला। प्रस्तर पर मूर्तियों के निर्माण के साथ-साथ मृणमूर्तियों का निर्माण स्पष्टतया कलाविधाओं में मृणमूर्तियों के विशिष्ट स्थान एवं लोकप्रियता के द्योतक हैं। अहिच्छत्रा से मानवीय लम्बाई की गंगा-यमुना की मूर्तियाँ दुर्लभ कलाकृतियाँ हैं।

सम्पूर्ण भारतवर्ष में क्षेत्रीय विभिन्नता के साथ-साथ गुप्तशैली के विभिन्न केन्द्र विकसित हुए, यथा—हरकन एवं अखनूर काश्मीर में, रंगमहल एवं नगरी राजस्थान में,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवाया मध्यप्रदेश में, सेहत-मेहत कसिया राजघाट, अहिच्छत्रा-कौशाम्बी-मथुरा उत्तर प्रदेश में, देवानमोरी गुजरात में, वसराह एवं पटना बिहार में एवं बाणगढ़ पश्चिम बंगाल में।

मृण-मूर्तियाँ एवं मृणफलक के साथ ही गुप्त की ईंटों के सज्जित मन्दिर जिनमें विभिन्न प्रकार की चित्रकारी, मिथुन युगल एवं पौराणिक साहित्य पर आधारित दृश्यों को दर्शाने वाले मृण-फलक लगाए गए । अहिच्छत्रा, भीतरगांव, सिरपुर एवं अपहसद्र विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय हैं।

मृण-फलक एवं ईंटों द्वारा मन्दिर बनाए जाने की परम्परा पूर्वी भारत में पाल एवं सेन राजाओं के काल तक चलती रही। बुद्ध एवं बौधिसत्व से सम्बन्धित भिन्न कथाओं के दृश्य दिखाये गये हैं। नालन्दा, गया, विक्रमशिला एवं पहाड़पुर (बंगलादेश) का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। प्राप्त साक्ष्य के अनुसार यह आठवीं-दशवीं शताब्दी तक प्रचलित रही।

उत्तर भारत में मुस्लिम शासकों के आगमन के कारण इस कला में उल्लेखित ह्रास हुआ। १७वीं - १९वीं शताब्दी में पुनः बंगाल में इस कला का प्रारम्भ एवं विकास हुआ।

मध्यकाल से वर्तमान तक मृण-मूर्तियाँ जनसामान्य में लोकप्रिय रहीं। विशेषरूप से धार्मिक आवश्यकता एवं बच्चों के खिलौनों के रूप में।

समय एवं क्षेत्रीय विभिन्नता का प्रभाव निरन्तर बना रहा फलतः मध्यकाल, सुलतान काल, मुगलकाल एवं कम्पनी सरकार का काल स्पष्टतया निर्धारित किया ज्ञा सकता है।

गुरुकुल कांगड़ी संग्रहालय के विभिन्न संग्रहों में मृण-मूर्तियों का संग्रह विशेषरूप से उल्लेखनीय है। विभिन्न स्थानों से प्राप्त मृण-मूर्तियों की संख्या लगभग ५०० है। स्थानिक महत्ता के आधार पर यह संकलन मथुरा-कौशाम्वी एवं विदिशा से प्राप्त मृण-नूर्तियों का है। अगनई खेड़ा, शाहबाद, आवला बरेली, एवं इमलीखेड़ा व सरसावा सहारनपुर से भी कुछ मूर्तियों को संगृहीत किया गया है।

अधिकतर मृणमूर्तियाँ क्रय की गयी हैं। विदिशा से प्राप्त मृणमूर्तियाँ प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी के सौजन्य से उपलब्ध हुयी हैं। स्तरीय कालक्रम के अभाव में शैली के आधार पर ही इनका विभाजन किया गया है।

संग्रहालय में मौर्यकालीन भूरे रंग की लगभग २५ मानवीय एवं कुछ पशु मूर्तियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। कुछ मूर्तियाँ प्रागमौर्यकालीन कही जा सकती हैं। अधिकतर मूर्तियों के निर्माण में साँचे का उपयोग मुखभाग बनाने में किया गया है।

—मात्र हाथ से बनी तीन मूर्तियाँ हैं। मुखभाग में मिट्टी में ही उठाकर नाक एवं दबे हिस्से में आँख बनायी गयी है। कानों में भारी कुण्डल एवं गले में हार अलग से चिपकाया गया है। छोटे-छोटे बिन्दुओं से मूर्ति को सजाया गया है। मृणमूर्ति का कमर से नीचे का भाग टूटा हुआ है। भारी उभरा वक्षःस्थल समय का प्रभाव दर्शाता है। द्वितीय मृणमूर्ति का ऊपर का भाग टूटा हुआ है, कमर से नीचे के भाग में फैला हुआ वस्त्र एवं उस पर की गयी अलग से चिपकाई सज्जित पट्टियों से राज-शाही पोशाक का आभास दिलाती है।

इस काल की द्वितीय वर्ग की मृणमूर्तियों में मुखभाग साँचे द्वारा बनाया गया है। मुखभाग को हाथ से बने शरीर से चिपकाया जाता है। अलग से मिट्टी की पट्टियों से सजाया गया है। केशविन्यास के ठप्पे द्वारा बने फूल, भारी कुण्डल, गले का हार, बाजूबन्द एवं कमर में मेखला बनाई गयी है। इनको छोटे-छोटे बिन्दुओं या गोल अथवा ठप्पे से सज्जित किया गया है।

पशुआकृति में हाथी, घोड़ा एवं कुत्ता है। भूरे रंग की पशु मृणमूर्तियों में विशेषतः हाथी छोटें बिन्दुओं एवं ठप्पे से सजाया गया है। अश्व एवं कुत्ता आँखों की दर्शाने की कला पर ही इस वर्ग का माना गया है।

—शुंगकालीन परम्परा में साँचे से बने मृणफलक हैं जिनमें मौर्यकालीन फूलों की सज्जा केशविन्यास के साथ एवं भारी अलंकरण दर्शाये गये हैं। विविध युगलमिथुन संग्रहालय वीथिका में प्रदर्शित हैं।

—विशेषरूप से उल्लेखनीय है एक गाड़ी का भाग जिसमें दोनों ओर दो-दो पुरुष बैठे हैं जिनके मध्य में घट एवं खाने योग्य वस्तुयें रखी हैं। यह मृणमूर्ति साँचे से बनी है तथा तत्कालीन आवागमन व्यवस्था को दर्शाती है।

कुषाणकालीन मृण्मूर्तियों में अधिकतर सिर के भाग हैं जिनमें बेलनाकार मिट्टी का शंकु लगा है जिससे उन्हें मुख्य खोखले शरीर से लगाया जाता था। खोखले, अनगढ़, भारी एवं कुछ बड़े आकार की मृणमूर्तियाँ इस काल की देन हैं। अलग से चिपकाई हुयी पट्टियों द्वारा हार, मेखला एवं अलंकरण बनाये गए जिन पर ठप्पे से फूल के चित्र बने हैं। नग्नता को भी दर्शाया गया है। सज्जा के लिये ठप्पे का उपयोग इसी काल की देन है। संग्रहालय के संकलन में कुषाणकालीन मूर्तियों में पैरों पर बैठी हुयी लक्ष्मी की मूर्ति है। दोनों हाथ में पुष्प हैं। इस मुद्रा में पत्थर पर भी मूर्ति उत्कीर्ण की गयी हैं। कुबेर की प्रतिमा भी यक्षपरम्परा की उत्कृष्ट कृति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य विशिष्ट कृति है 'हारंती' की मूर्ति जो सम्भवतः धार्मिक एवं रोगनिदान की देवी के रूप में पूजी जाती थी। इसके कई रूप मिलते हैं। संग्रहालय के संग्रह में जो मूर्ति है वह सीधे बैठी है, बायीं ओर गोद में बच्चा है एवं दायें हाथ में प्याला।

गुप्तकालीन मृणमूर्तियों का अच्छा संकलन संग्रहालय में है जिनमें त्रिभागीय विभिन्न केशसज्जा दर्शनीय है। कुछ मूर्तियाँ त्रिभागीय मुद्रा में साँचे से बनाई गयी हैं।

स्त्री की मृणमूर्ति जो एक वृत्त में बनी है, वृत्त का चित्रित भाग ईंट का खण्ड है। सुन्दर केशपाश, नुकीली नाक, आधी खुली आँखें, उभरी ढोड़ी, एक सुन्दर मुख को प्रस्तुत करती है। वृत्त के आस-पास का भाग भी फूल-पत्तियों की चित्रकारी से सज्जित है। लाल रंग की यह मृणमूर्ति कौशाम्बी के सर्वेक्षण से प्राप्त हुयी है। प्रस्तुतीकरण अन्य क्षेत्रीय स्थानों के समरूप है।

द्वितीय मूर्ति युगलमिथुन की है। सिर का भाग टूटा हुआ है। साँचे से निर्मित इस फलक में पुरुष बैठा हुआ है, उसके बायीं ओर नारी जंघा से सटी बैठी है। शारीरिक मुद्रा से एकाकार होने की आन्तरिक इच्छाभाव एवं लोकलज्जा की झिझक स्वतः इसमें प्रतीत होती है। संग्रहालय की यह एक दुर्लभ कृति है।

मध्यकाल की मूर्तियों में गुप्तकला का प्रभाव लक्षित होता है लेकिन समाप्त-प्रायः स्थिति में। शरीरसौष्ठव एवं अलंकरण में काफी परिवर्तन दिखायी देता है।

—बन्दर की विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ, तीन टांगों पर बैठी मानवीय मूर्ति एवं बैल जोड़ी तथा पशु इस काल में बनाये गये।

—कुछ मृणमूर्तियों के चेहरों पर पश्चिमी प्रभाव एवं वेशभूषा पर कम्पनीकाल का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

—भारतीय मृणमूर्तिकला के लगभग सभी क्षेत्रों एवं कालों की मूर्तियों का संकलन संग्रहालय में है। मृणमूर्तियों के उचित प्रदर्शन हेतु संग्रहालय के केन्द्रीय कक्ष में मृणमूर्तियाँ प्रदर्श की गयी हैं। आवश्यकता इनके विषद् अध्ययन की है। अगर उचित सुविधा मिले तो मृणमूर्ति पर अध्ययन अवश्य किया जाना चाहिए।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल संग्रहालय में सुरक्षित पाषाणप्रतिमाएँ

—सुखबीरसिंह
सहायक क्यूरेटर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय संग्रहालय

भौगोलिक दृष्टि से यह संग्रहालय सहारनपुर जनपद के ऐसे स्थान में स्थित है जिसे हरिद्वार की पवित्र भूमि कहा जाता है। यों तो उत्तर प्रदेश में अनेक संग्रहालय हैं और उनमें से अनेक इस संग्रहालय से अधिक सम्पन्न और आकर्षक भी हैं, किन्तु इस संग्रहालय की एक अपनी विशेषता है। वह यह कि यह उत्तराखण्ड की प्राचीन साँस्कृतिक थाती का रक्षक होने के कारण आज एक महत्वपूर्ण संग्रहालय बना हुआ है। सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से यह क्षेत्र इतना सम्पन्न है जहाँ पुरातन युग से ही गंगा की धारा प्रवाहित हो रही है। यहाँ गंगा की घाटी में एक भव्य प्राचीन संस्कृति पनप रही थी, जिसके चिन्ह इस संग्रहालय में संग्रहीत पुरातात्विक सामग्री से स्पष्ट होते हैं।

गुरुकुल के उपवन का यह ज्ञानतरु संग्रहालय पूर्णरूपेण पुष्पित है। यह अन्य पुरातात्विक सामग्री की भाँति पाषाणप्रतिभाओं के सन्दर्भ में भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस कला का भी विशेष महत्व इस बात में है कि वह मनोमय जगत और भूतमय जगत के मध्य एक सेतु है। इस पुल पर चढ़कर हम जान सकते हैं कि मनुष्य ने राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण में एक ओर कितना सोचा था और दूसरी ओर कितना निर्माण किया था। कला किसी विचारकल्पना को दृश्यरूप देती है। कला का यही रहस्य है कि उसमें लोक की सांस्कृतिक परम्परा की व्याख्या होती है।

इस संग्रहालय में सुरक्षित पाषाण प्रतिमायें भी अन्य पुरातात्विक सामग्री की भाँति ही क्रय द्वारा, उपहारस्वरूप और पुरातात्विक सर्वेक्षण द्वारा संग्रहीत की गयी हैं। आजकल इस वीथिका में ३४४ प्रतिमायें संग्रहीत हैं। इन प्रतिमाओं में प्रथम शती ई० से आधुनिक काल तक की पाषाणप्रतिमायें हैं, लेकिन इनमें प्रमुखरूप से प्रथम शती ई० (कुषाणकाल) से १०वीं शती ई० तक की कलाकृतियों का बड़ा ही अनूठा संग्रह विद्यमान है। ये प्रतिमायें हिन्दू, बौद्ध तथा जैन प्रतिमायें हैं। इनका संग्रह मथुरा, शाहबाद (जिला हरदोई), कन्नौज, कांगड़ी ग्राम, आम्रस्रोत, लालढांग (बिजनौर), पाण्डुस्रोत (गढ़वाल), झीवरहेड़ी, सुलतानपुर (सहारनपुर) तथा हरिद्वार के समीपवर्ती क्षेत्रों से किया गया है।

इन स्थानों से संग्रहीत प्रतिमाओं में मथुरा कला की ३८ प्रतिमायें क्रय की गयी हैं। ये उन दुकानदारों से क्रय की गयी हैं जो प्राचीन कलाकृतियों का संग्रह रखते हैं। ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिमायें कुषाणकाल से १०वीं शती ई० तक की हैं। इनमें अधिकतर कुषाणकालीन हैं। लाल चित्तिदार पत्थर पर उत्कीर्ण की गयी ये प्रतिमायें सौन्दर्यप्रदर्शन के अतिरिक्त भावभंगिमा तथा शिल्पकारिता की दृष्टि से उत्कृष्ट कला की परिचायक हैं। इन प्रतिमाओं में बुद्ध प्रतिमा (सं० १३२३), अभयमुद्रा में बुद्ध (१२८९), बुद्ध का महापरिनिर्वाण (१७७), एकमुखी शिवलिंग (१२८३), पद्महस्ता लक्ष्मी (१२८७), सप्तमातृकायें (३७२१), महिषासुरमर्दिनी (१२९१), कुबेर (४११) और शुक क्रीड़ारत नारी (१३१७) आदि प्रतिमायें विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

इस संग्रहालय में उपरोक्त प्रतिमाओं के अतिरिक्त मथुरा कला की गुप्तकालीन पाषाणकलाकृतियाँ भी संग्रहीत हैं। ये प्रतिमायें कलासौष्ठव की दृष्टि से महत्वपूर्ण कलाकृतियाँ हैं। इस काल को भारतीय इतिहास में स्वर्णिम काल कहा जाता है और कला की दृष्टि से भी इस तथ्य की सत्यता सिद्ध होती है। पुनर्जागरण के इस युग में शिल्पी ने बाह्यसौन्दर्य के साथ आन्तरिक भावनाओं के प्रदर्शन पर अधिक बल दिया। इस काल की प्रतिमाओं में बुद्ध का शिरोभाग (१२८६), बोधिसत्व का शिरोभाग (१४५७) और देवप्रतिमा (३७२३) आदि सुन्दर कलाकृतियों में विशेष स्थान रखती हैं। इस काल की सारनाथ कला में बुद्ध प्रतिमा (११२) भी महत्वपूर्ण कलाकृति है।

यहाँ ७वीं शती ई० से १०वीं शती ई० तक की मथुरा कलाकृतियों में बुद्ध प्रतिमा (१३११), विष्णु (१३१२), शेषशायी विष्णु (१२९३), आलिंगनमुद्रा में शिव-पार्वती (१२९०) और दुर्गाप्रतिमा (४०८) भी पूर्वमध्यकालीन कलाकृतियों में विशेष स्थान रखती है। इस काल की कन्नौज से प्राप्त प्रतिमाओं में धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में पद्मासन बुद्ध (१४७), विष्णु (१२५) और हरिहर का शिरोभाग (१३०८) भी पाल-कालीन कला की महत्वपूर्ण कलाकृतियाँ हैं। यहाँ से प्राप्त पालकला की इन कृतियों में हम गुप्तकालीन शालीनता और गतिशीलता का अनुभव करते हैं। चेहरे की बनावट, केश-विन्यास, होठों की रचना और उन पर अधखिली साधारण मुस्कान तथा अल्प-आभूषणों के चित्रण, गुप्तकला की प्रत्यक्ष सीध में हैं।

इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त पाण्डुस्रोत, लालढांग, झींवरहेड़ी, सुलतानपुर, कांगड़ी ग्राम, आमस्रोत तथा हरिद्वार क्षेत्र के समीपवर्ती क्षेत्रों से समय-समय पर किए गए पुरातात्विक सर्वेक्षण द्वारा अन्य पुरातात्विक सामग्री की भाँति पाषाण प्रतिमाएँ भी संग्रहीत की गयी हैं। ये प्रतिमाएँ जहाँ उत्तराखण्ड का इतिहास बताती हैं, वहाँ यह भी प्रतिपादित करती हैं कि इस क्षेत्र में विभिन्न कालों में बसने वाले लोगों के रीति-रिवाज क्या थे और उनके धर्म, विश्वास तथा विचार किस प्रकार के थे ? इन प्रतिमाओं से ज्ञात होता है कि किसी समय यहाँ बौद्धों का भी प्रभाव था। यहाँ जैनियों, शैवों तथा हिन्दुओं की प्रतिमाओं का भी अच्छा संग्रह है। इस संग्रह में ८वीं शती ई० से १०वीं शती ई० तक की प्रतिमाएँ कला के क्षेत्र में अपना विशेष महत्व रखती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस काल की गंगा नदी के पूर्वी तट अर्थात् बाएँ किनारे पर हरिद्वार नगर से लगभग ८–१० किलोमीटर दूर कांगड़ी ग्राम से प्राप्त ललितासनस्थ अग्निदेव (१४६९) जिसके सिर के दोनों ओर से अग्निज्वालाएँ निकल रही हैं, सिंहारूढ़ दुर्गा (१४७०), आसवपाई कुबेर (१४७४), सप्तमातृका (१३२०) और पद्मपाणि शिव (१३२१) आदि प्रतिमाएँ सुन्दर कलाकृतियाँ हैं और कला के क्षेत्र में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती हैं।

कांगड़ी ग्राम तथा आम्रस्रोत से पाँच जैन प्रतिमाएँ भी प्राप्त हुई हैं, जिनसे यह आभास ही नहीं, अपितु स्पष्टरूपेण ज्ञात होता है कि कभी यह क्षेत्र जैन धर्म का केन्द्र रहा होगा। इन प्रतिमाओं में सर्वतोभद्रिका प्रतिमा (१६४२), शीर्षहीन महावीर (१३१९), और जैन तीर्थंकर (१३१६) की प्रतिमायें भी हरिद्वार क्षेत्र की महत्वपूर्ण कलाकृतियाँ हैं। इन प्रतिमाओं में सभी तीर्थंकर पद्मासन में दर्शाए गए हैं।

सुलतानपुर के पूर्व में गंगा के किनारे प्राचीन टीलों की शृंखला है, जहाँ से चुतुर्मुखी विद्याधर या दिग्पाल (३८०७) और विष्णुलक्ष्मी प्रतिमा (३८०८) भी इस क्षेत्र की सुन्दर कलाकृतियाँ हैं । यहाँ से निकट ही झींवरहेड़ी ग्राम से प्राप्त समुद्रमंथन का पाषाणफलक (३१८०) भी हरिद्वार क्षेत्र की महत्वपूर्ण उपलब्धि है । यह फलक तो लन्दन में हुए भारतउत्सव–वर्ष १९८२ में प्रदर्शित किया गया । गुरुकुल के लिए यह बड़े गौरव का विषय रहा।

हरिद्वार और इसके समीपवर्ती स्थलों में श्रवणनाथ मठ, मायापुर और सतीकुण्ड आदि स्थानों से भी अनेक प्रतिमाएँ संग्रहीत की गई हैं । इन प्रतिमाओं में बुद्ध प्रतिमा (१६५), कुबेर (१६६), शिव-पार्वती (१७१) और महिषासुरमर्दिनी (३१८१) आदि प्रतिमाएँ भी इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण कलाकृतियाँ हैं । इन प्रतिमाओं को देखने से ज्ञात होता है कि यहाँ के कलाकार न केवल अंग-प्रत्यंगों के सुचारु प्रदर्शन में सिद्धहस्त थे, अपितु वे पृष्ठभूमिसंयोजन, अलंकरण तथा भावाभिव्यक्ति के भी मर्मज्ञ थे।

अन्त में कहा जा सकता है कि हरिद्वार क्षेत्र से प्राप्त ८वीं शती ई० से १०वीं शती ई० तक की पाषाणप्रतिमाओं पर प्रतिहारकालीन कला का प्रभाव है । प्रतिहार युग में यहाँ परमपावन गंगा की उपत्यका में कतिपय देवभवनों का, प्राचीन भारतीय स्थापत्य एवं शिल्प में अथवा स्वतन्त्र अस्तित्व रहा होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरातत्व संग्रहालय में श्रद्धानन्द वीथिका

—डा० जबरसिंह सेंगर
निदेशक, पुरातत्त्व संग्रहालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के जीवन-काल से सम्बन्धित सामग्री इस विशाल कक्ष में प्रदर्शित की गई है। इससे पूर्व कि यहाँ की सामग्री पर कुछ लिखा जाए; उचित होगा कि स्वामी जी के जीवनवृत्त पर कुछ प्रकाश डाला जाए।

स्वामी जी के परदादा श्री सुखानन्द जी तथा पिता श्री नानकचन्द जी थे। स्वामी जी का जन्म सम्वत् १९१३ की फाल्गुन-वदी त्रयोदशी को ग्राम तलवन जिला जालंधर में हुआ था। इनका प्रारम्भिक नाम मुंशीराम था। पढ़ने-लिखने में आप बहुत प्रवीण थे। क्वीन्स कालेज के स्कूल से आपने हाईस्कूल (एन्ट्रेंस) की परीक्षा पास की। परीक्षा जब समाप्त हुई तो उसी समय इनकी माता का देहान्त हो गया था। १८७७ में इनका विवाह जालन्धर के प्रसिद्ध रईस ला० शालिग्राम की सुपुत्री शिवदेवी के साथ हुआ। १८८० में मुंशीराम जी नायब तहसीलदार नियुक्त हुए। १८८३ में आपने नायब तहसीलदार के पद से त्यागपत्र दे दिया तथा फिल्लौर में वकालत करने लगे और फिर जालन्धर आ गए।

मुंशीराम जी पर लाला देवराज का प्रभाव पड़ा। अतः १८८५ में उन्होंने आर्य समाज में प्रवेश किया। महात्मा मुंशीराम पर पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी का विशेष प्रभाव था। श्री दुर्गाप्रसाद, श्री आतमाराम, श्री रामभज चौधरी तथा महात्मा मुंशीराम ने महसूस किया कि डी०ए०वी० कालेज वैदिक शिक्षाप्रणाली से दूर होते जा रहे हैं। अतः मुंशीराम जी ने १८९७ में 'आर्य पत्रिका' में एक लेख प्रकाशित कर १८९८ के नवम्बर मास में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में गुरुकुल स्थापित करने का प्रस्ताव पारित कराया। मुंशीराम जी के निकटस्थ मित्र लाला रालाराम तथा राय ठाकुरदत्त लाहौर के पास गुरुकुल खोलना चाहते थे, पर महात्मा जी प्रकृति से ओतप्रोत स्थान पर गुरुकुल स्थापित करना चाहते थे। १९०१ में पुण्यभूमि, गुरुकुल कांगड़ी में गुरुकुल खोलने की अनुमति आर्य प्रतिनिधि सभा ने दे दी तथा ४ मार्च १९०२ को गुरुकुल प्रारम्भ हो गया जिसमें २० ब्रह्मचारी (स्वामी जी के २ पुत्र भी) प्रविष्ट हुए तथा पं० गंगादत्त जी आचार्य नियुक्त हुए। १९२४ में गंगा की बाढ़ के कारण यह गुरुकुल हरिद्वार के निकट गुरुकुल कांगड़ी में अब भी अपने वैभव को बढ़ा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा मुंशीराम जी १९१७ में संन्यास लेकर स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती बन गए। स्वामी जी ने निडर एवं त्याग की भावना से स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया। १९१९ में अमृतसर के कांग्रेस अधिवेशन की स्वागत-समिति के सभापति बने तथा उसे सफलतापूर्वक सम्पन्न कराया। इस समय स्वामी जी की हार्दिक इच्छा थी कि गुरुकुल का कार्यभार अन्य को सौंप दिया जाए। स्वतन्त्रता संग्राम को सफल बनाने के साथ-साथ स्वामी जी हिन्दी प्रचार, दलितोद्धार, शुद्धि-सभाएँ, राष्ट्रीय एकता, हिन्दू संगठन, आदि कार्यों में लगे रहे। स्वामी जी के इन पवित्र और अविस्मरणीय कार्यों से सम्बन्धित उनके जीवनकाल की सामग्री को इस संग्रहालय में संजोकर रखा गया है। इसकी सम्पूर्ण सामग्री हम धनाभाव के कारण तो प्राप्त नहीं कर पाए, पर जो प्राप्त है वह प्रदर्शित की गई है।

स्वामी जी ने शुद्धिप्रचार एवं एकता का संदेश दिल्ली की जामा मस्जिद में भी दिया, उसका एक तैलचित्र प्रदर्शित है। इसी प्रकार स्वामी जी की विभिन्न मुद्राएँ---लेटे हुए, बैठे हुए प्रदर्शित हैं। महत्वपूर्ण चित्र १९१९ का अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन का है जिसमें स्वामी जी स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। उनके साथ श्री गोखले, श्री मालवीय जी, श्री मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद आदि पूज्य महापुरुष विराजमान हैं। स्वामी जी को जब गोली लगी तो मृत्यु-उपरांत उनकी शवयात्रा में अपार भीड़ थी, उसे प्रदर्शित किया गया है। सम्भवत: इतना जनसमूह कभी किसी शवयात्रा में नहीं देखा गया जिसमें सभी जाति के लोग थे। अगला चित्र स्वामी जी के दाहसंस्कार का है जो सारे वातावरण को शांत, मौन एवं अवाक् बनाए हुए है। इसके बाद स्वामी जी के साथ लार्ड चेम्सफोर्ड के वे चित्र प्रदर्शित हैं जब उन्होंने गुरुकुल का भ्रमण किया था। स्वामी जी के वस्त्र, खडाऊँ, चादर, झोला, कम्बल, कुर्ता, लंगोटी, टोपा आदि उनके मूलरूप में प्रदर्शित हैं जो उनकी सादगी को प्रदर्शित करते हैं। स्वामी जी को ब्रह्मदेश की कुछ कलाकृतियाँ भेंटस्वरूप प्राप्त हुई थीं—वह प्रदर्शित हैं। इसी में एक सुभाषचन्द्र बोस की मूर्ति भी अपनी स्वतन्त्रतासंग्राम के सेनानी वेष-भूषा में शोभायमान है।

स्वामी जी से सम्बन्धित अनेक पत्रों में से कुछ पत्रों की फोटोप्रतियाँ भी प्रदर्शित हैं, जिनमें प्रमुख निम्न प्रकार हैं –

गांधी संग्रहालय
साबरमती।

श्रद्धानन्द जी,

भाई साहब,

आपका पत्र मिला। जानबूझ के जलियाँवाला बाग के लिए मैंने कुछ नहीं लिखा है। मेरा अभिप्राय मैंने जेल में से निकलने के बाद भेज दिया था कि आज हमारे कुछ भी मकान नहीं बनने चाहिए। हिन्दू मुसलमान इत्यादि धर्मियों के ऐक्य का ही मकान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मरण चिह्न होगा । आज अगर हम कुछ भी बनाएँ तो वह झगड़े का एक और कारण बन सकता है । पैसा सुरक्षित है, ऐसा मेरा ख्याल है । आजकल की हमारी गन्दी आबोहवा में इतने से ही सन्तुष्ट रहना मुझको विशेष योग्य लगता है । आप अपना अभिप्राय मुझको भेज दें । आप ऐसा क्यों कहते हैं कि इसमें केवल मालवीय जी, मोतीलाल जी और मेरी ही जिम्मेदारी है ? आप इस तरह से छूट नहीं सकते हैं । कम से कम जितनी हम तीनों की इतनी तो आपकी है ही है । आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा ।

ह०

(मोहनदास कर्मचन्द गांधी)

हिन्दी नवजीवन

गुरुवार, पौष बदि ४, सम्वत् १९८३ **२३ दिसम्बर, १९२६**

शहीद श्रद्धानन्द

जिसकी उम्मीद थी वह हो गुजरा । कोई ९ महीने हुए स्वामी श्रद्धानन्द जी सत्याग्रहाश्रम में आकर दो-एक दिन ठहरे थे । बात-चीत में उन्होंने मुझसे कहा था कि उनके पास जब-तब ऐसे पत्र आया करते थे जिनमें उन्हें मार डालने की धमकी दी जाती थी । किस सुधारक के सिर पर बोली नही बोली गयी है ? इसलिए उनके ऐसे पत्र पाने में अचम्भे की कोई बात नहीं थी । उनका मारा जाना कोई अनोखी बात नहीं है ।

स्वामी जी सुधारक थे । वह कर्मवीर थे । जिसमें उनका विश्वास था, उसका वह पालन करते थे । उन विश्वासों के लिए उन्हें कष्ट झेलने पड़े । वह वीरता के औतार थे । भय के सामने उन्होंने कभी सिर नहीं झुकाया । वह योद्धा थे और योद्धा रोगशैया पर मरना नहीं चाहता । वह तो युद्धभूमि का मरण चाहता है ।

कोई एक महीना हुआ कि स्वामी श्रद्धानन्द जी बहुत बीमार पड़े । डाक्टर अन्सारी उनकी चिकित्सा करते थे । जितने अनुराग से उनसे सम्भव था, डाक्टर अंसारी उनकी सेवा करते थे । इस महीने के शुरु में पूछने पर उनके पुत्र प्रो० इन्द्र ने तार दिया था कि स्वामी जी अब अच्छे हैं और मेरा प्रेम और दुआ माँगते हैं । मैं उनके बिना माँगे ही उन पर प्रेम और उनके लिए भगवान से प्रार्थना करता ही रहता हूँ ।

भगवान को उन्हें शहीदों की मौत देनी थी । इसलिए जब अभी वे बीमार ही थे तभी हत्यारे के हाथ मारे गए, जो इस्लाम पर धार्मिक चर्चा के नाम पर उनसे मिलना चाहता था, जो स्वामी जी की प्रेरणा से आने दिया गया । जिसने प्यास मिटाने को पानी माँगने के बहाने स्वामी जी के ईमानदार नौकर धर्मसिंह को पानी लेने को बाहर हटा दिया, और जिसने नौकर की गैरहाजिरी में बिस्तर पर पड़े हुए रोगी की छाती में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो प्राणघातक चोटें कीं। स्वामी जी के अन्तिम शब्दों की हमें खबर नहीं। मगर अगर मैं उन्हें कुछ भी पहचानता था तो मुझे बिल्कुल सन्देह नहीं है कि उन्होंने अपने परमात्मा से उसके लिए क्षमायाचना की होगी जो यह नहीं जानता था कि वह पाप कर रहा है। इसलिये गीता की भाषा में वह योद्धा धन्य है जिसे ऐसी मृत्यु प्राप्त होती है।

मृत्यु तो हमेशा ही धन्य होती है मगर उस योद्धा के लिए तो और भी अधिक जो अपने धर्म के लिए यानी सत्य के लिए मरता है। मृत्यु कोई शैतान नहीं है। वह तो सबसे वड़ी मित्र है। वह हमें कष्टों से मुक्ति देती है। हमारी इच्छा के विरुद्ध भी हमें छुटकारा दे देती है। हमें बराबर ही नई उम्मीदें नए रूप देती हैं। वह नींद के समान मीठी है किन्तु तो भी किसी मित्र के मरने पर शोक करने की चाल है। अगर कोई शहीद मरता है तो यह रिवाज नहीं रहता। अतएव इस मृत्यु पर मैं शोक नहीं कर सकता। स्वामी जी और उनके सम्बन्धी ईर्ष्या के पात्र हैं। क्योंकि श्रद्धानन्द जी मर जाने के वाद भी अभी जीते हैं। उससे भी अधिक सच्चे रूप में जीते हैं जब वे हमारे बीच अपने विशाल शरीर को लेकर घूमा करते थे। ऐसी महिमामय मृत्यु पर जिस कुल में उनका जन्म हुआ था, जिस जाति के वे थे, वह सभी धन्यता के पात्र हैं। वे वीर पुरुष थे, उन्होंने वीरगति पाई।

मगर इस दृश्य का एक दूसरा पट भी है। मैं अपने को मुसलमानों का मित्र समझता हूँ। वे मेरे सहोदर भाई हैं। उनकी भूलें मेरी भूलें हैं। उनके सुख से मैं सुखी और दुःख से दुःखी होता हूँ। किसी मुसलमान के पाप से मुझे उतना ही दुःख होता है जितना कि उसे कोई हिन्दू करता। एक मुसलमान ने यह घोर कृत्य किया है। मुसलमानों के मित्र की हैसियत से मुझे इसका बहुत बड़ा खेद है। मृत्यु की खुशी इसलिए कम हो जाती है कि उसका कारण बना था एक भूला हुआ भाई। इसलिए धर्मबलि की चाहना नहीं की जा सकती। वह तो आनन्द की वस्तु तभी बनती है जब बिना बुलाए आती है। हम अपने छोटे से छोटे भाई की भूल पर हँसे नहीं। मगर बात तो यह है कि जब तक कोई भूल भयंकर रूप धारण कर नहीं लेती, उसे भूल माना ही नहीं जाता। जब तक उसकी यथेष्ठ निन्दा नहीं हो लेती तब तक वह दूर नहीं होती।

इस काण्ड का बहुत बड़ा राष्ट्रीय महत्व है। जाति के जीवन को नष्ट करने वाले दोष की ओर यह हमारा ध्यान खींचता है। हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही अपना कर्तव्य चुन लेना चाहिए। यह दोनों की ही जाँच का मौका है। क्रोध दिखला कर हिन्दू अपने धर्म का अपमान करेंगे और उस एकता को रोक लेंगे जो एक दिन जरूर ही आयेगी। आत्मसंयम के द्वारा वे अपने आपको अपनी उपनिषदों और क्षमामूर्ति युधिष्ठिर के योग्य सिद्ध कर सकते हैं। एक व्यक्ति के पाप को हम सारी जाति का पाप न मान बैठें। बदला लेने के भाव हम न लावें। इसे हम एक हिन्दू के प्रति एक मुसलमान का पाप मानने के बदले एक वीर पुरुष के प्रति दूसरे भूले-भटके भाई की भूल मानें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसलमानों को अग्नि-परीक्षा में से होकर निकलना पड़ेगा। इसमें कोई शक नहीं कि छुरी और पिस्तौल चलाने में उनके हाथ जरूरत से अधिक साफ हैं। तलवार कुछ इसलाम का धर्मचिह्न नहीं है मगर इसलाम की पैदाइश हुई ऐसी स्थिति में जहाँ तलवार की ही तूती थी और अब भी है। यीशु के सन्देश का भी कुछ असर नहीं पड़ा क्योंकि उसे ग्रहण करने लायक योग्य परिस्थिति ही उपस्थित नहीं (पैगम्बर के उपदेशों के साथ भी तलवारें बहुत निकला करती हैं। इसलाम को अगर इसलाम यानी शान्ति बनना है तो उसे अपनी तलवार म्यान में ही रखनी होगी) इसका खतरा है कि मुसलमानों के मन्त्री इस कृत्य का समर्थन ही करें। उनके लिए और संसार के लिए यह दुर्भाग्य की बात होगी क्योंकि हमारा मसला सारे संसार का मसला है। अगर खुदा पर भरोसा करना है तो तलवार का भरोसा छोड़ना होगा। उनकी ओर से स्पष्ट शब्दों में सब ओर से निन्दा के प्रस्ताव होने चाहिए।

मैं अब्दुल रशीद की ओर से भी कुछ कहना चाहता हूँ। मैं उसे जानता नहीं। मुझे इससे मतलब नहीं कि उसने क्यों मारा? दोष हमारा है। अखबार वाले चलते-फिरते रोगाणु बन गए हैं। वे झूठ और शिकायत की तिजारत करते हैं। अपनी भाषा की गालियों के शब्दभण्डार को वे खाली कर देते और पाठकों के संशयरहित और प्रायः ग्रहणशील मनों में अपने विकार घुला देते हैं। अपने भाषाधिकार के मद से मत्त नेताओं ने अपने कलम और जबान पर लगाम लगाना सीखा ही नहीं है। गुप्त और छल-कपटपूर्ण प्रचार को अपना काला और भयंकर काम करने में रोकथाम का सामना नहीं करना पड़ा। इसलिए हम शिक्षित और अर्द्धशिक्षित लोग ही अब्दुल रशीद की मनोवृत्ति के लिए दोषी हैं। इसका निश्चय करना कि दो विरोधी दलों में किसका कितना दोष है, बेकार है। धर्मराज की तुला से दोषों का, न्याय-अन्याय का ठीक-ठीक बँटवारा कौन कर सकता है? आत्मरक्षा के लिए झूठ बोलना या बढ़ा कर कहना जरूरी नहीं है। ऐसी आशा रखना बहुत बड़ी बात है किन्तु स्वामी जी इतने बड़े थे कि जिससे यह आशा होती है कि उनका खून हमारा पाप धो देगा, हमारे दिलों के मैल को साफ कर, मनुष्य जाति के दो बड़े विभागों को एक कर देगा। स्वामी जी के जीवन का मुझे जो ज्ञान है, उसके विषय में अगले अंक में विचार करना पड़ेगा। (यं०इं०)

(मोहनदास कर्मचन्द गांधी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी

नवजीवन

सम्पादक .– मोहनदास करमचन्द गांधी

वर्ष ६ अंक २१

मुद्रक-प्रकाशक स्वामी आनन्द | अहमदाबाद, पौष सुदि ३, संवत् १९०३ गुरुवार, ६ जनवरी, १९२७ ई० | मुद्रणालय– नवजीवन मुद्रणालय

श्रद्धानन्द स्मारक

यह उचित ही है कि हिन्दू महासभा की ओर से स्वामी श्रद्धानन्द के स्मरण के लिए धन की सहायता माँगी जाए। स्वामी जी संन्यास-धारण के बाद जिन कामों के लिए जीते थे, उसके लिए चन्दा इकट्ठा करने का हिन्दू सभा ने निश्चय किया है। इस निश्चय के लिए मैं उसे साधुबाद देता हूँ। वे काम हैं,—अस्पृश्यता निवारण, शुद्धि और संगठन। ५ लाख की अपील की गयी है अस्पृश्यता के लिए और शुद्धि और संगठन के लिए भी उतने की ही। जिसे साधारणतः शुद्धि समझा जाता है, उस अर्थ में शुद्धि-आन्दोलन की आवश्यकता में मेरा विश्वास अब भी नहीं है। पापियों की शुद्धि निरन्तर आन्तरिक क्रिया है। उन लोगों की शुद्धि जो न तो हिन्दू ही रहना चाहते हैं, धर्म-परिवर्तन नहीं है बल्कि प्रायश्चित है। शुद्धि का तीसरा पहलू है असली धर्म परिवर्तन। इस ज्ञान और सहन युग में मैं उसकी जरूरत नहीं मानता। मैं धर्मपरिवर्तन का विरोधी हूँ चाहे कोई उसे हिन्दुओं में शुद्धि, मुसलमानों में तबलीग या क्रिस्तानों में धर्मपरिवर्तन कहे। धर्मपरिवर्तन तो हृदय की क्रिया है और उसे केवल भगवान ही जान सकता है। उसे तो अपने आप ही छोड़ देना होगा। मगर धर्मपरिवर्तन पर मेरे मत प्रकाश करने का यह स्थान नहीं है। जिनका इसमें विश्वास नहीं है उन्हें बिना किसी विरोध के अपने रास्ते पर चलने का तब तक पूरा अधिकार है जब तक वे उचित सीमाओं के अन्दर रहते हैं, यानि जब तक कोई और या धोखा या लालच नहीं दी जाती है और जब तक दोनों पक्षों को पूरी स्वतन्त्रता है और वे सयानी उम्र और परिपक्व बुद्धि के हैं। इसलिए जिनका शुद्धि में विश्वास है उन्हें इस अपील पर सहायता देने का पूरा अधिकार है।

अगर वह अपनी हस्ती अलग रखना चाहे तो हर एक सम्प्रदाय को अपना संगठन करने का पूरा अधिकार है, बल्कि उसके लिए यह परमावश्यक है। मैं इससे इसलिए अलग रहा हूँ कि संगठन के विषय में मेरे विचार कुछ अनोखे हैं। संख्या से अधिक गुण पर मेरा विश्वास है। आजकल संख्या पर, बल्कि गुण के बदले भी उसी पर विश्वास रखने की चाल है। समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र में निस्सन्देह संख्या का स्थान है। केवल मैं ही इसका उस प्रकार संगठन करने में असमर्थ हूँ जैसा कि आजकल हो रहा है। इसीलिए मेरे लिए अछूतोद्धार के ही कोष की कीमत है। इसकी अपनी निराली ही शक्ति है। हिन्दूधर्म के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधार और इसकी सच्ची रक्षा के लिए अछूतोद्धार सबसे बड़ी वस्तु है। इसमें सब कुछ शामिल है और इसलिए हिन्दू धर्म का यह सबसे काला दाग अगर मिट जाए तो शुद्धि और संगठन से जो कुछ मिल सकेगा, वह सब हमें इससे अपने आप ही मिल जायेगा। और मैं यह इसलिए नहीं कहता कि अछूतों, जिन्हें हर एक हिन्दू को गले लगाना चाहिए, की बहुत बड़ी संख्या है बल्कि इसलिए कि एक पुराने और असभ्य रिवाज को तोड़ डालने की ज्ञान और उससे होने वाली शुद्धि से कितनी ताकत मिलेगी, जो रोकी न जा सकेगी। इसलिए अस्पृश्यतानिवारण एक आध्यात्मिक क्रिया है। स्वामी जी इस सुधार के जीवित मूर्ति थे क्योंकि वह इसमें आधा-साझा सुधार नहीं चाहते थे, वे समझौता नहीं कर सकते थे, दब नहीं सकते थे। अगर उनकी चलती तो वह बात की बात में हिन्दू धर्म से अस्पृश्यता को निकाल बाहर करते। वे हर एक मन्दिर को, हर एक कुएँ को सबकी बराबरी के हक के साथ खोलते और इसका हर फल भुगत लेते। स्वामी श्रद्धानन्द जी के लिए इससे अच्छा कोई स्मारक नहीं सोच सकता कि हर एक हिन्दू आज से अपने दिलों से अस्पृश्यता की अपवित्रता निकाल दे और उनके साथ सगों के समान बर्ताव करे। उस आदमी की पैसा की सहायत्ता तो, मेरी समझ में, अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म से सदा के लिए निकाल डालने की उसके दृढ़ निश्चय का चिन्ह भर होगी।

चि० इन्द्र,

आज मुझको शान्ति है क्योंकि मेरा मौन का दिन है। तुझको लिखने का दिल तो हमारा होता था परन्तु मैं शान्ति चाहता था। मैंने तुमसे शोक प्रदर्शित नहीं किया है। न मैं करना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि इस मृत्यु को हम मृत्यु न समझें। धर्म को समझने वाला तो किसी अवसर पर मृत्यु का शोक नहीं करेगा। परन्तु पिताजी की मृत्यु तो वीर-पुरुष के लिए अभिनन्दनीय भी हो सकती है।

और एक चीज मैं तुम्हारे पास से चाहता हूँ। हृदय में अब्दुल रशीद या मुसलमानों के प्रति रोष का स्थान न देना। तुम तो पिताजी को मेरे से ज्यादा जानते थे। परन्तु जब तक मैं उनको जान सका था, उनके हृदय में किसी मनुष्य से घृणा न थी। वही चीज मैं तुमसे चाहता हूँ।

मैं यह भी चाहता हूँ कि जिस वीरता से पिताजी ने अपना कार्य किया उसी वीरता के साथ तुम भी करते रहो और उनके पवित्र स्मरणों को सुशोभित रखो।

पिताजी के अन्तिम समय का सम्पूर्ण वर्णन मैं चाहता हूँ। धर्मसिंह की तबियत अब कैसा है। मैं भ्रमण में हूँ इसलिए पत्र साबरमती ही भेजना।

राहैल
सोमवार

मोहनदास कर्मचन्द गांधी
का आशीर्वाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पत्रों में स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का व्यक्तित्व मुखरित होता है। उन्होंने घृणा एवं पाप को कभी अपने जीवन में फटकने नहीं दिया—गाँधी जी के पत्रों से स्पष्ट है।

लार्ड चैम्सफोर्ड को उन्होंने साफ बता दिया था कि उनके राष्ट्रीय प्रेम एवं भारतीय संस्कृति की रक्षा में क्या विचार हैं ? अंग्रेज सरकार से एक पैसा भी अनुदान लेना उन्होंने पाप समझा। उनके ऐसे आदर्शमय जीवन से सम्बन्धित सामग्री का प्रदर्शन इस विशाल कक्षा में किया गया है। धन उपलब्ध होने एवं सामग्री प्राप्त होने पर उसका और विस्तार किया जाएगा।

— — — —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरातत्व संग्रहालय की पाण्डुलिपियाँ

—डा० राकेशकुमार शर्मा

प्रवक्ता, इतिहास विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के आधीन 'पुरातत्व संग्रहालय' का स्थान न केवल उत्तर प्रदेश अपितु समस्त भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत आने वाले संग्रहालयों की श्रेणी में महत्वपूर्ण है।

जहाँ संग्रहालय के विभिन्न कक्षों में विभिन्न वस्तुओं का संग्रह है, वहाँ हस्तलिखित ग्रन्थों का भी अच्छा संग्रह विद्यमान है। इसके अन्तर्गत अनेक ग्रन्थ अपनी प्राचीनता, विषय अथवा भाषा के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं। इस संग्रह में विभिन्न धर्मों को प्रतिपादित करने वाली पाण्डुलिपियाँ संग्रह करने का सफल प्रयास किया गया है। इन ग्रन्थों को इनके समस्त परिचय सहित रखा गया है, जिससे न केवल दर्शक अपितु शोधार्थी भी लाभान्वित होते हैं।

हिन्दू-धर्म के विभिन्न पवित्रग्रन्थों में बालिमकि द्वारा रचित 'रामायण' की कई प्राचीन प्रतियाँ सटीक तथा फारसी में लिखित संग्रहीत हैं। इनमें से पंडित विश्वनाथ ईशापुर वाले द्वारा लिखित "अयोध्याकाण्ड' विशेष महत्वपूर्ण है। संस्कृत भाषा में लिखे इस ग्रन्थ का आकार 9" × 8" है। 'महाभारत' के कई प्रकार के संस्करण, जिनमें फारसी अनुवाद तथा छन्दोबद्ध 'कर्ण-पर्व' विशेषतः उल्लेखनीय हैं, संग्रहीत हैं।

'श्रीमद्भागवतगीता' की भी अनेक प्रतियों को प्रदर्शित किया गया है जिनमें से गुरुमुखी में लिखित छोटे आकार 3.5" × 2" की गीता, पंचरत्न गीता तथा गीता (विष्णु सहस्रनाम) भी संग्रहीत है। इनकी भाषा संस्कृत है।

काश्मीरी (शारदा) लिपि में लिखित 'प्रार्थना पुस्तक' भाषा के दृष्टिकोण से प्राचीन उदाहरण है। इसी श्रेणी में जौनसारी भाषा में लिखित पुस्तक 'तन्त्र-मन्त्र' विषय को प्रतिपादित करती है। इसका आकार 7" × 4.5" है।

बंगला हस्तलिपियों का भी संग्रहालय में अच्छा संग्रह है। इनमें 12" × 4.5" के आकार वाली 'देवी-स्तोत्र' तथा 15" × 3" के आकार वाली 'मनु-संहिता' विशेष रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्लेखनीय हैं। इन ग्रन्थों में हिन्दू-धर्म के क्षेत्रीय भाषा-भाषी लोगों में लोकप्रियता की अच्छी झलक मिलती है।

लगभग 16वीं शताब्दी में लिखित तिब्बती भाषा की दो पाण्डुलिपियाँ, लिपि की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं जिनमें से एक 'तन्त्र-विद्या' पर आधारित पुस्तक का आकार 22"×7.4" है।

प्राचीन पुस्तकों में 'श्रीमद्भागवत पुराण' 100 वर्षों से भी अधिक प्राचीन है। यह काश्मीरी कागज पर लिखा गया है तथा इस पाण्डुलिपि की विशेषता यह है कि इसमें अनेक प्रकार के लुभावने रंगीन चित्र भी बने हैं।

संस्कृत भाषा के ग्रन्थों की सूची में 'ब्रह्मसूत्र' नामक पाण्डुलिपि भी संग्रहीत है। इसका आकार 15"×6" है। इसी के साथ 'स्त्रोत रत्नाकर' नामक ग्रन्थ है जो कि श्री गंगाप्रसाद द्वारा रचित है। इसी श्रेणी में श्री महेलाल द्वारा हस्तलिखित 'राम चन्द्रिका' भी अवधी-देवनागरी का 10"×6" का सुन्दर ग्रन्थ है। 'वेद गीताँजलि' नामक पुस्तक भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। यह श्री वेदव्रत द्वारा रचित वैदिक धर्म पर संस्कृतभाषा की 7.5"×4.5" के आकार की पाण्डुलिपि है।

पाण्डुलिपियों के संग्रह में प्राचीन-काल में लेखन हेतु प्रयुक्त होने वाले कागजों का संकलन भी ज्ञानवर्धक तथा मनोरंजन का विषय है। इनमें भोजपत्र तथा ताड़पत्र मुख्य हैं। इसी में ताड़पत्र पर उड़िया भाषा में लिखित 'तूलवीणा' नामक ग्रन्थ अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए है। यह भोजपत्र तथा ताड़पत्र आज भी संग्रहालय में प्राचीन हस्तलिखित कला के प्रमाण हैं।

सिख-धर्म के पवित्र साहित्य में श्री गुरुग्रन्थसाहिब (वाणी श्री गुरुनानकदेव महाराज) की बड़े आकार की प्रतियाँ संग्रहीत हैं। इन पाण्डुलिपियों में एक 13"×16" के आकार में प्रदर्शित 'दशमग्रन्थ' सिखों के प्रसिद्ध महापुरुष श्री गोविन्दसिंह द्वारा हस्तलिखित है। इसके अतिरिक्त गुरुअर्जुनदेव द्वारा सम्पादित एक अन्य पाण्डुलिपि भी कम महत्व की नहीं है। यह ग्रन्थ विक्रमी सम्वत् 1816 का है तथा इसका आकार 13.5"×12.5" है।

हिन्दू धर्म तथा सिख धर्म के अतिरिक्त मुस्लिम धर्म के पवित्र ग्रन्थों को भी संग्रहालय में संग्रहित किया गया है। इनमें सम्राट औरंगजेब द्वारा हस्तलिखित कुरान शरीफ के मूल पृष्ठों के चित्रसहित मुद्रित हिन्दी अनुवाद की प्रतियाँ संग्रहित हैं। इसी श्रेणी में 'कुरान-मजीद' भी ऐसा ही साहित्य है जो मुस्लिम-धर्म को हिन्दीभाषियों में प्रचार करने तथा तत्कालीन धार्मिक स्थिति को स्पष्ट करता है। इनके अतिरिक्त 'फारसी गुलिस्ताँ' की कई प्रतियाँ प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों में उल्लेखनीय हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, बंगला, तिब्बती तथा पंजाबी आदि भाषाओं और लिपियों की हस्तलिखित पोथियों को शीशे के शो-केस में सुन्दर ढंग से प्रदर्शित किया गया है। चमड़े जैसे पक्के और कुछ काला रंग लिए एक चिकने कागज पर सुनहरी अक्षरों में तिब्बती लिपि की एक बड़ी पाण्डुलिपि संग्रहीत है। इसकी लेखनशैली अत्यधिक आकर्षक है।

संग्रहालय में उपर्युक्त संग्रह सहित लगभग 200 पाण्डुलिपियों का संग्रह है जो संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं में है। प्रदर्शित पाण्डुलिपियों के अतिरिक्त, शेष संग्रह को संग्रहालय में स्थानाभाव के कारण प्रदर्शित नहीं किया जा सका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृदिकापात्र संग्रह

ब्रजेन्द्रकुमार जैरथ
संग्रहालय सहायक, पुरातत्त्व संग्रहालय, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

आज का मानव लगातार प्रगति की सीढ़ियों को लाँघता हुआ मशीनी युग से गुजर रहा है। हर छोटी-बड़ी वस्तु मशीनों के जरिए बहुत जल्द निर्मित हो रही है। इन मशीनों की उपयोगिता के रहते कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जो आज भी परम्परागत तरीके से मानवीय शक्ति तथा कलाकौशल के जरिये तैयार की जाती हैं और जो अपनी अहमियत, अपनी ख़ूबसूरती, अपने इतिहास की कहानी दोहराती हैं।

मानवसभ्यता के विकास की कहानी काफी कुछ प्राचीन मिट्टी के बर्तनों में भी छिपी है। भारत में आज भी जगह-जगह मिट्टी के बर्तन बनते हैं जिनकी अपनी खास विशेषता है। ये बर्तन आमतौर पर कुम्हार चाक से बनाते हैं। बड़े बर्तन जैसे नांद तथा कुण्डे आदि पीटकर बनाए जाते हैं। खिलौने बनाने के लिए साँचे आदि इस्तेमाल किए जाते हैं।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के पुरातत्व संग्रहालय में मृदिकापात्र तथा मृणमूर्ति कक्ष में प्रागसैन्धव मृदिकापात्र से लेकर मध्यकालीन मृदिकापात्र देखने को मिलते हैं जिनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

प्रागसैन्धव मृदिकापात्र

यह काल लगभग ०-५००० ई०पू० है। इस संस्कृति के दो प्रकार के मृदिकापात्र कक्ष में प्रदर्शित हैं। इन मृदिकापात्रों में कुछ ऐसे चित्रित पात्र देखने को मिलते हैं जिन पर एक के अन्दर एक गोले, पत्तियों के आकार, धारीदार तथा तिरछी रेखाएँ अंकित हैं जिनके बीच बिन्दु बना दिए गए हैं तथा इनके ऊपर-नीचे समानान्तर रेखाएँ बनी हुई हैं। इसके अलावा आड़ी-तिरछी लाइनों के नमूने व धारीदार रेखाएँ जिनका ऊपरी हिस्सा समानांतर रेखा को छूता है, अंकित हैं। कुछ पात्रों पर छोटे-छोटे गोले व कंघी के-से आकार पूरी सतह पर अनियमित रूप से बने हुए हैं। इनका रंग सामान्यतः भूरा है।

इसके अतिरिक्त जो दूसरे किस्म के मृदिकापात्र मिलते हैं उनका रंग भी मूलतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूरा ही है जिस पर काले रंग से एक के अन्दर एक गोले चित्रित हैं जो चार बिन्दुओं पर लम्ब व समानान्तर रेखाओं से ज़ुड़े हुए हैं। इसके अलावा कुछ पात्रों पर दो-दो रेखाओं के घेरे चित्रित हैं जिनमें एक घेरे के बीच वृत्त तथा दूसरे के बीच चतुष्कोण हैं जिनके बीच वृत्त दर्शाए गए हैं। इन दोनों नमूने के बीच दो समानांतर रेखाएँ खिंची हैं जिनके मध्य अपेक्षाकृत एक मोटा घेरा खिंचा है। इन घेरों के नीचे एक और मोटा घेरा जिस पर पत्तियाँ लटक रही हैं, चित्रित हैं।

वीथिका में जो मृदिकापात्र प्रदर्शित हैं उनमें सिर्फ एक पात्र के अतिरिक्त किसी भी पात्र का कोई निश्चित आकार नहीं है। वह एक पात्र Dish के आकार का है।

सिंधु मृदिकापात्र

इसका काल लगभग ३००० ई०पू० है। ये पात्र सर्वेक्षण के दौरान राखीगढ़ी (हिसार), बनावली (फतेहाबाद), मिताथल (भिवानी), मानहेर (भिवानी), मिरजपुर (हिसार), पौली (जीन्द) व गिरोड़ (रोहतक) क्षेत्रों से एकत्रित किए गए हैं और ये सभी स्थान हरियाणा राज्य में हैं।

सिंधु संस्कृति के प्रदर्शित मृदिकापात्र भी दो प्रकार के हैं। एक पर काले रंग से मछली की बाह्य त्वचा का नमूना व पत्तियाँ चित्रित हैं। यह पात्र अति मुलायम मिट्टी व नियमित ताप में निर्मित हैं। फलस्वरूप पूरी सतह भूरे रंग की है। ये पात्र मुख्यत: काफी भारी व मजबूत हैं। बड़े-बड़े जार, कटोरे व छोटे घड़ों के आकार में ये पात्र देखने को मिलते हैं। इन पर चित्रकारी बहुत सावधानी से की गई है। जार के ऊपरी हिस्से पर दो मोटे घेरे काले रंग में चित्रित हैं जिनके बीच त्रिकोण बने हुए हैं। इसके अतिरिक्त बाकी हिस्से पर आड़े-तिरछे नमूने चित्रित हैं। कटोरे पर पतले समानान्तर रेखाओं में घेरे खिंचे हैं व छोटे घड़े पर तीन पतले घेरे दिखाई देते हैं। ये घेरे, घड़े के ऊपरी हिस्से में ही बने हैं।

दूसरे किस्म के जो पात्र मिलते हैं वह कुछ खुरदुरापन लिए हैं। उन पर किसी भी तरह का कोई लेप नहीं किया गया है। इनके लिए जो मिट्टी इस्तेमाल की गई है वह भुरभुरी, गोबर, घास अथवा रेत आदि का मिश्रण है। इन पात्रों के ठीकरों में जो कालापन देखने को मिलता है उससे लगता है ये आग में अच्छी तरह से पकाए नहीं गए।

इन पात्रों पर गीलेपन में ही संभवतः सरकण्डे, चाकू अथवा कंघी आदि की सहायता से सादे चित्र अंकित किए गए हैं जैसे कि हल्का घुमाव लिए समानान्तर रेखाएँ जो कि कहीं धारीदार पट्टियाँ व कहीं ऊपर से नीचे की ओर आती पट्टियों से कटती हैं। इसके अतिरिक्त अंगुली के अग्रभाग के चिह्न देखने को मिलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये पात्र दौलतपुर I, मिताथल 11B, सिस्वाल I (हरियाणा), रंगपुर, अहार, प्रकाश, जोखा तथा कनेवाल आदि स्थानों से प्राप्त हुए हैं।

भूरे मृदिकापात्र :

ये अच्छे किस्म के भारी व मजबूत पात्र हैं। इनकी सामान्यतः भूरी सतह है। ये पात्र अच्छी मुलायम मिट्टी से तीव्र गति के चाक पर बनाए गए हैं, जिसके पश्चात सामान्य ताप में पकाया गया है। लेकिन कुछ पात्र निम्नस्तरीय मिट्टी से भी निर्मित हैं।

ये पात्र सामान्यतः बड़े मटके, जार के आकार में हैं। कुछ ऐसे पात्रों के टुकड़े भी मिले हैं जिनमें सुराख बने हैं। परन्तु इनके आकार का अनुमान लगाना मुश्किल है। ये पात्र जो यहाँ प्रदर्शित हैं, हरियाणा राज्य से मिले हैं।

अभ्रकमिश्रित मृदपात्र

कुछ मृदभाण्ड अभ्रकमिश्रित मिट्टी से (Micaceous Red ware) से बनाये गये हैं और ये काले रंग से चित्रित हैं। एक मृदिकापात्र जिसका कोई आकार नहीं है, पर चित्रित एक मोटा घेरा, तीन पतले सफेद रंग के घेरों से काटा गया है।

भूरे पात्र

कुछ Grey Ware के मृदिकापात्र भी यहाँ दर्शाए गए हैं। ये विभिन्न आकारों में हैं जैसे कि बड़े जार, घड़े, तश्तरी, पैंददार तश्तरी का एक हिस्सा और कटोरे आदि में देखने को मिलते हैं।

मृदिकापात्रों के अलावा, मृणमूर्तियाँ तथा पत्थर की वस्तुएँ मुख्य हैं।

मृणमूर्तियों में केक्स (Cakes), डिस्क के आकार में पात्र, स्किन रबर (Skin rubbers), मनके, पहिये व चूड़ियाँ आदि शामिल हैं।

टेराकोटा केक्स (Terracotta Cakes) की संख्या चार है। Pottery discs विभिन्न आकार में हैं। संभवतः यह बच्चों द्वारा किसी खेल में प्रयोग की जाती थीं। Pottery discs में आठ तो पूर्णतः साबुत नमूने हैं और सात टूटे हुए हैं।

दो Skin rubbers भी यहाँ प्रदर्शित हैं जिनमें एक तो टूटा हुआ है और एक साबुत है। इसके अतिरिक्त मृणमूर्तियों के बने मनके प्रदर्शित हैं। दो नमूने पहियों के हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो अलग-अलग आकार में हैं। चूड़ियाँ भी दो प्रकार की देखने को मिलती हैं। एक तो Glazed लेप से बनाई गयी हैं तथा दूसरी Terracotta से। Glazed लेप की चूड़ियों की संख्या १२ है और सभी टूटी हुई हैं। Terracotta चूड़ियों की संख्या ९ है तथा वे विभिन्न आकारों में हैं।

नसीरपुर—

इस स्थान से सर्वेक्षण के दौरान गेरुये रंग के मृदिकापात्र प्राप्त हुए हैं। यह स्थान, तालुका मंगलौर (जिला सहारनपुर) में स्थित है। सन १९५० में बी०बी० लाल ने दो Copper-hoards Sites पर प्रयोगात्मक उत्खनन किया। ये स्थान बसौली (जिला बदायूँ) तथा राजपुर-परसु (जिला बिजनौर) उ० प्र० में हैं। यहाँ उत्खनन के दौरान कुछ नए किस्म के मृदभाण्ड मिले, जिनका नाम गेरुये रंग के मृदभाण्ड रखा गया, (Lal—1951 : 36–39)। यह मृदिकापात्र medium grained मिट्टी का बना हुआ व कम आग में तपाया गया था। उत्खनन से प्राप्त हुए मृदभाण्ड खराब दशा में तथा rolled थे। मृदिकापात्र पर ochre का पतला लेप था जिसका रंग नारंगी-लाल से गहरे लाल तक मिलता है। ऐसे ही पात्र हस्तिनापुर से भी मिले हैं (Lal—1954-35–10)।

इस उत्खनन से 40 नए क्षेत्रों का पता मिलता है। पात्रों का विस्तारक्षेत्र पूर्व में मायापुर (जिला सहारनपुर) से लेकर दक्षिण में सैपई (जिला इटावा) तक फैला हुआ है।

गेरुये रंग के मृदभाण्ड वाली संस्कृति का प्रारम्भ साधारणतया नदियों के किनारे पाया जाता है और आकार में (200 × 200m) बहुत छोटे हैं। (Dikshit–1979—1 : 286)। टीलों की ऊँचाई कम है और बहुत से स्थानों जैसे बहादराबाद, बिसौली, राजपुर-परसु और सैपई में किसी टीले का कोई चिह्नमात्र भी नजर नहीं आता।

पात्रों को बनाने में इस्तेमाल की गई मिट्टी काफी मुलायम है परन्तु समानरूप से आग में तपे हुए नहीं हैं। Fabric medium है तथा मटकों पर प्रायः लेप किया गया है। कहीं-कहीं मोटा लेप प्रयोग में लाया गया है।

नसीरपुर से जो पात्र प्राप्त हुए हैं वे मुख्यतः घड़े, संग्रहण जग, घड़े के आधार आदि के आकार में हैं।

अहार संस्कृति—राजस्थान—

यह स्थान उदयपुर के निकट है। यहाँ पर श्री आर०सी० अग्रवाल ने उत्खनन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया था। इस उत्खनन के दौरान काले और लाल एवं सफेद चित्रित पात्र व Burnished लाल व काले पात्र हैं। ये मृदिकापात्र कटोरे व घड़े के बिभिन्न आकारों में हैं। इन पर सामान्यतः समानान्तर काले घेरे चित्रित हैं।

कुन्दनपुर टीप (बिजनौर) —

इस स्थान पर सर्वेक्षण के दौरान Cholerlithic मृदभाण्ड व Historic मृदभाण्ड प्राप्त हुए।

Cholerlithic मृदभाण्डों में ऐसे पात्र मिलते हैं जिन पर गीली अवस्था में ही फूल, तने व कंघी आदि अंकित किए गए हैं। सिर्फ एक पात्र जिसका कोई निश्चित आकार नहीं है, तथा Grey ware का है, प्रदर्शित है।

ऐतिहासिक (Historic) पात्रों में खुरदुरे लाल पात्र, चित्रित लाल पात्र, Burnished काला पात्र व मुस्लिम चमकदार पालिश के पात्र प्राप्त हुए हैं। जो चित्रित लाल मृदिकापात्र थे वे सब मटके के आकार में थे। यद्यपि कुछ पात्र खराब हालत में भी हैं, इन पर काले रंग से चित्रकारी की गई है।

एक खूबसूरत मृदभाण्ड जो कि मध्यम आकार का जग है, अति शोभाजनक है। इसके अलावा संग्रहणपात्र, मटके, छोटे कटोरे तथा सम्भवतः मटके के ढक्कन तथा साथ ही साथ एक बड़ा स्वास्तिका भी प्राप्त हुए हैं।

सरसावा—

यह एक प्राचीन स्थान है तथा जिला सहारनपुर के अन्तर्गत आता है। इस गाँव में सर्वेक्षण के दौरान एक प्राचीन टीला पाया गया। यह टीला, गांव से लगभग 50 मीटर की दूरी पर, पश्चिम दिशा में स्थित है।

टीले का क्षेत्रफल लगभग 2 Km. × 1·5Km. तक फैला हुआ है। टीले के बीच में एक कच्ची सड़क बनी हुई है। इसी कारण टीले का Section दृष्टिगत हुआ है। इस Section की ऊँचाई लगभग 2·25 मीटर है। Section के निचले हिस्से से सादे Grey पात्र, चित्रित भूरे रंग के पात्र, काले व लाल पात्र (Black and Red ware), Northern Black Polished Ware, खुरदुरे लाल पात्र, Incised लाल पात्र, Burnished लाल पात्र, चित्रित लाल पात्र तथा मुस्लिम चमकदार पालिश के पात्र प्राप्त हुए हैं जो मुख्यतः कटोरे, मटके, तश्तरी व ढक्कन आदि के आकारों में हैं। इसके अलावा कुछ मध्यकाल के मृदभाण्ड भी मिले हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रित धूसरपात्र —

चित्रित धूसरपात्र की उत्पत्ति का समय लगभग १०००–१५०० ई०पू० माना गया है। इनमें कटोरों पर जो चित्रकारी की गई है उसमें Concentric चक्र तिरछी धारियों से जुड़े हैं तथा एक काला घेरा पात्र के ऊपरी, भीतरी हिस्से पर चित्रित है।

Northern Black Polished Ware सरसावा के अतिरिक्त राखीगढ़ी (हिसार) तथा गोरोड़ (रोहतक) हरियाणा से भी प्राप्त हुए हैं।

वीरभद्र (देहरादून)—

इस स्थान से सर्वेक्षण के दौरान जो मृदिकापात्र प्राप्त हुए, उनमें सादे लाल पात्र व चित्रित लाल पात्र हैं, जो मटके, संग्रहणपात्र, डिश, पेंचे पर डिश, पात्र-आधार, गहरे कटोरे, पात्रों के टूटे हत्थे, मटके के ढक्कन आदि आकार में हैं।

इन पात्र का निर्माणकाल 75 BC—600 AD माना गया है।

प्रारम्भिक ऐतिहासिककाल—

ये मृदिकापात्र बिभिन्न प्रकार के हैं। जैसे—खुरदुरे लाल पात्र, सादे लाल पात्र, चित्रित लाल पात्र, फूलदान, कटोरे, खूबसूरत छोटा मटका आदि आकार में हैं जिन पर काले रंग से क्षैतिज रेखाएँ बनी हैं जिनके बीच में एक धारीदार रेखा बनी है।

मध्यकालीन मृदिकापात्र—

यह मृदिकापात्र दो स्थानों से सर्वेक्षण के दौरान प्राप्त किए गए। ये स्थान हैं—राखीगढ़ी (हिसार) व गिरोड़ (रोहतक) दोनों स्थान हरियाणा राज्य में हैं।

इनमें अंकित लाल पात्र व मुस्लिम चमकदार पालिश किए पात्र मिले हैं।

पाँच मनके जो प्रागैतिहासिक काल के हैं यहाँ प्रदर्शित हैं। इसके अतिरिक्त, ईंटें, जो क्रमशः शुंगा (कौशाम्बी), कुशान (कौशाम्बी) तथा गुप्तकाल (वीरभद्र-देहरादून) की हैं, यहाँ प्रदर्शित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल संग्रहालय की मुद्रा-वीथिका

डा० सुखवीर सिंह
सहायक क्यूरेटर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय संग्रहालय

धातु के एक निश्चित आकार के टुकड़े, जिनके भार एवं मूल्य की प्रामाणिकता किसी संगठन या सत्ता द्वारा की गई हो, सिक्के कहलाते हैं। सिक्कों का चलन मनुष्य की बदली आवश्यकताओं की आपूर्ति में विनिमय की कठिनाइयों का प्रतिफल है। उत्खनन एवं साहित्य के प्रमाणों के अनुरूप भारत में सिक्कों का प्रचलन अब से लगभग २५०० वर्ष पूर्व से हुआ। तब से निरन्तर ये प्रसरण में रहे हैं।

प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण में भी इन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इनसे तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक दशा का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। कभी-कभी तत्कालीन कला और साहित्य पर भी इनसे प्रकाश पड़ता है। प्राचीन भारतीय इतिहास में अनेक ऐसे स्थल हैं जिनकी जानकारी केवल सिक्कों के माध्यम से ही हुई है। राजनीतिक परिवर्तनों के साथ ही ये सिक्के विभिन्न नामों से पुकारे गए हैं, जैसे निष्क, सलमान, दीनार, मोहर एवं रुपया आदि।

वर्तमान समय में इस संग्रहालय की मुद्रावीथिका में विभिन्न धातुओं के ४०४३ सिक्के संग्रहीत किए गए हैं। इन सिक्कों को क्रय, उपहारस्वरूप तथा पुरातात्विक सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त किया गया है। इन सिक्कों में आरम्भिक आहत (पंचमार्क) मुद्राओं से लेकर अर्वाचीनकाल तक के सिक्के संग्रहीत हैं। इस समस्त संग्रह को चार उपविभागों में विभक्त किया गया है—प्राचीन, मध्य, वर्तमान और विदेशी। इनमें प्राचीन आहत मुद्राएँ पुरातात्विक क्षेत्र में विशेष महत्त्व रखती हैं। इस संग्रहालय में लगभग १३० आहत मुद्रायें संग्रहित की गयी हैं।

प्राचीनतम भारतीय मुद्रायें (ई० पू० २०० से ६०० तक) चांदी एवं ताम्र के विभिन्न आकारों की आहत मुद्रायें हैं। इन पर एक ओर सामान्यतः ५ चिन्ह हैं तथा दूसरी ओर एक से लेकर बारह तक चिन्ह हैं। इन्हें पण, पाद एवं मासक कहा गया। भार में एक पाद ५०.५२ ग्रेन तथा मासक २ या ३ ग्रेन होता था। इनमें प्रमुख आकार शलाका एवं प्याला प्रकार हैं, यद्यपि ये गोल, वर्गाकार, आयताकार आकारों में भी मिलते हैं। बढ़ती आवश्यकता के कारण शीघ्र ही आहत मुद्रायें सांचे से ढालकर बनायी जाने लगीं। इसी कोटि में ही आगे चलकर लेखविहीन तांबे के ढलुवा एवं जनपदीय सिक्के मिलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छठी शती ई० पू० में उत्तर भारत में छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गए जिनके द्वारा चलाये गये सिक्कों पर ब्राह्मी भाषा में राजा का नाम एवं राज्य के चिन्ह पृष्ट भाग पर एवं पुरोभाग पर देवता की आकृति प्रदर्शित की गई। पाणिनि (चौथी शती ई० पू०) ने भी अपने एक सूत्र में आहत कार्षापण का उल्लेख किया है। इन मुद्राओं को देखकर पाणिनि के "रूपादाहत प्रशंसयोर्यप्" सूत्र का अर्थ ठीक प्रकार से समझा जा सकता है।

यहाँ कुषाणकालीन सिक्के भी अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। भारत में विदेशी आक्रमणकारियों के रूप में ग्रीक, सीथियन, पार्थियन एवं कुषाणों के आगमन से सिक्कों के निर्माण में निखार आया और यहाँ सोने, चाँदी, ताँबे एवं मिश्रित धातुओं के सिक्के भी चलन में आये, जिन्हें क्रमशः स्टेटर, ड्रकम, चेलकान एवं ओबोल नाम दिया गया। इन पर राजा की आकृति एवं लेख एक ओर, और देवता दूसरी ओर उकेरे गए हैं। इस संग्रहालय में वीमकड़फाइसिस, कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव आदि कुषाणराजाओं के सिक्के संग्रहीत हैं। ये अधिकतर ताँबे के हैं जो तत्कालीन आर्थिक स्थिति के साथ-साथ प्रतिमाविज्ञान के भी सजीव प्रमाण हैं। यहाँ राष्ट्रकूट एवं यौधेयों के सिक्के भी दर्शनीय हैं।

भारत में गुप्तशासकों का समय सिक्कों के इतिहास में भी विभिन्नताओं और कारीगरी के लिए विशेष महत्त्व रखता है। इस समय के भी अनेक सिक्के संग्रहीत हैं। इन सिक्कों को देखने से स्पष्ट होता है कि इस काल के शासकों ने सिक्कों से विदेशीपन मिटाकर भारतीय परम्परा के अनुसार ही बनवाया। इन सिक्कों में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की धनुर्धर शैली की स्वर्णमुद्रा और स्कन्दगुप्त की धनुर्धर शैली का ताम्र सिक्का भी दर्शनीय है। इस समय के सोने के सिक्के दीनार कहलाये, ये वजन में कुषाणकालीन सिक्कों जैसे ही हैं। इस समय के चाँदी तथा ताँबे के सिक्के भी संग्रहीत हैं। इनमें से कुछ सिक्के वे हैं जो चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने पश्चिमी क्षत्रपों को हराने के बाद चलाये, जो आकार एवं माप में छोटे हैं।

भारत के विविध युगों तथा प्रदेशों और गणतन्त्र में विलीन तत्कालीन रियासतों तथा शासनखण्डों के सिक्कों में कुछ उल्लेखनीय हैं—इन्दौर, गोरखपुर, कन्नौज, उदयपुर, मैसूर, ट्रावनकोर, सौराष्ट्र, गुजरात, बड़ौदा, नेपाल, हैदराबाद, जोधपुर, देवास, झाँसी, मालवा, भरतपुर, नवानगर, पोरबन्दर, नाभा, रतलाम, मालेर कोटला, टिहरी, भोपाल, टोंक, बीकानेर, उज्जैन, जैसलमेर, पटियाला, चित्रकूट आदि।

संग्रहालय में कन्नौज और गुर्जर प्रतिहार राजाओं के सिक्के भी संग्रहीत हैं। यहाँ मध्यकालीन सिक्कों में वृषभ एवं अश्वारोही प्रकार के सिक्कों में, गुलाम वंश, खिलजी वंश तथा तुगलक वंश आदि के अनेक सिक्के संग्रह किए गए हैं। मुस्लिम सिक्कों पर अरबी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा में लेख अंकित किए गए हैं, जिनमें एक ओर राजा का नाम, टकसाल का नाम, अंकों एवं शब्दों में तिथियाँ तथा एक ओर कलमा मिलता है। इस प्रकार के मुस्लिम शासकों के कुछ नाम उल्लेखनीय हैं जिनकी मुद्राएँ तत्कालीन मुद्राकला की सम्यक् रूप हैं—

बलवन, अलाउद्दीन खिलजी, शम्शुद्दीन अल्तमश, गयासुद्दीन तुगलक, मोहम्मद तुगलक, इस्लामशाह, मुबारकशाह, फिरोजशाह, बहलोलशाह, शेरशाह, अकबर, जहाँगीर आदि।

यहाँ विश्व के कुछ देशों की भी मुद्राएँ संग्रह की गई हैं और वे संसार की मुद्राकला तथा उसके वैविध्य को एक ही स्थान पर प्रस्तुत करती हैं। उनमें से हैं ग्रेट ब्रिटेन, इंग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया, निदरलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, वोर्नियो, नार्वे, संघाई, फ्रांसिसी, हिन्द-चीन, साइप्रस, ईरान, अफगानिस्तान, एशियाई टर्की, फिलिस्तीन, मिश्र, जापान, चीन, जर्मनी, हंगरी, बेल्जियम, पुर्तगाल, डेनमार्क, रूस, अमेरिका, मौरिशस, फ्रांस, टर्की, आर्जेन्टाइना, बिलोचिस्तान, यूनान, कनाडा, अफ्रीका, हालैण्ड, लेबनान, इण्डोचायना, कांगो, अबोसीनिया, पाकिस्तान, मलाया आदि।

इनके अतिरिक्त अनेक मुद्राएँ ऐसी भी हैं जो भारत में ब्रिटिश शासन के समय विदेशी शासकों, जैसे विक्टोरिया, एडवर्ड, जार्ज आदि ने निर्माण कराके प्रचलित की थीं। ये अधिकतर ताम्रनिर्मित हैं और अनेक मुद्राएँ बहुत साफ तथा सुन्दर दृश्यों से युक्त हैं। ये दर्शकों को भारत पर विदेशीसत्ता का स्मरण दिलाती हैं।

इन मुद्राओं के अतिरिक्त इस वीथिका में कुछ देशों के नोट भी प्रदर्शित किए गए है। यहाँ मुद्राओं तथा नोटों का यह बृहद् संग्रह, जहाँ मुद्राशास्त्र के ज्ञाताओं के लिए शोधकार्य में सहायक है, वहाँ जनसाधारण के लिए ज्ञानवर्धक और मनोरंजक भी है। संग्रहालय में संग्रहीत नोट मुख्यतया इटली, जापान, रूस, फ्रांस, हांगकांग, यूनान, स्याम, मौरिशस, अफगानिस्तान, जर्मनी, चीन, नेपाल आदि देशों के हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिहर-हिरण्यगर्भ

शशिकान्त पाठक एवं अनामिका पाठक
राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

भारत में समय-समय पर विभिन्न धर्मों के मध्य धार्मिक सामंजस्य एवं सद्भावनाएँ बनती रही हैं, प्रतीक रूप में अनेक युग्म-प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। हरिहर हिरण्यगर्भ शीर्षक मूर्ति ब्राह्मणधर्म के विभिन्न सम्प्रदाओं के मध्य धार्मिक सामंजस्य का भाव व्यक्त करने वाली मूर्तियों में से एक है। धार्मिक सहिष्णुता की इस विचारधारा का उद्भव गुप्तकालीन कला में परिलक्षित होता है। एक स्तम्भ के चारों ओर ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं सूर्य की मूर्तियाँ उकेरी गई हैं। ऐसी एक मूर्ति राष्ट्रीय संग्रहालय में संग्रहीत है।[1] कालान्तर में एक ही मूर्ति में इन चारों देवताओं का समावेश किया गया। ऐसी ही एक मूर्ति का वर्णन यहाँ पर किया गया है और जो राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है।

त्रिमुखी एवम् अष्टभुजी यह देवप्रतिमा योगासनमुद्रा में कमलासन पर असीन है (चित्र संख्या १)। चतुर्थ मुख की कल्पना पीछे की ओर की गई है। सभी शीर्ष मुकुटधारण किए हुए हैं एवं विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित हैं। सबसे ऊपर के हाथों में चक्र एवं गदा हैं जो कि विष्णु का प्रतिनिधित्व करते हैं, इसके पश्चात् के दोनों हाथ कमलपुष्प से सुसज्जित हैं जो कि सूर्य का प्रतीक है, तीसरी जोड़ी हाथ सर्प एवं खंडित आयुध, सम्भवतः खट्वांग से युक्त हैं जो कि शिव का द्योतक हैं। सबसे नीचे के हाथ कलश एवं माला को पकड़े हुए हैं जो कि ब्रह्मा के परिचायक हैं। इन आयुधों के अतिरिक्त इन देवताओं के वाहन भी इन देवताओं की उपस्थिति का ज्ञान कराते हैं। कमलासन के ठीक नीचे दाहिनी ओर नन्दी एवं गरुड़ तथा बांयी ओर हंस एवं अश्व विद्यमान हैं। यह प्रतिमा दो अर्धस्तम्भों के मध्य बने हुए प्रकोष्ठ में उकेरी गई है। इस प्रकोष्ठ के बाहरी ओर व्याल की आकृतियाँ बनी हुई हैं। ऊपर की ओर ज्यामिती के अलंकरण से सुसज्जित शिखर हैं। इसकी पूरी वास्तुकला अपने आप में एक मन्दिर के समान है। राजस्थान की यह प्रतिमा 15वीं शती की है।

इस प्रतिमा में कलाकार ने चारों देवताओं ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं सूर्य का समावेश किया है, अतः यह प्रतिमा हरिहर-हिरण्यगर्भ की है। तेरहवीं शती के भुवनदेवकृत अपराजितपृच्छा में इस प्रकार की प्रतिमा को हरिहर-हिरण्यगर्भ नाम दिया गया है।[2]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्वक्त्रं चाषटबाहुं चतुष्केरुनिवासनम् ।
ऋज्वागतो मुखः कार्यः पद्महस्तो दिवाकरः ॥
खट्वांगत्रिशूलहस्तो रूद्रो दक्षिणातः शुभः ।
कमण्डलुं चाक्षसूत्रमपरे स्यात् पितामहः ॥
वामे तु संस्थितश्चव शंखचक्रधरो हरिः ।
(२१३, ३२-३४)

अर्थात् हरिहर-हिरण्यगर्भ की प्रतिमा चतुर्मुखी और अष्टभुजी हो और इसमें चारों देवताओं का निवास हो, सामने की ओर सूर्य दो (प्राकृतिक) हाथों में पद्म, दाईं ओर शिव खट्वांग और त्रिशूल, बाईं ओर विष्णु शंख और चक्र तथा (पीछे की ओर) ब्रह्मा कमण्डलु और अक्षमाला धारण किए हुए चित्रित हों। त्रिमूर्ति के साथ सूर्य की एकात्मकता का उल्लेख शास्त्रों में मिलता है। मार्तण्डपुराण में सूर्य के त्रिधास्वरूप को ही ब्रह्मा, शिव एवं विष्णु का शरीर बताया गया है।[3] शरदातिलकतंत्र के एक मंत्र में भी ब्रह्मा, शिव एवं विष्णु के साथ सूर्य की एकात्मकता का उल्लेख हुआ है।[4]

वेदत्पादं चतुर्थ्यन्तं ब्रह्माविष्णुशिवात्मकम् ।
सौराय योगपीठाय नमः पद्मनन्तरम् ।
पीठमन्त्रोड यमाख्यातो दिनेशस्य जगत्पतेः ॥
(१४ - ४१ - ४२)

शिव, विष्णु और ब्रह्मा से संयुक्त सूर्य की प्रतिमा का विवरण शिल्प-शास्त्रों में भी मिलता है। ऋग्वेद में भी सूर्य के संदर्भ में एक स्थल पर कहा गया है कि ऋषि आदि वस्तुतः एक ही अनन्तेश्वर को विभिन्न रूपों में देखते रहे हैं। वे अपनी दृष्टि के अनुरूप कभी इन्द्र, कभी अग्नि, कभी यम का नाम दिया करते हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय की मूर्ति के आयुधों में शंख एवं त्रिशूल के स्थान पर गदा एवं सर्प का चित्रण है। परन्तु दोनों ही आयुध दोनों देवताओं का समानरूप से प्रतिनिधित्व करते हैं, अतः यह विविधता इसके पहचानने में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करती है।

मध्यकाल में निर्मित युग्म-प्रतिमायें बहुतायत में मिलती हैं जिनसे तत्कालीन धार्मिक सहिष्णुता का आभास होता है। खजुराहों से इस प्रकार की छः प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं।[5] जिनमें से चार स्थानक हैं और दो आसन पर विद्यमान हैं। खजुराहों के प्रतापेश्वर मन्दिर की जगती में जुड़ी इसी प्रकार की प्रतिमा का सुन्दर चित्रण मिलता है (चित्र-२)। इसमें देवता पद्मपीठ पर पद्मासन मुद्रा में बैठे हैं। इसके तीन मुख और आठ भुजाएँ हैं। दो हाथों में पूर्ण विकसित पद्म रहे हैं जो कि अब टूटे हुए हैं। शेष तीन दाएँ हाथों में अक्षमालायुक्त वरद-मुद्रा, चक्र और त्रिशूल धारण किए हैं। बाएँ हाथों में क्रमशः सर्प, शंख,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कमण्डलु हैं। पद्मपीठ के नीचे सप्ताश्व उत्कीर्ण हैं। इस प्रतिमा एवं राष्ट्रीय संग्रहालय की प्रतिमा के आयुधों में थोड़ा-सा अन्तर है। इसमें विष्णु की गदा के स्थान पर शंख, शिव के खट्वांग के स्थान पर त्रिशूल हैं। इस मूर्ति में सूर्य को प्रमुखता दी गई है क्योंकि पद्मपीठ में नीचे सप्ताश्व उत्कीर्ण हैं। जबकि राष्ट्रीय संग्रहालय की प्रतिमा में सभी देवताओं को बराबर स्थान दिया गया है। इसी प्रकार की एक अन्य मूर्ति खजुराहों के दूलादेव मन्दिर में स्थापित हैं।[6] आयुधों एवं धारण करने के क्रम के अन्तर को क्षेत्रीय विविधता के रूप में लिया जा सकता है। गुजरात के ढेलमल स्थल में लिम्बोजी माता मन्दिर में भी इसी प्रकार की मूर्ति (चित्र संख्या ३) है, जिसमें तीन मुखवाली एवं अष्टभुजा वाली यह प्रतिमा कमलपुष्प, त्रिशूल, सर्प एवं कलश से युक्त योगासन में विद्यमान है। एक हाथ वरदमुद्रा में है तथा दो अन्य खण्डित हाथों में विष्णु के आयुध रहे होंगे।[7] इस मूर्ति में प्रस्तुत मूर्ति के समान गरुड़, हंस एवं नन्दी वाहनों के रूप में आसन के नीचे विद्यमान हैं। सूर्य के वाहन अश्व का यहाँ अभाव है किन्तु पैरों में जूते एवं कमलपुष्प सूर्य का पूर्ण आभास कराते हैं।

झाँसी जिले के चंदपुर से 10वीं शती की हरिहर-हिरण्यगर्भ की एक प्रतिमा स्थानकमुद्रा में प्राप्त हुई है।[8] सारनाथ संग्रहालय में भी एक प्रतिमा संग्रहीत है[9] जिसमें सूर्य को विशिष्टता मिली है जबकि राष्ट्रीय संग्रहालय की इस प्रतिमा में चारों इष्टदेवों को बराबर स्थान मिला है, यही इस प्रतिमा की विशिष्टता है।

महाराष्ट्र के चाँदा जिले के मार्कन्डा मन्दिर से प्राप्त हरिहर-हिरण्यगर्भ की मूर्ति में सप्ताश्व एवं सारथी अरुण का भी चित्रण है। विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त इन मूर्तियों के अलावा गुजरात, महाराष्ट्र[10] राजस्थान[11], मध्यप्रदेश यहाँ तक कि दक्षिण भारत में भी इस युग्मप्रतिमाओं के निर्माण की विचारधारा को बल मिला और जिसके फलस्वरूप अनेक ऐसी प्रतिमाओं का अंकन किया गया। विभिन्न धर्मों के मध्य सौहार्द की भावना फैलाने हेतु इन प्रतिमाओं के अर्चन को प्राथमिकता दी गई।

सन्दर्भ—

१. सी० शिवराममूर्ति; राष्ट्रीय संग्रहालय बुलेटिन अंक – ३, पृष्ठ — १-७।

२. भुवनदेव, अपराजितपृच्छा, २१३, ३२-३४; गा०ओ०सि० बड़ौदा, १९५०।

३. मार्तण्डपुराण, १०९, ७२।

४. आर्थर एवलांन, शरदातिलकतन्त्र, १४; ४१-४२, कलकत्ता, १९३३।

५. रामश्रय अवस्थी, खजुराहों की देव-प्रतिमाएँ, पृष्ठ — १७७-१८१; आगरा, १९६७।

६. उर्मिला अग्रवाल, खजुराहों स्कल्पचर्स एण्ड देयर सिगनीफिकेन्स, पृष्ठ — १०६; चित्र संख्या ७९, नई दिल्ली — १९८०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७. आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इण्डिया, अंक—९, आर्गकलेक्चरल एन्टीक्यूटीस आफ नार्दन गुजरात, पृष्ठ—८८-८९।

८. एस०बी० सिंह, "एनकौटिक आईकोनस इन उत्तर प्रदेश" ईस्ट एण्ड वेस्ट, अंक २३; न: ३-४; १९७३।

९. वही।

१०. रामश्रय अवस्थी, खजुराहों की देव-प्रतिमाएँ, १७९-१८१, आगरा, १९६७।

११. एस०आई०आई० जे०जी०, पृष्ठ—२३६, चित्र संख्या १४४।

१२. आर०सी० अग्रवाल, अदर लाइब्रेरी बुलेटिन, अंक—१८, पार्ट—३-४, पृष्ठ—२५९-६०।

अन्त में डा० शशि अस्थाना (संग्रहपाल, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली) के सहयोग एवं प्रोत्साहन के लिए और श्री एन० शाह (फोटो आफिसर, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली) के फोटोसहयोग हेतु आभार व्यक्त करना चाहते हैं जिनके सहयोग बिना यह शोध पूरा हो पाना कठिन था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृति के विविध आयाम

डा० सन्तराम वैश्य
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, गु० कां० वि० हरिद्वार

संस्कृति मूलरूप से इतिहास का अंग है, किन्तु इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसमें साहित्य, संगीत, कला, धर्म, दर्शन, लोकवार्ता, राजनीति, अर्थनीति आदि सभी का समावेश होता है। धर्म, साहित्य, राजनैतिक परिस्थिति तथा सामाजिक संगठन—ये चार कसौटियाँ हैं जिनसे संस्कृति के इतिहास का पता चलता है। इसमें से धर्म के अन्तर्गत दर्शन; साहित्य में भाषा; तथा सामाजिक संगठन में जाति-व्यवस्था एवं शिक्षा, कला आदि का भी समावेश हो सकता है। कला, साहित्य एवं विभिन्न संस्थाएँ, संस्कृति के कार्य हैं जो इसको परिच्छिन्न तथा मूर्तरूप देते हैं। संस्कृति मानव के सामाजिक व्यवहारों को निश्चित करती है, उनकी संस्थाओं को चलाती है, साहित्य तथा भाषा का निर्माण करती है तथा जीवन के आदर्श एवं सिद्धान्तों को प्रकाश देती है। निश्चय ही संस्कृति का धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, संगीत इत्यादि से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है।

संस्कृति और साहित्य—

संस्कृति ने ही साहित्य को जन्म दिया है। इस नाते साहित्य भी संस्कृति के विकास में अपूर्व योग देता है। साहित्य में हमें जहाँ समाज के दर्शन होते हैं वहीं उसमें परोक्षरूप से संस्कृति की भी झलक मिलती है। संस्कृति समाज की आत्मा तथा उसका व्यक्तित्व है। "संस्कृति की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है तो साहित्य के द्वारा संस्कृति का पोषण भी होता है। साहित्य जहाँ जीवन का प्रतिनिधित्व करता है, वहाँ उसका संचालक भी है। जहाँ वह संस्कृति का चित्र खींचता है वहाँ उसे प्रेरणा भी देता है। संस्कृति के सभी सत्-तत्त्व साहित्य में संरक्षण पाते हैं, जिनका अध्ययन एवं अनुशीलन अध्येता के अन्दर विचारों को उत्तेजित करता है और परिणामतः चिन्तन का क्षेत्र उर्वर बनता है।"[1]

संस्कृति और धर्म—

संस्कृति का धर्म से भी बड़ा गहरा सम्बन्ध है। यद्यपि यह अपनी अभिव्यक्ति कला एवं साहित्य के माध्यम से पाती है, लेकिन इसका प्रतिबिम्ब धर्म और उपासना में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही झलकता है। धर्म बहुत व्यापक शब्द है। मोटेरूप में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि किसी वस्तु का वस्तुत्व ही उसका धर्म है। जैसे मनुष्यता ही मनुष्य का प्रकृत धर्म है। यशदेव शल्य के शब्दों में— "धर्म मानवीय अर्थ अथवा अन्वेषण के उस रूप को कह सकते हैं जो जीवन का लक्ष्य लोकोत्तर और परमचैतन्य की स्थिति की प्राप्ति को, अथवा परमचैतन्य के बोध की योग्यता की प्राप्ति को स्वीकार करता है। इस प्रकार से धर्म एक मूल्यबोध है, क्योंकि 'उत्कर्ष' इसके लिए मूल प्रत्यय है और उसका अन्वेषण या उपलब्धि इसकी मूल प्रेरणा।"[2]

धर्म और संस्कृति का आपस में कोई विरोध नहीं है। दोनों में अन्तर केवल इतना ही है कि धर्म में जहाँ श्रुतियों, स्मृतियों और पुराणग्रंथों का आधार रहता है, वहाँ संस्कृति में परम्परा का। धम देशनिरपेक्ष है किन्तु संस्कृति का सम्बन्ध देश से अधिक है। संस्कृति को धर्म से अलग करके न देखना ठीक नहीं है। डा० त्रिभुवनसिंह के शब्दों में—"प्रायः लोग संस्कृति को धर्म से अलग करके नहीं देख पाते और इस प्रकार वे संस्कृति के परिवेश को अत्यन्त सीमित कर देते हैं। जिस प्रकार कलाओं का उदय मानवजीवन को सुखमय बनाने के लिए समय-समय पर होता रहता है, उसी प्रकार समय-समय पर धर्म की रूपरेखा भी निश्चित होती रहती है। धर्म मानवनिर्मित है, धर्म मानव का निर्माता नहीं। कभी-कभी तो धर्म का अन्धानुकरण समाज के विकास में घातक सिद्ध होता है। इसीलिए कार्ल मार्क्स ने धर्म को अफीम की संज्ञा दी है जो लोगों को सही दिशा सोचने ही नहीं देता।"[3]

संस्कृति और दर्शन—

संस्कृति का दर्शन से भी बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। "संस्कृति की समग्रता की खोज करने के लिए उसके विचारसाहित्य का अनुशीलन आवश्यक होता है। दर्शन ही इस विचारसाहित्य के आगार हैं। संस्कृति की गहनता, गम्भीरता, विशालता, स्थिरता और प्राचीनता आदि विभिन्न पहलुओं का सम्यक् विश्लेषण दर्शनसाहित्य में ही निहित होता है।"[4]

संस्कृति और कला—

संस्कृति का धर्म और दर्शन की तरह कला से भी गहरा सम्बन्ध है। कला वह है जो मनुष्य को मनुष्य बनाती है, उसे पशु के सामान्य धरातल से ऊपर उठाती है। इससे हमें सुख मिलता है तथा हमारे ज्ञान की वृद्धि होती है। इसके साथ ही कला से हमारी सौन्दर्यभावना में निखार भी आता है। स्थूलजीवन में संस्कृति की अभिव्यक्ति कला को जन्म देती है। इसका सम्बन्ध जीवन के मूर्त्तरूप से है। यदि संस्कृति, मन और प्राण है तो कला उसका शरीर। मानवजीवन में दोनों की उपयोगिता है। संस्कृति इसलिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

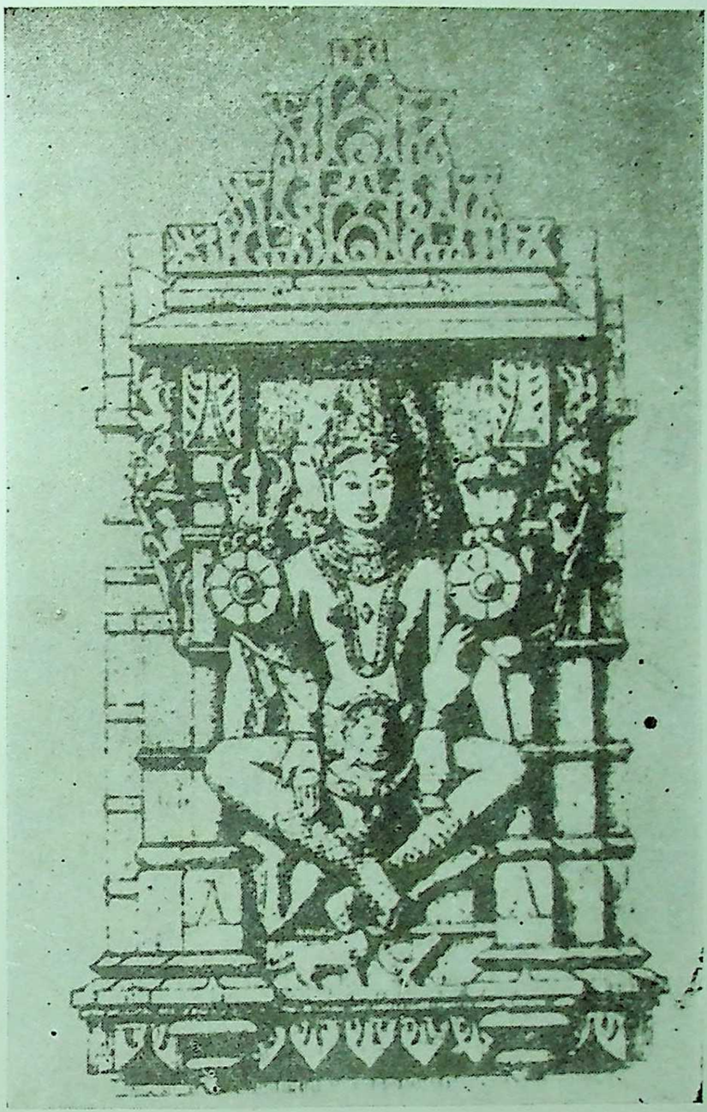

गुजरात के देलमल स्थल में लिम्बोजी माता मन्दिर में से प्राप्त हरिहर-हिरण्यगर्भ मूर्ति।

तीन मुख एवम् अष्टभुजा वाली यह प्रतिमा कमलपुष्प, त्रिशूल, सर्प एवम् कलश से युक्त योगासन में विद्यमान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिहर-हिरण्यगर्भ प्रतिमा—त्रिमुखी एवं अष्टभुजी यह देवप्रतिमा योगासनमुद्रा में कमलासन पर आसीन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

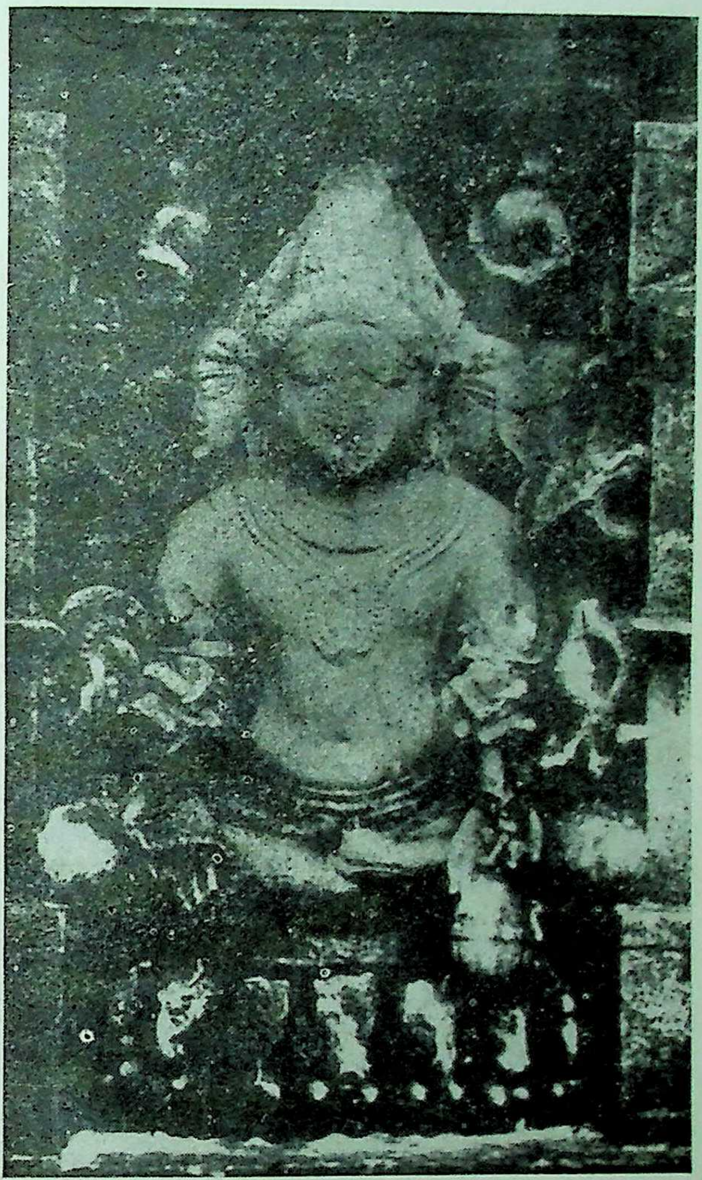

खजुराहों के प्रतापेश्वर मन्दिर की जगती में जुड़ी हरिहर-हिरण्यगर्भ प्रतिमा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक है कि भविष्य में विचारों की दासता से मानव की रक्षा हो और कला इसलिए आवश्यक है कि यान्त्रिक दासता से मनुष्य अपने को बचा सके।

संस्कृति और लोकवार्त्ता :

लोकवार्त्ता के माध्यम से संस्कृति का स्वरूप सुरक्षित रहता है। लोकवार्त्ता का जन्म जनता के मानस में होता है। यदि इनका संग्रह किया जाए तो उस आधार पर स्थान या देश-विदेश के निवासियों की अतीत से लेकर अब तक की बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक अवस्था का एक सम्पूर्ण चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाएगा।

इन लोकवार्त्ताओं में लोकजीवन की भौतिक एवं धार्मिक चेतना का मूलस्रोत निहित रहता है। अन्ततः ये मानवसमुदायों के सांस्कृतिक दृष्टिकोण एवं जीवनमूल्यों को निर्धारित कर लोकजीवन को स्थिरता एवं स्थायित्व प्रदान करती हैं। संस्कृति के एकीकरण में इनका बहुत बड़ा हाथ होता है।

संस्कृति और संगीत :

संगीत के माध्यम से ही संस्कृति स्थायित्व प्राप्त करती है और साथ ही गति भी। लोकगीत, मानवहृदय के सच्चे उद्‌गार होते हैं। इनमें जीवन का निष्कपट अभिव्यंजन होता है। लोकगीतों के प्रत्येक शब्द में जीवन की यथार्थचेतना घुली-मिली रहती है। लोकगीत, समुदाय की भावनाओं के सच्चे प्रतीक होते हैं। ये जीवनमूल्यों पर प्रकाश डालते हैं। इनमें लोकजीवन के सुख-दुःख, माधुर्य और करुणा तथा अश्रु और हास का भावपूर्ण चित्रण रहता है। केवल प्रेम और विरह ही नहीं, जीवन के अन्य पक्षों की भी मार्मिक अभिव्यक्ति करने की क्षमता इन गीतों में होती है। इस तरह संगीत, संस्कृति के स्वरूप को सुरक्षित रखता है तथा इसे गति भी प्रदान करता है।

संस्कृति का प्रसार मात्र धर्म, दर्शन और कला तक ही सीमित नहीं है, वरन् इसका सम्बन्ध व्यक्ति, कुल, समाज, जाति तथा राष्ट्र से भी है। यह (संस्कृति) व्यक्ति, कुल, समाज, जाति तथा विश्वभर के समक्ष आदर्शों की प्रतिष्ठा करती है। ये आदर्श परम्परा में परिचालित तथा पोषित होकर अनेक पीढ़ियों तक चलते रहते हैं और आगे आने वाली संतति को प्रेरणा भी देते रहते हैं।

सस्कृति और व्यक्ति :

यद्यपि संस्कृति के निर्माण में व्यक्ति का हाथ रहता है; लेकिन वह व्यक्तिगत अथवा थोड़े से ही व्यक्तियों की वस्तु नहीं होती और न ही इसे व्यक्तिविशेष के प्रयत्न का परिणाम ही कहा जा सकता है। सच पूछा जाए तो संस्कृति, समाज के अनगिनत व्यक्तियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामूहिक प्रयत्न का परिणाम होती है और यह प्रयत्न भी ऐसा जिसे एक के बाद एक आने वाली मनुष्यों की विविध संततियाँ निरन्तर करती रहती हैं।

संस्कृति और परिवार :

व्यक्ति से ऊपर उठकर संस्कृति, परिवार के स्तर पर आती हैं। परिवार को ही मानवसंस्कृति की आरम्भिक पाठशाला कहा जाता है। परिवार में हम जिस संयम, त्याग और सेवा आदि की भावना का अभ्यास करते हैं, उसके प्रयोग की समाज में पग-पग पर जरूरत होती है।

संस्कृति और समाज :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः उसकी संस्कृति का विकास भी सामाजिक व सामूहिक रूप में होता है। संस्कृति ही समाज के विकास के प्रवाह का दिशानिर्धारण करती है। जब किसी समाज के अधिकाँश व्यक्ति अच्छे चरित्र और स्वभाव वाले, स्वावलम्बी परिश्रमी और एक-दूसरे के प्रति सद्भावना और सहानुभूति रखने वाले हों तो वह समाज निरन्तर उन्नति करता रहता है। इतना ही नहीं उसका नैतिकस्तर भी ऊँचा होता है। वह समाज सुसंस्कृत समाज कहलाता है। उसकी संस्कृति ऊँचे दर्जे की संस्कृति मानी जाती है।

संस्कृति और जाति :

जातिगत आधारों पर भी संस्कृति का वर्गीकरण होता है, जैसे—भारतीय संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति आदि। अलग-अलग प्रदेश के निवासियों में भौगोलिकस्थिति, वातावरण तथा जलवायु आदि की भिन्नता के कारण कुछ असमानताएँ हो जाना स्वाभाविक है। यही कारण है कि विविध भूखण्डों के निवासियों में विकास की प्रवृत्ति और दिशाओं में समानता होते हुए भी कुछ भेद हो जाता है। वे अपने सामाजिक संगठन, रीति-व्यवहार, जीवन के उद्देश्य या ध्येय आदि के सम्बन्ध में अलग-अलग विचारों और धारणाओं या विश्वासों वाले हो जाते हैं। अतः एक प्रदेश के निवासियों की बहुत-सी परम्पराएँ दूसरे प्रदेश के निवासियों से अलग ढंग की हो जाती हैं। मेरी समझ में संस्कृति का इस तरह जातिगत विभाजन उचित नहीं है। मनुष्यजाति एक है, अतः उसकी संस्कृति भी एक ही है।

संस्कृति और राष्ट्र :

संस्कृति के विकास की अगली मंजिल् राष्ट्र है। विचार और कर्म के क्षेत्र में राष्ट्र का जो सृजन है वही उसकी संस्कृति है। संस्कृति के अभ्युदय और विकास के द्वारा ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र का अभ्युदय और विकास सम्भव है। यदि राष्ट्र को संस्कृति से अलग कर दिया जाए तो वह कबन्धमात्र रह जाएगा। संस्कृति के आलोक में ही राष्ट्र पुष्पित-पल्लवित होता है।

संस्कृति और विश्व :

संस्कृति का स्वरूप किसी जाति या राष्ट्रविशेष तक ही सीमित नहीं रहता अपितु वह विश्वजनीन होता है। संस्कृति ही ऐसी है जो विश्व-बन्धुत्व की भावना का विकास करती है और मानवमात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, द्वेष, घृणा, स्वार्थ, घमंड, क्रूरता इत्यादि हिंसात्मक भावों को समाप्त कर इनकी जगह प्रेम, सद्भाव, सहानुभूति, सहयोग, सेवा, त्याग तथा उपकार आदि की भावना का विकास करना ही संस्कृति का उद्देश्य है।

इस तरह संस्कृति की पैंठ हमारे जीवन में बहुत गहराई तक है। यह हमारे सम्पूर्ण जीवन को आच्छादित किए हुए है, जीवन का कोई अंग इससे अछूता नहीं है। राजनीति, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र, विज्ञानादि सभी को आत्मसात करते हुए संस्कृति एक ऐसा व्यापक एवं विस्तृत परिवेश प्रस्तुत करती है जिसमें रहकर हम अपने जीवन का सर्वांगीण विकास कर सकते हैं।

सन्दर्भ :—

१—वैदिक संस्कृति और सभ्यता—डा० मुंशीराम शर्मा, पृ० १७।
२—संस्कृति : मानव कर्त्तृत्व की व्याख्या—यशदेव शल्य, पृ० ११७।
३—'शांतिनिकेतन से शिवालिक तक—सम्पा० डा० शिवप्रसाद सिंह' से उद्धृत।
४—भारतीय संस्कृति और कला—वाचस्पति गैरोला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारतीय युद्धनियम

डा० रामसिंह
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जगत के प्रारम्भिक विकास के साथ ही युद्ध की भावना मानवता के साथ जुड़ी हुई है। विकास का ऐसा कोई भी युग दृष्टिगत नहीं होता, जहाँ चेतनप्राणियों के बीच युद्ध न हुआ हो। फीचर्ड के अनुसार "युद्ध, आँधी, भूकम्प, ज्वालामुखी तथा प्रवाहित तरंग की तरह प्राकृतिक दृश्य है। अतीत, वर्तमान तथा भविष्य सभी कालों में यह तरंग लहराती दिखायी देती है।" युद्ध बर्बरता का ही चिह्न न बन जाय, इसे रोकने के लिए प्राचीनकाल से ही प्रयास होते रहे हैं। एक पक्ष जब दूसरे पक्ष से युद्धरत हो उस समय युद्धसम्बन्धी कुछ नियमों का पालन आवश्यक हो जाता है। प्राचीन काल में जब कभी दो दल किसी संधिस्थल पर एकत्रित होते थे और नियम बनाते थे तब वे ही नियम उनके लिखित युद्धनियम हो जाते थे, किन्तु उन नियमों में लोक-कल्याण का ध्यान रखा जाता था।

प्राचीनग्रन्थों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि महाकाव्यकाल से पूर्व युद्धविषयक नियमों का विधिवद्ध उल्लेख नहीं हुआ था। भीष्मपर्व में वर्णन है कि जिस समय कुरुक्षेत्र में सोमकों सहित पाण्डवों तथा कौरवों की सेना युद्धभूमि में आई, उस समय उन लोगों ने आपसी समझौते के अनुसार युद्ध के सम्बन्ध में कुछ नियमों का निर्धारण किया और युद्धधर्म की प्रतिष्ठा स्थापित की[1]। युद्ध के उन नियमों का उल्लेख परवर्ती ग्रन्थों में भी मिलता है किन्तु समयानुसार उनमें परिवर्तन एवं परिवर्धन भी होता गया।

प्राचीनतम साहित्यिक ग्रन्थों में नीति के लिए 'नय' शब्द उल्लिखित हुआ है, जो संख्या में चार हैं—साम अर्थात् सन्धि की नीति, दान अर्थात् कुछ धन आदि देकर किसी राज्य को प्रसन्न करने की नीति, भेद अर्थात् फूट उत्पन्न करने की नीति तथा दण्ड अर्थात् युद्ध की नीति। इन नीतियों में से किसी राजा के साथ किस प्रकार की नीति का प्रयोग किया जाना चाहिए, ग्रन्थों में इसका विस्तृत उल्लेख है। महाभारत[2] के अनुसार अपने समान पराक्रम वाले राजा के साथ साम और भेद की नीति, अपने से सशक्त के साथ दान की नीति, अपने से कमजोर के साथ दण्ड की नीति का; आचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौटिल्य[3] के अनुसार दुर्बल राजा को अधीन करने के लिए साम और दण्ड की तथा प्रबल राजा के साथ भेद की नीति का; शुक्राचार्य[4] के अनुसार सशक्त शत्रु राजा द्वारा त्रस्त राजा के साथ साम और दान की, अपने से सबल राजा के साथ साम एवं भेद की, तथा समबल वाले राजा के साथ दण्ड की नीति का प्रयोग करना चाहिए।

युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व सर्वप्रथम सामनीति ही प्रयुक्त होती थी। भीष्म के अनुसार चतुरंगिणी सेना एकत्र करने के बाद भी सर्वप्रथम सामनीति द्वारा ही शत्रु से संधि करने का प्रयास करना चाहिए। इस कार्य में असफलता मिलने पर ही युद्ध करना न्यायसंगत है[5]। मनुस्मृति[6] में भी सामनीति से शत्रु पर विजय करने का उल्लेख है। इस ग्रन्थ में यह स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि पहले युद्ध द्वारा विजय प्राप्त करने की चेष्टा कदापि नहीं करनी चाहिए, क्योंकि युद्ध में दोनों पक्षों में से किसी पक्ष की विजय तथा पराजय सुनिश्चित रहती है, इसलिए युद्ध सर्वथा त्याज्य है। इसी प्रकार का वर्णन याज्ञवल्क्यस्मृति[7], कामन्दकनीतिसार[8] तथा शुक्रनीति[9] में भी मिलता है।

उपर्युक्त ग्रन्थों के इन उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय विचारकों ने साधारणतया शस्त्रबल की अपेक्षा बुद्धिबल के प्रयोग को उचित माना है। क्योंकि युद्ध प्रारम्भ होने के पहले सामनीति का ही सर्वप्रथम उपयोग बतलाया गया है। दण्ड का प्रयोग उस स्थिति में किया जाता था, जब उपर्युक्त तीन नीतियों से विजय असम्भव प्रतीत होती थी।

यदि कोई राजा किसी अन्य राजा को अपने अधीन करना चाहता था तो उसको युद्ध करने के पहले दूत भेजकर सूचित करना पड़ता था कि या तो मेरी अधीनता या शर्त स्वीकार करो या युद्ध करने के लिए तैयार रहो। रामायण तथा महाभारत में अंगद तथा श्रीकृष्ण का दूत बनकर जाना इस बात का प्रमाण है। यह परम्परा परवर्ती-काल में भी विद्यमान रही। अजातशत्रु ने वैशाली के राजा चेटक के पास सर्वप्रथम इस संदेश के साथ दूत भेजा था कि वह राजकुमारों को मुक्त कर दे, यदि ऐसा नहीं करता तो युद्ध के लिए तैयार रहे। बुद्धचरित[10] के अनुसार भगवान बुद्ध के अस्थि-अवशेष को प्राप्त करने के लिए मल्लों के पड़ोसी अन्य सात राजाओं ने सर्वप्रथम अपना-अपना दूत भेजा था। इस कार्य में सफलता न मिलने पर ही मल्लों के विरुद्ध सैन्यअभियान प्रारम्भ किया। इसी प्रकार ब्रह्मदत्त के पुत्र बोधिसत्व ने कौसलनरेश के पास सन्देशवाहक द्वारा यह सूचना दे दी थी कि या तो राज्य दे दो अन्यथा युद्ध के लिए तैयार रहो। कौसल के राजा ने काशी के राजा के नगर के बाहरी द्वार पर पहुँचकर सूचित कर दिया था कि या तो राज्य दे दो या युद्ध करो।[11] विदेशी आक्रमणकारियों ने भी इस नीति का पालन किया। यूनानी आक्रमणकारी सिकन्दर ने भारतीय नरेश पोरस के पास अपने राजदूत के माध्यम से यह संदेश भेजा था कि वह उपहार भेंटकर अधीनता स्वीकार करे या अपनी सीमा में मेसीडोनी सेना की प्रतीक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारतीय युद्धनियम

डा० रामसिंह
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जगत के प्रारम्भिक विकास के साथ ही युद्ध की भावना मानवता के साथ जुड़ी हुई है। विकास का ऐसा कोई भी युग दृष्टिगत नहीं होता, जहाँ चेतनप्राणियों के बीच युद्ध न हुआ हो। फीचर्ड के अनुसार "युद्ध, आँधी, भूकम्प, ज्वालामुखी तथा प्रवाहित तरंग की तरह प्राकृतिक दृश्य है। अतीत, वर्तमान तथा भविष्य सभी कालों में यह तरंग लहराती दिखायी देती है।" युद्ध बर्बरता का ही चिह्न न बन जाय, इसे रोकने के लिए प्राचीनकाल से ही प्रयास होते रहे हैं। एक पक्ष जब दूसरे पक्ष से युद्धरत हो उस समय युद्धसम्बन्धी कुछ नियमों का पालन आवश्यक हो जाता है। प्राचीन काल में जब कभी दो दल किसी संधिस्थल पर एकत्रित होते थे और नियम बनाते थे तब वे ही नियम उनके लिखित युद्धनियम हो जाते थे, किन्तु उन नियमों में लोक-कल्याण का ध्यान रखा जाता था।

प्राचीनग्रन्थों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि महाकाव्यकाल से पूर्व युद्धविषयक नियमों का विधिवद्ध उल्लेख नहीं हुआ था। भीष्मपर्व में वर्णन है कि जिस समय कुरुक्षेत्र में सोमकों सहित पाण्डवों तथा कौरवों की सेना युद्धभूमि में आई, उस समय उन लोगों ने आपसी समझौते के अनुसार युद्ध के सम्बन्ध में कुछ नियमों का निर्धारण किया और युद्धधर्म की प्रतिष्ठा स्थापित की[1]। युद्ध के उन नियमों का उल्लेख परवर्ती ग्रन्थों में भी मिलता है किन्तु समयानुसार उनमें परिवर्तन एवं परिवर्धन भी होता गया।

प्राचीनतम साहित्यिक ग्रन्थों में नीति के लिए 'नय' शब्द उल्लिखित हुआ है, जो संख्या में चार हैं—साम अर्थात् सन्धि की नीति, दान अर्थात् कुछ धन आदि देकर किसी राज्य को प्रसन्न करने की नीति, भेद अर्थात् फूट उत्पन्न करने की नीति तथा दण्ड अर्थात् युद्ध की नीति। इन नीतियों में से किसी राजा के साथ किस प्रकार की नीति का प्रयोग किया जाना चाहिए, ग्रन्थों में इसका विस्तृत उल्लेख है। महाभारत के अनुसार अपने समान पराक्रम वाले राजा के साथ साम और भेद की नीति, अपने से सशक्त के साथ दान की नीति, अपने से कमजोर के साथ दण्ड की नीति का; आचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौटिल्य[3] के अनुसार दुर्बल राजा को अधीन करने के लिए साम और दण्ड की तथा प्रबल राजा के साथ भेद की नीति का; शुक्राचार्य[4] के अनुसार सशक्त शत्रु राजा द्वारा त्रस्त राजा के साथ साम और दान की, अपने से सबल राजा के साथ साम एवं भेद की, तथा समबल वाले राजा के साथ दण्ड की नीति का प्रयोग करना चाहिए।

युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व सर्वप्रथम सामनीति ही प्रयुक्त होती थी। भीष्म के अनुसार चतुरंगिणी सेना एकत्र करने के बाद भी सर्वप्रथम सामनीति द्वारा ही शत्रु से संधि करने का प्रयास करना चाहिए। इस कार्य में असफलता मिलने पर ही युद्ध करना न्यायसंगत है[5]। मनुस्मृति[6] में भी सामनीति से शत्रु पर विजय करने का उल्लेख है। इस ग्रन्थ में यह स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि पहले युद्ध द्वारा विजय प्राप्त करने की चेष्टा कदापि नहीं करनी चाहिए, क्योंकि युद्ध में दोनों पक्षों में से किसी पक्ष की विजय तथा पराजय सुनिश्चित रहती है, इसलिए युद्ध सर्वथा त्याज्य है। इसी प्रकार का वर्णन याज्ञवल्क्यस्मृति[7], कामन्दकनीतिसार[8] तथा शुक्रनीति[9] में भी मिलता है।

उपर्युक्त ग्रन्थों के इन उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय विचारकों ने साधारणतया शस्त्रबल की अपेक्षा बुद्धिबल के प्रयोग को उचित माना है। क्योंकि युद्ध प्रारम्भ होने के पहले सामनीति का ही सर्वप्रथम उपयोग बतलाया गया है। दण्ड का प्रयोग उस स्थिति में किया जाता था, जब उपर्युक्त तीन नीतियों से विजय असम्भव प्रतीत होती थी।

यदि कोई राजा किसी अन्य राजा को अपने अधीन करना चाहता था तो उसको युद्ध करने के पहले दूत भेजकर सूचित करना पड़ता था कि या तो मेरी अधीनता या शर्त स्वीकार करो या युद्ध करने के लिए तैयार रहो। रामायण तथा महाभारत में अंगद तथा श्रीकृष्ण का दूत बनकर जाना इस बात का प्रमाण है। यह परम्परा परवर्ती-काल में भी विद्यमान रही। अजातशत्रु ने वैशाली के राजा चेटक के पास सर्वप्रथम इस संदेश के साथ दूत भेजा था कि वह राजकुमारों को मुक्त कर दे, यदि ऐसा नहीं करता तो युद्ध के लिए तैयार रहे। बुद्धचरित[10] के अनुसार भगवान बुद्ध के अस्थि-अवशेष को प्राप्त करने के लिए मल्लों के पड़ोसी अन्य सात राजाओं ने सर्वप्रथम अपना-अपना दूत भेजा था। इस कार्य में सफलता न मिलने पर ही मल्लों के विरुद्ध सैन्यअभियान प्रारम्भ किया। इसी प्रकार ब्रह्मदत्त के पुत्र बोधिसत्व ने कौसलनरेश के पास सन्देशवाहक द्वारा यह सूचना दे दी थी कि या तो राज्य दे दो अन्यथा युद्ध के लिए तैयार रहो। कौसल के राजा ने काशी के राजा के नगर के बाहरी द्वार पर पहुँचकर सूचित कर दिया था कि या तो राज्य दे दो या युद्ध करो।[11] विदेशी आक्रमणकारियों ने भी इस नीति का पालन किया। यूनानी आक्रमणकारी सिकन्दर ने भारतीय नरेश पोरस के पास अपने राजदूत के माध्यम से यह संदेश भेजा था कि वह उपहार भेंटकर अधीनता स्वीकार करे या अपनी सीमा में मेसीडोनी सेना की प्रतीक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करे। पोरस ने दूसरी शर्त ही स्वीकार की जिसके फलस्वरूप दोनों में युद्ध हुआ[12]। इसी प्रकार कुषाणवंशी सम्राट कनिष्क ने चीनी शासक के सम्मुख प्रारंभ में राजदूत के माध्यम से सफलता प्राप्त करनी चाही थी किन्तु इस कार्य में असफल होने पर ही उसे युद्ध करना पड़ा[13]।

प्राचीन ग्रन्थों में ऐसे लोगों की सूची दी गयी है जिनका वध युद्धकाल में वर्जित था। उदाहरणार्थ महाभारत[14] के अनुसार कलाकार, घायलों की देख-भाल करने वाले, अस्वस्थ, कृषक, आदि युद्ध के प्रकोप से बचे रहते थे। भीष्म का विचार था कि जिसने अपना शस्त्र नीचे डाल दिया हो, जो भयभीत होकर भाग गया हो, जो निहत्था हो, जो वाहनविहीन हो, जो विपत्ति में पड़ गया हो, जो गिर पड़ा हो, जो कवच-रहित हो, जो 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कह रहा हो, ऐसे सैनिकों के साथ युद्ध करना न्यायोचित नहीं। धर्मसूत्रों [15] के अनुसार जो अश्व, सारथी, आयुध आदि विहीन हो, जो पीठ दिखा रहा हो, जो दूत हो, जो ब्राह्मण हो, जो हाथ जोड़ रहा हो, जिसके बाल बिखर गये हों, ऐसे व्यक्तियों पर प्रहार नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार के अप्रहार्य लोगों की लम्बी सूची अर्थशास्त्र, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, आदि ग्रन्थों में दी गयी है।[16] दक्षिण भारतीय ग्रन्थों में भी युद्ध में अप्रहार्य लोगों के सम्बन्ध में इसी प्रकार का मिलता-जुलता रूप प्रस्तुत किया है, यथा – जो अपने बालों को संन्यासियों की तरह बांधे हुए हो, लाल तथा केसरिया वस्त्र पहने हो, जिसने अपना वस्त्र उतार दिया हो, जो संगीतज्ञ एवं नर्तक हो, आदि।

उपर्युक्त नियमों के अतिरिक्त प्राचीन मनीषियों ने युद्ध, समबल में ही होने का विधान किया था। महाभारत [18] में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अश्वारोही सैनिकों को अश्वारोही से, गजारोही को गजारोही से, रथारोही को रथारोही से एवं पदाति को पदाति सैनिकों से युद्ध करना चाहिए। महाभाष्य [19] में उल्लेख है कि प्रत्येक योद्धा अपने ही श्रेणी के सैनिकों से युद्ध करते थे। महाकवि कालिदास [20] एवं आचार्य शुक्र [21] ने भी अपने ग्रन्थों में इन नियमों का उल्लेख किया है। तत्कालीन शिल्पकला से भी समबल में युद्ध करने के नियम की पुष्टि हो जाती है। अमरावती स्तूप के शिल्पकला के अंकन में प्रत्येक सैनिक को अपने ही समान सैनिकों से युद्ध करते हुए अंकित किया गया है।

इसी प्रकार युद्धक्षेत्र में मूर्च्छित सैनिकों पर प्रहार करना वर्जित था। राम द्वारा मूर्च्छित रावण पर तब तक प्रहार नहीं किया गया जब तक कि वह स्वस्थ होकर नए धनुष एवं अन्य शस्त्रास्त्रों के साथ पुनः युद्धक्षेत्र में नहीं आ गया। [23] महाकाव्यकालीन इस परम्परा का निर्वाह गुप्तकाल तक होता रहा, क्योंकि कालिदास ने ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। उदाहरणार्थ एक घुड़सवार सैनिक ने जवाबी हमला करने में असमर्थ मूर्च्छित दूसरे घुड़सवार सैनिक पर कोई प्रहार नहीं किया बल्कि उसके होश में आने की प्रतीक्षा करने लगा। [24] इसके अतिरिक्त युद्धभूमि में कांटेदार तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष बुझे बाणों एवं कूट आयुधों का प्रयोग निषिद्ध था।[25] युद्ध के समय अपने-अपने सैनिकों को यह आदेश दिया जाता था कि वे कृषकों एवं ग्रामीणों को किसी भी प्रकार का कष्ट न दें। मेगस्थनीज ने लिखा है कि कृषकगण निश्चिन्त एवं निर्भय होकर अपना कृषिकर्म करते थे और पास-पड़ोस में भयकर युद्ध चला करते थे। लेकिन युद्धरत सैनिक उन्हें किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाते थे।[26]

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय विद्वानों ने युद्धविषयक नियमों का निर्धारण कर एक आदर्श युद्धव्यवस्था का विधान किया था, किन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि इन आदर्शों का युद्धकाल में कहाँ तक निर्वाह होता था। यदि हम उन्हीं ग्रन्थों का अध्ययन करें तो ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जो नितान्त व्यवहारपरक हैं एवं कूटनीति तथा अधर्मयुक्त हैं। इसके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। महाभारत[27] के अनुसार यदि कोई शत्रु अपने घर में आसन पर बैठा हो (युद्ध न करना चाहता हो) तो भी उसे नष्ट करने में नहीं चूकना चाहिए। इस ग्रन्थ में अभिमन्यु-वध की घटना उल्लेखनीय है, जिसमें छः महारथी एक रथहीन बालक पर बाणों की वर्षा कर रहे थे। इसी प्रकार जयद्रथ-वध, द्रोणाचार्य एवं कर्ण आदि के वध इसके अनुप्म उदाहरण हैं। अधर्मयुद्ध का प्रचलन परवर्ती काल में विशदरूप ग्रहण करता चला गया। चतुर्थ शताब्दी में सिकन्दर ने अश्वकों द्वारा आत्मसमर्पण के समय जो सन्धि की थी, उसके अनुसार अश्वकों की ओर से लड़ने वाले सैनिकों को किले से बाहर चले जाने की शर्त थी किन्तु सिकन्दर ने अपने वचन का उल्लंघन कर सैनिकों के दुर्ग से निकलने से पूर्व ही उन पर आक्रमण कर दिया और अधिकाँश सैनिकों की हत्या कर डाली। इसी प्रकार सिकन्दर ने क्षुद्रकों के साथ हुए युद्ध में उनकी स्त्रियों एवं बच्चों की भी निर्मम हत्या कर डाली जो यूनानियों द्वारा युद्धनियमों की अवहेलना का प्रतीक है। मुद्राराक्षस[28] के अनुसार राक्षस ने बीभत्सक को सुसुप्तावस्था में चन्द्रगुप्त के शरीर पर प्रहार करने का निर्देश दिया था जो अपने कार्य में सफल रहा और मारा गया। देवी चन्द्रगुप्तम् नाटक में दिए हुए विवरण के अनुसार चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने बड़े भाई रामगुप्त की स्त्री का वेशधारण कर राजा के पास जाकर उसका वध कर डाला था। इस प्रकार के अनेक उदाहरण इतिहास के पृष्ठों में भरे पड़े हैं। आचार्य कौटिल्य[29] ने तो यहाँ तक कहा है कि मार्ग में जल न पाने वाली, धान-भूसा, ईंधन आदि से रहित, कठिन यात्रा में चलने वाली, भूख-प्यास आदि से त्रस्त, नींद लेती हुई, दुर्भिक्ष आदि से पीड़ित, सैनिक आपत्तियों से ग्रस्त शत्रु की सेना को नष्ट करने में संकोच नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार मनुस्मृति, कामन्दकनीतिसार एवं शुक्रनीति आदि ग्रन्थों में कूटनीति एवं अधर्म युद्ध के विषय में विस्तृतरूप से उल्लेख मिलता है, यथा – शत्रु की सेना में फूट पैदा करके आक्रमण कर देना, युद्ध में श्रम से थके हुए एवं रात्रि में सो रहे सैनिकों पर, भूख-प्यास से व्याकुल, भोजन में लगी हुई, दुर्भिक्ष तथा महामारी आदि से पीड़ित शत्रुओं की सेना पर धावा बोलकर मार देना चाहिए।[30]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि शास्त्रकारों द्वारा युद्ध के जो नियम बनाए गए थे वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त उत्तमकोटि के थे, किन्तु ये आदर्शवादी नियम सिद्धान्तपरक अधिक थे, व्यवहारपरक कम। क्योंकि जिन ग्रन्थों में एक तरफ आदर्शयुक्त नियमों का वर्णन है, वहीं दूसरी तरफ कूटनीति या अधर्मयुद्ध का अपेक्षाकृत अधिक उल्लेख है। इससे यह प्रतीत होता है कि युद्ध में शत्रुओं को पराजित करना ही युद्धमान सैनिकों का मुख्य उद्देश्य होता था। इस कार्य के लिए चाहे गर्हित कार्यों का ही आश्रम क्यों न लेना पड़े।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

१. भीष्म पर्व १/२६–२९।
२. आदि पर्व १४०/२३–२४।
३. अर्थशास्त्र ७/१२१/१६।
४. शुक्रनीति ४/१/३८।
५. शान्ति पर्व १०२/१६।
६. मनुस्मृति ७/१९८–२००।
७. याज्ञवल्क्यस्मृति १/३४६।
८. कामन्दकनीतिसार १८/१।
९. बुद्धचरित १८/१।
१०. शुक्रनीति ४/१/३७।
११. असातरूपजातक, १/१०/१०० : महाशिलवजातक, १/६/५१।
१२. सरकार, जदुनाथ, मिलिटरी हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० १५।
१३. चट्टोपाध्याय, बी०, कुषाण स्टेट एण्ड इण्डियन सोसाइटी, पृ० १३६।
१४. भीष्म पर्व १०७/७७–७८, शान्ति पर्व ९६/१५, विराट पर्व ६७/५।
१५. गौतम धर्मसूत्र १०/१७–१८, आपस्तम्ब २/६/१२,
बौधायन धर्मसूत्र १/१०/८–२२।
१३. अर्थशास्त्र १३/१७४–१७५/४, मनुस्मृति ७/९१–९३, याज्ञवल्क्यस्मृति १/३२६।
१७. पुरनानुरू ९, सिलप्पादिकारम् २६/२२५–३०, सिरुपंचमूलम् ४६,
पुरनानुरू ३८९।
१८. भीष्म पर्व ४५/८३।
१९. महाभाष्य ६/१/४८।
२०. रघुबंश ७/३७।
२१. शुक्रनीति ४/७/३५७–५८।
२२. शिवराममूर्ति, सी०, अमरावती, स्कल्पचर्स इन दि गवर्नमेन्ट म्यूजियम, मद्रास, फलक ५६, चित्र १,२, पृष्ठ २४६।
२३. युद्धकाण्ड ५१/१४३।
२४. रघुवंश ७/४७, कुमारसंभव १६/३७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२५. मनुस्मृति ७/९०, शान्ति पर्व ९५/१०–१४ ।
२६. मजूमदार, आर० सी०, क्लासिकल एकाउन्ट्स आफ इण्डिया, पृष्ठ २३३, २६४ ।
२७. द्रोणपर्व ४८/३१–३३ ।
२८. मुद्राराक्षस २/१३ ।
२९. अर्थशास्त्र १०/१४८–१४९/२ ।
३०. मनुस्मृति ७/१९७, कामन्दकनीतिसार १८/६४, ६६, ६९,
शुक्रनीति ४/७/३४७–३५० ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजानक अलक सूरि

डा० निगम शर्मा
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, गु० कां० वि० हरिद्वार

ब्रह्म में सुखोपविष्ट होने से तथा विषयान्तर से विक्षेप-रहित होने से टीकाकार में सराहना की बुद्धि प्रमुदित और उदित होती है। टीका हमारी विचार-पद्धति में नवीनता और प्रखरता लाती है तथा चिन्तन के लिए उत्तेजित करती है। निर्णायक विवेक-चेतना जागृत करती है। जीवन की अँधेरी समस्याओं में टीका एक प्रेरित-ज्योति हैं। टीकाकार में प्रभावशाली व्यक्तित्व की कल्पना की जाती हैं। विवेचना-शक्ति, अर्थ-सङ्गति लगाने की ऊहा, सामाजिक एवं सामयिक-ज्ञान के लिए विशेष-बुद्धि टीकाकार की विशेषता है। कवि का अर्थगाम्भीर्य अण्डे में से प्रथम मुकुलित-शिशु-सा, सीप से झाँकते मोती-सा, सुमनायित नाभि से कस्तूरी-सा गन्धाकुल रहता है।

भाषा को वाग्देवी कहा गया है। वाग्देवी की स्तुति में ऋचाओं से लेकर अब तक के ऋषियों ने मनन-सामग्री प्रस्तुत की है। समर्थ-समर्थकों ने बताया कि प्राणशक्ति सरस्वती में अनुरणन करती है और सरस्वती प्राण में प्रलीन रहती है। यह वाक् परारूप में सदा देवताओं के साथ रहती है। मानव ने चिन्तन करते-करते ऋषित्व को प्राप्त कर लिया पर इस अनादिनिधना वाक् को पूर्णरूपेण न जान सका। वृत्ति की व्यापकता हमें वाग्-ब्रह्म तक ले गयी पर 'यन्मनसा न मनुते' कह कर उपनिषद्-ऋषि ने वाग्-ब्रह्म तक पहुँच सकने में मानवीय-शक्ति को अपूर्ण कहा। पूर्णपुरुष को वाणी के ही माध्यम से जाना जा सकता है पर वह पूर्णपुरुष वाणी से उदित नहीं होता क्योंकि वाणी स्वयं उसी से उदित होती है। वाक् ही मनु है और वाक् ही सोम-तत्त्व को धारण करती है।

धन्य हैं वे मनीषी जिनके रहस्यमय वाङ्मय को समझने तथा अन्य तक पहुँचाने के लिए गुण-रसिक पारखी मिलते हैं। विवेचक के कञ्चन-मण्डित मुकुर में मूलकवि अपनी विशदता और विशालता का अवलोकन करता है। रसभरे नयन दर्पण में अधिक दमकते हैं। मानों ऐसे विदग्ध विवेचकों के हृदय को बना लेने के अनन्तर ही अवशिष्ट परमाणुओं से विधाता ने सिन्धु की अगाधता, पर्वतों की दृढ़ता तथा आकाश की विस्तीर्णता का सृजन किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टीकाकार का यह परम कर्त्तव्य है कि मूल रचयिता के शब्द को भली प्रकार तोल कर बोले। उसके प्रति किसी प्रकार का अगौरव न उठने दे। कहीं ऐसा भी न हो कि शब्द कथन-मात्र बनकर उसकी टीका केवल एक पुनरुक्तिमात्र बन जाए। अतः क्रान्तदर्शी कवि के शब्द की विशेषता को परखे और व्युत्पत्ति के द्वारा उस दिव्य-दर्शन का स्पर्श करे जिसे कि मूल कवि ने अपने शब्द-दर्पण में देखा है। पूर्ण गवेषणा करके अपने से पूर्ववर्ती तद्विषयक या अन्य विषयक अर्थद्रष्टा समीक्षकों की गूढ़दृष्टि का समाधि द्वारा अनुशीलन करे और पुनः यदि पिछले किसी आलोचक द्वारा दोष उद्भावित हों तो उनकी सारग्राही समीक्षा करे जैसा कि पतञ्जलि, शबर स्वामी, आचार्य शंकर, अभिनव गुप्त आदि लोक-रंजक आचार्यों ने किया है। ये आचार्य वाणी के चित्त को अंकुरित करने वाले चिन्तामणि हैं जिनके परिरमणीय आलोक में मूल ऋषि जगमगा रहे हैं। वास्तव में यदि ऐसे समीक्षक ऋषि न मिले होते तो इन अद्भुत प्रतिभाशाली ऋषियों को समझ पाना न केवल दुरूह हो जाता अपितु भारती रंग-मंच से बहुत-से स्वर्णिम पत्र तथा पात्र अदृश्य हो जाते। काव्यगत न्याय-बीज का निबन्धन टीकाकार की चातुरी है। कवि कभी-कभी प्रमादवश बहक जाता है पर टीकाकार को तत्काल उसकी प्रवृत्ति आँक लेनी चाहिए। 'न चेदानीमाचार्याः सूत्राणि कृत्वा निवर्तयन्ति' कह कर आप उसे क्षमा भले ही कर दें पर आपकी दृष्टि से वह दोष ओझल नहीं रहना चाहिए क्योंकि कहीं-कहीं ऋषि के प्रमाद में भी भारती की भव्यता शकुन्तला के रूप में अन्तर्निहित ही रहती है। अतएव शङ्कित, सम्भावित एवं समारोपित प्रश्नों का समाधान भी प्रतिभोन्मेष के साथ आवश्यक है जिससे कि मूल कवि के प्रति अगौरव का परिहार हो तथा गौरव-प्रतिपादन की विशिष्टता कमनीयता के साथ झलके।

सूर्य एवं चन्द्र की प्रभा से भास्वर रत्न-दीपिका के समान, मणिमय-टीका के समान उच्च कवि की टीका अन्तराल के निगूढार्थ को प्रकाशित करती हुई काव्य-मन्दिर को आनन्दित करती है। भगीरथ-प्रयत्न से साध्य सच्ची टीका गङ्गा के समान ही जाड्य-मल का प्रक्षालन करती है। अतएव स्पष्ट-स्थलों पर कोश-व्युत्पत्ति आदि का बल-प्रदर्शन टीकाकार को नहीं करना चाहिए। गम्भीर-स्थलों पर अर्थाविष्कार की ओर पूर्ण प्रयास करके मार्मिक-दृष्टि की उद्भावना करनी चाहिए। यदि कहीं कूट-स्थल हों तो वहाँ पर अपने प्रतिभान का लम्बोदर-कौशल दिखाना चाहिए पर ऐसी उद्भावना नहीं करनी चाहिए जो कि मूल कवि को इष्ट न हो।

टीका गहन-विषय को स्पष्ट करने के लिए लिखी जाती है अतः उसे सरल, सुपाठ्य एवं सुपाच्य बनाना चाहिए। उद्योतकर ने 'न्याय-वार्तिक' टीका लिखी। वाचस्पति मिश्र ने इसको स्पष्ट करने तथा विपक्षियों के समाधान के लिए 'न्याय-वार्तिक-तात्पर्य-टीका' लिखी। वह भी इतनी दुरूह हो गयी कि आचार्य उदयन ने इस पर 'परिशुद्धि' टीका लिखी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य नीतिनेत्र का श्लोक है—

यः स्याद् भुजगवद्भूपो बहिरीक्षित मोहितः ।
तं खादन्ति न किं नाम लञ्जिका इव सेवकाः ।।

यहाँ पर 'लञ्जिका' शब्द विचारणीय है। 'लञ्जिशोभायाम्' परार्थमात्मानं शोभयन्ति याः, ता वेश्याः। लञ्जिका वेश्या को कहते हैं जो अन्य पुरुषों के लिए अपने को सजाती है। जब लञ्जिका का अर्थ स्पष्ट हो गया तब भुजग का अर्थ भी खुल गया। अर्थात् वे मदिरापान करने वाले विलासी जो कि वेश्याओं के यहाँ सर्प की भाँति मद में पड़े रहते हैं। आचार्य नीतिनेत्र का कहना है कि यदि राजा विलास-प्रिय हो जाए और आलोक-मात्र मधुर रूप-रस के लिए मोहित होने लगे तो उसे सेवक लोग उसी प्रकार खा जाते हैं जिस प्रकार कि विलासी धनी पुरुषों को वेश्या।

राजानक अलक सूरि उद्भट विद्वान् थे। इन्होंने अपने जन्म से कश्मीर की कुंकुम-भूमि को सुरभित किया था। इनका समय राजाधिराज पृथ्वीराज के जीवन का उत्तरवर्ती काल है जबकि भारत की सस्य-श्यामला मंगलमयी भूमि को विदेशी घोड़े रौंद रहे थे।

राजानक अलक सूरि के पिता का शुभ नाम राजानक जयानक सूरि था। श्री जयानक अपने समय के उच्चकोटि के कवि और कोमल-कल्पना के जागरूक द्रष्टा थे। इन्होंने पृथ्वीराज विजय महाकाव्य के रूप में संस्कृत-वाङ्मय को एक अनुपम श्रेय दिया है। महान् समीक्षक जोनराज ने इस महाकाव्य पर टीका लिख कर उसकी प्रभुता एवं गौरव का उद्गान गाया है। काव्य और टीका की परम्परा में यह दोनों उज्ज्वल कृतियाँ हैं।

श्री जयानक, सरस्वती की तुलना नदी से करते हैं—

कवित्व पाण्डित्य तटद्वयेन सरस्वती सिन्धुरिव प्रवृत्ता ।
एकत्र पीयूषमयो रसोऽयमन्यत्र मात्सर्त विषात्मकोऽस्याः ।।

(१–११)

महाकवि जयानक का कहना है कि सहस्र दृष्टि धाने पर भी इन्द्र जिस रहस्य को नहीं देख पाते, उसे क्रान्तदर्शी कवि ही देख सकता है।

दृशां सहस्रेण न वीक्षते यद् वागीश शिष्टो विबुधाधिराजः ।
तमद्वितीयेव कवे विवेक्तुं दृष्टि र्भवत्यत्यधिकाधिकारा ।।

(१–१३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सज्जन कभी-कभी प्रमाद कर जाता है पर दुर्जन अपना स्वभाव नहीं छोड़ता—

साधुः प्रमादात्त्यजति स्वभावं खल स्तु नारोहति साधुभावम् ।
निर्गन्धतामेति हि चन्दनादि न सौरभं संघटते रसोने ॥

(१-२३)

इस पृथ्वीराज महाकाव्य के अवगाहन से पता चलता है कि कवि जयानक महाराज पृथ्वीराज की सभा के पण्डित थे और इन्द्रप्रस्थ में बहुत दिनों तक निवास ही नहीं किया था अपितु श्री पृथ्वीराज के प्रिय मित्रों में भी उनकी गणना थी। इनका पूर्ण काव्य अतीव सरस, सूक्तिसुधा से सिक्त, नाना रसों एवम् अलङ्कारों से परिपुष्ट श्री भारवि एवं माघ की परम्परा का अद्वितीय महाकाव्य है। यद्यपि यह महाकाव्य पूर्ण उपलब्ध नहीं होता पर जितना उपलब्ध है उसके अनुशीलन से पता चलता है कि इसका कवि अवश्य ही काश्मीर की कुंकुम-कल्पना से एक नवीन कल्पवृक्ष उगा गया है।

तिलोत्तमा धरणी पर द्युनदी (गंगा) के समान अवतीर्ण हुई है। भला गंगा बहुवाहिनी-पति (सेनाओं के पति पृथ्वीराज, नदियों के पति सागर) के अतिरिक्त कहाँ विश्राम पा सकती है ?

तदवश्यमसौ तिलोत्तमा द्युनदीवावततार भूतलम् ।
अचिरादपि पत्रेकतामुपयाता बहुवाहिनीपतेः ॥

(१२-३८)

राजा की आँखें, कान और हृदय (पाँचों) एक साथ ही विकसित हो गये। पंचशर ने भी अपने को धन्य माना —

नयने श्रवणे मनश्चयस्समेव व्यकसन्महीपतेः ।
विपुलीकृत लक्ष्यपंचकः सुकृती पंचशरस्ततोऽभवत् ॥

(१३-३)

रसोज्ज्वल कवि एवम् अर्थद्रष्टा युग-पुरुष के रूप में जयानक कवि जैसे पुण्यकाम पिता को पाकर राजानक अलक सूरि अवश्य ही पितृमान् कहे जायेंगे। भला जिस घर में स्वयं सरस्वती निवास एवं विलास करती हो, उस घर की शोभा और ज्ञान-समृद्धि के बारे में क्या कहा जा सकता है ? जितना कहा जाय, उतना ही अल्प है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि राजानक अलक सूरि का बचपन साक्षात् हितरमणीय पाणि-पल्लव की केसरछाया में पल्लवित हुआ था।

वाग्देवतावतार मम्मट सम्भवतः तब अपने जीवन के वृद्धत्वकाल में पहुँच चुके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होंगे। उव्वट ने अपने वेद-भाष्य को पूरा कर लिया था। धनपाल की 'तिलक मंजरी' अपनी कीर्ति-सुरभि से लोगों को पुलकित कर रही थी। राजा भोज का सरस्वती कंठाभरण जगमगा रहा था। विल्हण का विक्रमाङ्कदेव चरित सहृदयों के लिए कविता-निकष बन चुका था। भट्ट कैयट अपने प्रदीप के द्वारा महाभाष्य के गहन-अन्तराल तक पहुँचने में दत्तचित्त थे। रुय्यक ने अपने अलङ्कार सर्वस्व के द्वारा अपूर्व कीर्ति अर्जित कर ली थी। जयापीड राजा के सभा-पंडित भट्टोद्भट का नाम विस्तृत हो चुका था। महिम भट्ट का व्यक्ति-विवेक भी विद्वत्समाज में नये ढंग से चर्चा का विषय बन चुका था। भारत में पहुँचे हुए यवन भविष्य में चमकने वाले अमीर खुसरो के लिए मार्ग प्रशस्त कर रहे थे। गंगा के पावन-वातावरण में भीषण–उन्माद एवं रक्तपात का ताण्डव बख्तियार खिलजी खेल रहा था। लाखों सरस्वती के उपासक इस तलवार-ताण्डव में बलि चढ़ रहे थे।

इसी बेला में सरस्वती का दुग्धमुख, मुग्धकवि, युग-प्राण भारत-पुत्रों को 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्य के माध्यम से उभय-तंत्र का मंत्र दे गया—

भाषादोषवशाद् गिरां बलरजः स्तोमे दिशामम्भसा—
मक्ष्णां भानुरुचां च दुष्कृतभरद्द्यावापृथिव्योरपि।
काठिन्यात्कुलिशस्य मारकफलासङ्गादिषूणां वधाद्—
धेनूनां च धरण्योरधि दशधा तथ्याभिधै र्गोरिभिः।

(१०–४९)

ऐसी तलवारों की झन्झनाहट में काश्मीर की घाटी नन्दन-वन के सुरम्य पुष्पों से प्रकृति को सजा रही थी। राजानक अलक सूरि अपने आदर्श पिता के पद-चिन्हों पर चलते हुए अपने चिन्तन-चिन्तामणि को स्यमन्तक स्पर्श देकर पुलकित-प्रसन्न कर रहे थे।

राजानक जयानक अपने साधित वेश में बहुत ही भव्य लगते थे। प्रथम बार सधे हुए शिरोवेष्टन से अलङ्कृत, भावमयी, प्रभावमयी इस दिव्य प्रतिभा को देखते ही पृथ्वीराज का मन परिचय के लिए विकल हो उठा—

इदमन्यपरं जगौ कवितां कश्च पपाठ चात्र कः।
कतमश्च विपश्चिदेष यो निविडोष्णीषदुरीक्ष्यकुन्तलः।

(१२–४६)

पृथ्वीभटमुक्तवन्तमित्यवदन्मानधरो महत्तमः।
मिहिरोऽन्यगुणप्रकाशने परदोषावरणे महत्तमः॥

(१२–६२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विबुधः सुकविश्च शारदा मधवन्मंगल मण्डलादयम् ।
निगमागमतीर्थतापसः प्रथमोऽद्यागतवाञ्जयानकः ।।

(१२–६३)

राजानक अलक सूरि अपने पिता के समान शिर पर पगड़ी बाँधते थे या नहीं, यह तो नहीं कहा जा सकता पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह राजानक-वंश सरस्वती के कण्ठ का हार था जिसमें अनेक मोती और मणि के तुल्य रत्न थे ।

राजानक श्री रत्नाकर को भारती के उपासक भूले-से प्रतीत हो रहे हैं । इनके अत्यन्त उदात्त 'हर-विजय' महाकाव्य की प्रभास्वर–टीका लिख कर अलक सूरि ने अपने जिस विद्या-वैभव का परिचय दिया है, वह अद्‌भुत है । महाकवि रत्नाकर अपने 'हर विजय' महाकाव्य की प्रशंसा करते हुए स्वयं कहते हैं—

'अपि शिशुरकविः कविः प्रभावाद्—
भवति कविश्च महाकविः क्रमेण ।।

निश्चय ही जब अलक सूरि ने इस अवदात चन्दनवन में रत्नाकर की सरस्वती को वीणा–विलास करते देखा होगा तो इस नन्दन–मनोहारी दृश्य ने उनके हृदय को रसना-सनाथ कर दिया होगा । रत्नाकर को कुछ आलोचकों ने चार समुद्रों से आगे पाँचवाँ रत्नाकर माना है और उनका यह मानना उपयुक्त भी है क्योंकि यह महाकाव्य सूक्तियों का रत्नाकर ही है ।

श्री अलक सूरि की इस 'विषमपदोद्योत' टीका का अनुशीलन करने से पता चलता है कि अलक सूरि व्याकरण-शास्त्र के निष्णात पारदृश्वा थे । इन्होंने अपनी टीका में स्थान-स्थान पर दुरूह शास्त्रार्थ खड़ा करके अपने बुद्धिवैशारद्य का अनुपम परिचय दिया है । ये अलङ्कारशास्त्र के धुरीण आचार्य तो थे ही निरुक्त-शास्त्र का भी तलावगाहन किया था । योगविषयक इनकी दृष्टि समाधिसिद्ध थी, वेदान्त के पावन-रहस्यों में ब्रह्म-रस का पान करने वाले, प्रकृति-पुरुष के विवेक में पूर्ण सांख्याचार्य तथा न्याय-शास्त्र के धुरन्धर मनीषी थे । इन्होंने भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र में जो निष्ठा एवं प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, उससे पता चलता है कि आजकल के नाट्याचार्यों के यही अग्रिम आचार्य थे ।

विविध दीक्षा-व्रतों से वाग्देवतावतार राजानक मम्मट ने अपने सकल मल-पटल को स्वच्छ कर दिया । अपने चिदानन्द स्वरूप को प्राप्त करके अलङ्कार-शास्त्र के कानन-यात्रियों को काव्य-प्रकाश दे दिया पर 'काव्य प्रकाश' जरासंघ के शरीर जैसा दुर्घट हो गया क्योंकि आचार्य मम्मट के रस-सिद्ध कर-स्पर्श का सौभाग्य जाता रहा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजानक अलक सूरि रसायनाचार्य बनकर आए और मम्मट के इस सुरभित आम्र-शिशु पर अपनी 'कलम' चढ़ा दी। अब यह 'काव्य-प्रकाश' एक 'कलमी-आम-सा' सुस्वादु देकर एक युग-वृक्ष बन गया है। यह महान् मालिक (माली) अलक सूरि का कार्य है। इस महान् उपकारी ने कहीं भी अपना नाम नहीं जोड़ा, कहीं भी मम्मट का मार्ग नहीं छोड़ा। अपने भाव-गर्भी रहस्य को दूध-पय-मिश्रण से सुरस कर दिया। ऐसा तपःसिद्ध, ऐसा निर्मम टीकाकार; जहाँ आवश्यकता पड़ी मम्मट जैसी कारिका और वृत्ति बना दी तथा तदनुरूप ही उदाहरणों से काव्यप्रकाश की भव्य प्रतिमा को सजा दिया। किसी को यह पता ही नहीं चलने दिया कि यह मूर्ति जुड़ी हुई है और इसके निर्माता दो शिल्पी हैं।

अलक सूरि की इस रचना-विदग्धता से एक ओर तो यह पता चलता है कि इनके हृदय में कितना सौष्ठव था, साथ ही श्री मम्मट के प्रति कितनी गहरी इनकी आस्था थी। युग-युग जिओ महापुरुष ! हमारे नितान्त तमोमय हृदय में दीपदान करते रहो।

यद्यपि भाषा की सम्पन्नता के लिए व्याकरण-शास्त्र बहुत ही उपयोगी है फिर भी काव्य-करण एवं समीक्षा के लिए अलंकार-शास्त्र में नैपुण्य अवश्य आना चाहिए। इस चारुता के ही कारण शब्दार्थ-सम्बन्ध को काव्य-पद से निर्वाहित किया गया है।

राजानक अलक सूरि इस दृष्टि से परम-मर्म तक पहुँचे हुए समीक्षक हैं। 'हर-विजय' के मंगल-श्लोक को ही लें—

कण्ठश्रियं कुवलयस्तबकाभिराम—
दामानुकारि विकटच्छविकालकूटाम्।
बिभ्रत्सुखानि दिशतादुपहारपीत—
धूपोत्थधूममलिनामिव धूर्जटि वः॥

(१–१)

यहाँ पर इनकी टीका है—सुखानि श्रेयांसि वितरतु। सुखानि शोभनानि स्वकार्यक्षमाणि अविषयापवर्तीनि खानि इन्द्रियाणि दिशतात् सम्पादयतु। कुवलयस्तबकै नीलोत्पलगुच्छैरभिरामं चारु यद् दाम स्रग्दाम तत्तुल्यो विकटच्छविर्बहलकान्तिः। उपहारेषु पूजासमयेषु भक्तजनदयया पीतो यो धूपधूमस्तेन मलिनामित्युत्प्रेक्षा। कण्ठश्रियम्। कुवलये भूमण्डले ये स्तवकाः स्तोतारस्तेषामभिरामस्याभिलषितस्य दामा दाता। स्तवका इत्यत्र स्तौतीति स्तवोऽजन्तः। स्तव एव स्तवकः। अनुकारि विकटच्छविकालकूटां स्रग्दाम तत्तुल्यो विकटच्छविर्बहलकान्तिः। कालकूटो विषं यस्या—स्तथाविधां कण्ठश्रियंधारयन्। कीदृशीं कण्ठश्रियम् ? अनुकाः शृंगारिणः, तेषामरिः कामः, तथा विकटच्छविः भीषणकान्ति र्यः कालः, तयोः कूटां दाहिकाम्। उपहारं हारसमीपे यः पीतः कपिशोधूपः संतापोऽर्थाद्—हारोरगफूत्कृताग्निसम्बन्धी तदुत्थेन धूमेनेव मलिनाम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार टीका के प्रारम्भ में ही श्री अलक सूरि ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी बुद्धि-विभूति का रसाधारण होते हुए भी असाधारण परिचय दिया है।

अर्थ — साधुत्व को ही दृष्टि में रखकर कवि तदनुरूप सिद्धशब्दों का अनुप्रयोग करते हैं। यहाँ पर टीकाकार को उस साधुत्व का प्रज्ञापन देना होता है जो कि उसके अन्तराल में सीप में मोती-सा चमक रहा है। निरन्तर ऐसा अध्यवसाय करने पर उस मानव टीकाकार का भी हृदय परिमार्जित एवं समृद्ध हो जाता है। क्षुधित व्यक्ति के लिए भोजन की भाँति अर्थोपासना तथा विविध-विज्ञान की प्राप्ति के लिए सतत उत्कण्ठित रहने वाले श्री अलक सूरि के सम्बन्ध में यह कहना नितान्त आवश्यक है क्योंकि इनकी टीका के अनुशीलन से एक अच्छी टीका के लिए सम्भावित गुणों की प्राप्ति होती है और आदर्शभूत टीका के लिए प्रामाणिक आधार प्रस्तुत होता है।

श्री अलक सूरि की ग्रहण-बुद्धि के मर्म का प्रामाणिक आधार निम्न उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है :

आश्रित्य शीतरुचिना सकलेन जाति—
सामान्य मुत्थितवता नयनान्महर्षेः ।
आनन्द भार भरमन्थरता व्यधायि
तत्पक्षपातरभसादिव लोचनानाम् ॥

(२०–२७, हरविजय)

अर्थात्, जातिरूपं सामान्यं समानो धर्मः। गुणक्रियासामान्ययोरपि सम्भवादुभयपदप्रयोगः। अत्रिनेत्रादुद्गतः शशी न तस्यैव सुतत्वादानन्दकरः, अपितु नेत्रजातिमिवाश्रित्य सर्वमेव नयनजातमावर्जयत्।

अविपन्न विभाव सूचितत्त्वं
दधदुद्दीपित मीनकेतु चक्षुः ।
श्रियमापदमुष्य चित्रभेद
स्फुट श्रृंगाररस प्रबन्धकल्पम् ॥

(१५–४९)

विभावसुरग्निः। तस्या विपन्नस्य स्फीतस्योचितत्त्वम्। बिभ्रत्। उद्दीपितः ज्वलितः कामो येन। अतश्च वहुभिः संभोगप्रथमाभिलाष विप्रलम्भादिभि र्भेदैः प्रसिद्धस्य श्रृंगाराख्यस्य रसस्य यः प्रबन्धो नाटकादौ निवेशनं तत्सदृशम्। वध्यमानोऽपिश्रृंगारः सन्निहितै विभावैरालम्बनोद्दीपनरूपैः कारणैः सूचितत्त्वं प्रकटतां धत्ते। यदुक्तम्—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' उद्दीपितश्च समेधितः कामो येन ।

आशा प्लावि स्वच्छ लावण्यकान्ति
ज्योत्स्नापूरावह्नुतान्यप्यशेषम् ।
छत्राण्युच्चै र्धार्यमाणानि तासां
हैमैः पाण्डून्यन्वमीयन्त दण्डैः ॥
(१८–२)

अर्थात्, लावण्य सहिता कान्तिः लावण्यकान्तिः । हैमैः स्वर्णमयै र्विकारैः 'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्' ५–३–१५४ । हेमशब्दो रजतादिषु न पठ्यते, इति चेत् तर्हितन्नापठितोऽप्युपसंख्येयः । हेमशब्दस्य बहुधा शिष्टप्रयोगदर्शनात् । दृश्यते यथा जातिषु त्रिफला शब्दः । अणि तु 'अन्' ६–४–१६७ । इति प्रकृतिभावे हैमनै रिति स्यात् ।

मुष्णन्तं जीवितधनं स व्यंसकुसुमालकम् ।
जघान भर्त्ता देहार्धं सव्यं सकुसुमालकम् ॥
(४३–२२२)

अर्थात्, जीवितव्यमेव धनं मुष्णन्तं रिपुं स भगवान् जघान । विचित्रा अंसकौ स्कन्धभुवि शोभमाना माला यस्य । सकुसुमा श्चालका श्चूर्णकुन्तला यस्य तादृशं सव्यं वामं देहार्धं भर्ता धारयिता ।

गरागारोरगोग्रोरा गौरीरागी गुरु गिराम् ।
गौरागुरुगिरीरागो गौररे र्गुरुरोगरुक् ॥
(४३–२३८)

अर्थात्, गरस्य विषस्यागाराणि गृहाणि ये उरगास्तैरुग्रमुरो वक्षो मध्यभागो यस्य । गौर्या रागी व्यसनी वत्सलश्च । गौराः शुभ्रा अगुरवः तरुभेदाः, यासां तथा विधा गिरीराः पर्वतभुवः गच्छति श्रयति यः । अरे=गौः वज्र इव । हिमवां स्तु द्विषो गौः, तत्र पलाय्यां वस्थानास्पदम् । गुरून् महतो भक्तानां रोगान् रुजति यः ।

यो भाति प्रत्ययोत्कर्षादक्षयज्ञानलाभया ।
दृषा च सरुषा ध्वस्त दक्षयज्ञानलाभया ॥
(४३–२४०)

अर्थात्, अक्षयो ज्ञानलाभो यस्याः । ध्वस्ता दक्षयज्ञेऽनलस्याभा यया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्मेधया चमूस्तस्य माययावसितोषिता ।
रणे शौर्यगृहे क्रौर्यमाययावसि तोषिता ॥
(४३–२४२)

अर्थात्, माययाऽवसिता ज्ञाता रणे चोषिता तच्चमूः क्रूरतामाययौ । असिभिस्तोषिता ह्लादिता ॥

अर्थात्, नैर्गुण्यमकिंचित्करत्वमाश्रयतो गजस्य केनचिद्वीरेण अदन्तता प्रत्यज्ञायि । दन्तशून्योऽयमिति प्रतिज्ञा कृता । अन्यथा कथं युद्धयेत् ? पिबे रिव । यथा पिबादेशस्य लक्ष्ये गुणाभावं भजतोऽदन्तता अकारान्तता पाणिनिना प्रतिज्ञाता । अन्यथा हि लघूपधत्वाद् गुणः स्यात् —

प्रत्यज्ञायि प्रसरता वीरेणाजावदन्तता ।
नैर्गुण्यमाशुभजतः पिबे रिव विषाणिनः ॥
(४३–१०)

अभावि रभसान्नाक स्त्रिया मानवतां तया ।
रणधूल्या दधे तस्या स्त्रियामा नवतान्तया ॥
(४३–१३)

अर्थात्, मानवतां शूराणां रभसोऽभिलाष स्तस्मात्तया नाकस्त्रिया भावितम् । श्रितोत्कण्ठितया स्थितम् । ल्यब्लोपे पंचमी । तस्याश्च तदभिसरणोद्यताया रणधूल्या त्रियामा रात्रिरादधे । कृता । तयेति वा हेतुतृतीया । अहमनया वृतोऽहमनया वृत इति यस्तद्धेतुक स्तेषां रणस्तद्धूल्येत्यर्थः । नवेन स्तुत्या तान्तया खिन्नया शूराणां पुनः पुनश्चाटुकरणात् ।

उपसर्गा इव गताः क्रियायोगे शून्यताम् ।
आसं स्तस्य हता बाणैरप्राप्तगतिसंज्ञकाः ॥
(४३–४६)

अर्थात्, तस्य बाणैराहता दैत्या अप्राप्ता गति र्गमनं संज्ञा च चेतना यैः क्रियायोगेण च शून्यतां गताः । निर्व्यापारा आसन् । उपसर्गाः प्रादय इव । ते हि क्रियायोगमन्तरेण गति संज्ञां न प्रतिलभन्ते । 'उपसर्गाः क्रियायोगे' १–४–५९ । 'गतिश्च' १–४–६० । इति वचनात् ।

रणसिन्धुं सुमनसां तदानीमुत्तितीर्षताम् ।
सारिवासकृदुत्कृष्टकर्णान्ता मौर्विकाभवत् ॥
(४३–६२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्, देवानां नौरिव सा देवी अभवत्। तयैव तेषां ततो निस्तारित्वात्। अरित्रासक्तृ अरीणां भयजननी। अरित्रस्य च केनिपातनस्यासक्तृ क्षेपकरणं यस्याम्।

नाभाच्छ्रुतिरिवाहीना सदोंकारतया न या।
अगाहि भर्तुः संग्रामसदोऽङ्कारतया नया॥
(४३–५३)

अर्थात्, भर्तुः शिवस्याङ्के आरतया क्रीडितयाऽनया संग्रामसदोऽगाहि। विलोडितम्। या श्रुतिरिव न नाभात्। अपितु शुशुभे एव। श्रुति र्वेदः। सदोंकारो रणप्रवेशसमये पाठकाले यस्य तद्भावेन अहीना सहिता।

नतलोकहितक्रिया समाना
नवमा यस्य तितांसतां सदस्त्रः।
युधि शक्तिमसौ द्विषां स्म हर्तुं—
नवमायस्यति तां सतां सदस्त्रः॥
(४६–९)

अर्थात्, यस्य विभो नंतं लोकं प्रति हितक्रिया असमाना लोकातीता, अनवमा च सर्वोत्कृष्टा। असौ युधि शक्ति तितांसतां विस्तारयितुमिच्छतां सतामरीणां तां शक्तिमुपहर्तुं नवं कृत्वा आयस्यतिस्म सप्रयत्नोऽभूत्। सदस्त्रः शोभनायुधः। सदांसि च सभास्त्रायते रक्षति यः।

स सेनया जगन्मनोमृदुर्वशीकया जितः।
अविस्खलं स्तदा रुषामृदु वशी कया जितः॥
(४६–५३)

अर्थात्, जगतां मनः प्रमाथिनी उर्वशी यत्र तादृश्या सेनया कुमारः कया जितः? न कयाचित्। रुषा कोपेन अमृदुः क्रूरः। वशी जितेन्द्रियः। आजितः समरे। आद्यादित्वात्तसिः।

मणि शतकर भासुरांगनानां दितिज चमूघट मान संसदं सः।
अकृत च समरं सुराङ्गनानामतनु दधच्छुचि मानसं सदंसः॥
(४६–५७)

अर्थात्, स हरि दितिजानां चमूभि र्युज्यमाना संसदा सभा यत्र तादृशं समरं धारयन्नप्सरसां मानसमतनुं कृत्वा शुचि प्रीत्या विशदमकरोत्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जेता वेगां स्तीव्रभा वायवीयान्
वृत्राराते र्बद्धभावा यवीयान् ।
श्रुत्वा हृष्यत्तत्र चाणूरपीडा:
प्राक्कर्ताऽसौ दृप्तचाणूरपीडा: ॥
(४६–५८)

अर्थात्, वृत्राराते रिन्द्रस्य यवीयाननुजो विष्णुरणूरपीडा: (अपि ईडा:) स्वल्पा अपि स्तुतीरा-कर्ण्याहृष्यत् । यतस्ता: बद्धभावा: । साकूता: । असौतु वायवीयान् वेगान् जेता वायोरपि चतुरगति: । तीव्रभा दुस्सहस्तुति: । चाणूराख्यस्य दैत्यस्य पीडा: प्रथममेव विधाता ॥

रणे शिवाभिरमनागमितं चकले वरम् ।
अदृयतास्थिशेषत्वं गमितं च कलेवरम् ॥
(४३–११)

अर्थात्, अमितं स्थूलं वरं चोत्कृष्टं कलेवरं शरीरं शिवाभिरमनाक् चकले संख्यातम् । 'कल शब्द संख्यानयो:' । अस्थिशेषत्वं गमितं चादृश्यत । मांसार्थितया विचारितम् ॥

स गुणे रणेष्वपि यश: पटं ततोऽमृदुवायसेषु समदं रसं गत: ।
रुचिमान् धनुर्मुखरयन् द्विषच्चमूमृद् उवाय सेषु समदं रसं गत: ॥
(४६–३३)

अर्थात्, अमृदुवायसेषु क्रूरकाकेषु रणेषु स देवो यश: पटम् उवाय । व्यूतवान् । वेञ् तन्तुसन्ताने । गुणा: शौर्यादय:, तन्तवश्च । समदो मदेन सह वर्त्तमान: । रसं गतो रणरागं प्राप्त: । असंगतोऽप्रसक्त्या अवहेलयैव सेषु सशरं च धनुश्चालयन् । अरिसेनां मृद्नाति य: ।

महाजिगोष्ठौ प्रतिबद्धसौष्ठवै र्विदग्धलोकैरिव कर्णशालिभि: ।
तदाहवे सत्कविकाव्यपायिभि र्दधे मुखश्री: पृतनातुरंगमै: ॥
(४६–५२)

अर्थात्, तुरगा: कर्णशालिन: सुप्रमाणकर्णत्वात् । विदग्धास्तु सदसदर्थविचारणात् । सत्कविकाभिरव्यपायिभि: सहितै: । सत्कवीनां च काव्यं पिबन्ति ये तै: ।

इसके अतिरिक्त अलक सूरि के शास्त्रीय गहन-चिन्तन के परिणामस्वरूप इनकी कुछ अपनी भी अनुभूति और मान्यता है, जो विचार-विमर्श करने योग्य और स्वीकार करने योग्य भी है। अलक सूरि कीर्ति और यश में सीमाङ्कन करते हुए कहते हैं कि दान आदि के कारण होने वाली प्रशंसा कीर्ति है और शौर्य आदि के द्वारा उत्पन्न प्रशस्ति यश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहलाती है (१२-४२)। कृ धातु पिबति अर्थ में भी है। मधु करोति पिबतीति मधुकृत् भ्रमरः (५-२१)। सह आराभि र्धारामि वर्तते इति सारः (५-२)। सह अरैः शृङ्गै वर्तते इति सारः। इसी प्रकार पान-पात्र को पारी २६-५, मधु-कलश के लिए करक २६-६, कर्करी भी २६-२६, चषक के लिए कोष २६-४, मद्य-धानी के लिए आलुका, मधु-कलशी, कलिका और आवरवी भी, शरम्=पानी, शरः वाण (२२-४४)। शम्पा रशना, विद्युत् भी ५-२३, सर के लिए नड्वल, सूकर के लिए मुख-लाङ्गल, १२-४७, प्रचलाकी तथा नीलकन्धर मयूर के लिए (१३-२२), शौटीर्य मद के लिए १४-३८, हस्ती के लिए पीलु, काक के लिए मौकुलि तथा द्रोण १४-१४, नारिकेल के लिए कूर्च-केसर १२-२४, स्वामी के अनुवर्ती पुरुष के लिए धवल (धवं भर्तारं लान्ति गृह्णन्ति ते) १०-३, पान-पात्र के लिए शुक्ति ३०-४३, भ्रमर के लिए रसायु २९-१४, वन्दी के लिए मंख २८-३४, रुरु खूँटी या मृग के लिए, तुम्बरु धनिया के लिए, मल्लिका जूही के लिए, सुवर्चला सूर्यमूखी के लिए, प्रिय-सूचना देने वाले के लिए दिष्टि, भरिक के लिए विष्टि, जल के लिए कृपीट, शाखा के लिए लंका, गणिका हस्तिनी के लिए, विनम्र के लिए स्तोक, शावक के लिए पाक, विवाहिता कन्या के लिए राका, दया के लिए शूक, संक्षेप के लिए पुलाक, दीपक के लिए प्रतीक, हींग के लिए वाह्लीक, मयूर के लिए मेचक, स्थासक बुल्बुले के लिए (बुद्बुद), अश्मन्तक तथा अन्तिक रसोईघर (रसवती) के लिए, गगरी के लिए उष्ट्रिका, खनित्री के लिए विशाखा, जल-निर्गमन (पनाला) को मकर-मुख, स्वभाव के लिए सर्ग, संकेत के लिए इङ्ग, सुरागृह के लिए गंजा, नपुंसक के लिए पोटा, मक्का के लिए गवेधुक, आदि शब्दप्रयोग विचारणीय हैं।

राजानक अलक सूरि के मत में अरि अदानशील (रा दाने) को कहते हैं पर धन-हीन को भी अरि (रै धन–रयीश) कहते हैं । साथ ही अरी— (अरा अस्य सन्ति) चक्र को कहते हैं। सुदर्शन-चक्र के लिए प्रयोग हुआ है । सुन्दर चक्र वाले वज्रधर के अिए स्वरिः कहा गया है। अरि शत्रु को भी कहते हैं।

राजानक अलक सूरि की प्रतिभा सामयिक और अवसरप्राप्त विषय की विवेचना में बहुत ही उद्बुद्ध थी। उनकी गहन तथा विशद टीका के आधार पर उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व का आभास मिलता है । विवेचना-शक्ति तथा संगति लगाने की ऊहा भी उनकी अनुपम थी । शब्दगत अर्थ की गवेषणा में गाहनिक–प्रतिभा का दिग्दर्शन मिलता है। वीर का अर्थ करते हुए वे कहते हैं— विविधम् ईरयति, विशिष्टा इरा यस्य, प्रियम्वदो मदो यस्य; इस प्रकार प्रफुल्लित-हृदय तथा सरस लेखनी से अन्वाख्यान इनकी टीका की विशेषता है। निर्दिष्ट-तथ्य की मनोहारिणी व्याख्या तो करते ही हैं साथ में मूल-कृति को श्लाघनीय मर्यादा की चोटी तक ले जाते हैं । विस्तृत-ज्ञान तथा शोधपूर्ण वैदुष्य का निदर्शन इनकी टीका में अनुविम्बित है । प्रावीण्य, दर्शन तथा सिद्धान्त-ज्ञान के लिए आनन्दप्रद सोपान इनकी टीका के माध्यम से मिलता है। अनेक अर्थों वाले शब्दों को प्रक्रिया और प्रकरण के कारण नियंत्रित करते हैं । संयत और नियमबद्ध अनुभव की प्राप्ति के लिए अलक सूरि ऋषितुल्य पथिकृत् हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टीका का कार्य दुष्कर और प्रतिभापेक्षी है। विद्वज्जन के मानस-पटल पर दृढाङ्कन करने योग्य सामर्थ्य के कारण ही टीका को महत्त्व मिला है। इससे कवि की दृष्टि तथा प्रवृत्ति का जन-मानस से सम्पर्क मिलता है। 'वृत्ति वर्त्तनजीवने' में जीवन का अभिप्राय ही है कि स्वस्थिति योग्य उचित व्यापार हो क्योंकि 'जीव बल प्राणधारणयोः' ऐसा अनुशासन है। यह जीवन अहंकारवान् पुरुष के सामर्थ्यातिशय से ही प्राप्त होता है। इसी हेतु आक्षेपों का समाधान भी टीकाश्रित कार्य है।

एक टीकाकार के ही मर्म-विषय को लेकर गवेषणा-कार्य प्रारम्भ करते हुए हमें यह प्रेरणा-किरण साथ रखनी चाहिए कि टीका की आधार-शिला क्या हो? विश्वास और उत्साह के साथ जिन मान्य टीकाकारों को अपने कृतित्व की उपलब्धि मिली है, उसके रहस्य तथा स्वाभिमान का भी वर्गीकरण के साथ हमें मूल्याङ्कन करना है। उन सम्भावना-ग्रन्थियों पर भी विचार करना चाहिए जिनके कारण टीका-सिद्धान्त उन्मुक्त तथा पल्लवित हुआ है।

संस्कृत की शब्द-सम्पदा विशद है, गाहनिक-बुद्धि की अभीप्सा करती है। प्रत्येक शब्द अपने अन्तराल में अनेक धातु छिपाये हुए है। कहाँ पर कौन धातु अधिक स्पष्ट है और कहाँ पर कौन धातु छिपकर अर्थ-सुषमा पर किरण का विकिरण कर रही है, यह अर्थ-द्रष्टा टीका-ऋषि से ही सम्भव है। 'काम' शब्द कामना-वाचक तथा कार्य-वाचक कैसे है? सुषमा का अर्थ सौंदर्य से अभिन्न क्यों है? सु+सम मिलकर सुघड़ शरीर के लिए वाचक बन कर सौंदर्याभिव्यक्ति में सहायक किस प्रकार है? क्यों कनक का अर्थ स्वर्ण है फिर धतूरे के अर्थ को क्यों प्रकट करता है? फिर कन्या में कौन-सा कनकत्व या धुस्तूरत्व देखा गया?

राजनीति, धर्म, दर्शन, साहित्य, कला और लोक-जीवन की बहुमुखी समस्याओं एवं मान्यताओं के प्रति रससिद्ध कवि के समान ही टीकाकार में भी सजगता होनी चाहिए। पुस्तक को जानबूझ कर जटिल या विस्तृत नहीं करना चाहिये।

संकेत में दिये गये सन्दर्भ अतीव उपादेय तथा मेधावी छात्र के लिए गवेषणा के बीज बनते हैं। सम्बद्ध धरातल पर ही गवेषणा के लिए प्रारूप सम्पन्न किया जा सका है। पुरातत्त्व साहित्य एवम् अनुश्रुतियों को भी प्रसंगानुसार यथासम्भव यथास्थान समावेश अवश्य करना चाहिये। इससे विषयगत विवरण पाने में ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। कहीं-कहीं टीकाकार मूलवृत्ति की व्याख्या करते-करते अपनी निजी सम्मति लिखने लगते हैं जो कहीं-कहीं मूल लेखक के विपरीत पड़ता है। न्यास में जिनेन्द्र बुद्धि (१–१) कहते हैं कि मूल-वृत्ति के विपरीत व्याख्यान उचित नहीं है। अर्थ-शास्त्र के प्रणेता आचार्य चाणक्य का स्वयं ही टीका लिखने का यही अभिप्राय अनूदित होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टीकाकार व्यक्ति को चाहिये कि वह काव्य-रस को ग्रहण करने में पूर्ण समर्थ हो। वाल्मीकि रामायण में ऐसे लोगों के लिए 'काव्य-कल्पवित्' (उत्तरकाण्ड ९४-७) कहा गया है। इसका अभिप्राय यह भी निकलता है कि टीकाकार को काव्य-सौंदर्य की परीक्षा में पूर्ण सिद्ध होना चाहिये। मल्लिनाथ में इसी कारण काव्यवित् में 'वित्' शब्द को दो धातुओं से निष्पन्न माना है— विद ज्ञाने, विद-विचारणे; अतएव उन्होंने अपने अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'काव्यं कर्तुं जानन्ति ते काव्य-रसिकाः, काव्यं विचारयितुं ये जानन्ति ते काव्य-परीक्षकाः। (एकावली—तरला टीका, भूमिका)।

शास्त्र-दीप से जिनका मार्ग आलोकित है, जिनकी बुद्धि अग्निसंशोधित स्वर्ण-श्री के समान निरन्तर उत्कर्ष को प्राप्त है। वे मानते हैं कि अगौरव के परिहार तथा गौरव के प्रतिपादन की ही दृष्टि से टीका लिखी जाती है। शंकित, संभावित, समारोपित प्रश्नों का समाधान भी अपेक्षित रहता है। कहीं-कहीं कवि की भूल पर भी तर्जनी-विक्षेप से नहीं चूकता—

स्पृशति तिग्मरुचौ ककुभः करैं—
र्दयितयेव विजृम्भितमानया ।
अतनुमान परिग्रहया स्थितं
रुचिरया चिरयायि दिनश्रिया ॥

(३–३७)

अर्थात्, कराः पाणयोऽपि। तापः खेदोऽपि। मानं दैर्घ्यमभिमानश्च चिरयायीनि दिनानि ग्रैष्मिका वासराः। अत्र तिग्मरुचेः ककुभां च कामिता प्रतीयते। लिंगविशेषोपादानात् यथा सरले सह वासरश्रिया निभृतं क्वापि गतः स भास्करः। वद तेन विनाऽब्जिनी कथं क्षणदामद्य नताङ्गि नेष्यति। एवं दिनश्रियोऽपि नायिकात्वप्रतीतौ यथोक्तमेव संभवतीति दयितयेत्युपमानपदमपुष्टार्थ मिति सहृदयाः।

पुराने बहुत-से कोश, गुरुजन, विषयगत शास्त्र एवं परम्परा के सम्प्रदाय-शास्त्रों के माध्यम की साक्षी में अनवरत रहते हुए स्वयम् अलक सूरि भी एक प्रामाणिक आचार्य की कोटि में आते हैं। इनके सम्मत तलावगाही व्यक्तित्व के कारण पता चलता है कि नाट्य-शास्त्र, मणि-शास्त्र, दशरूपक, अलंकारशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, निरुक्त, पिंगल, वैदिक साहित्य एवं शिवागमशास्त्र के महारथी आचार्य थे।

महाकवि रत्नाकर ने बहुत-से अप्रचलित शब्दों द्वारा यमक-साधना में सिद्ध-श्लोकों की रचना की है। ऊपर के उद्धरणों से कहा जा सकता है कि यदि इनको अलक जैसा विवेचक नहीं मिला होता तो इनका काव्य महान् होते हुए भी दुरूह और अपरिचित हो जाता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ लोग अलक सूरि का नाम अल्लट सूरि लिखते हैं जैसा कि काव्यप्रकाश टीका की भूमिका में तथा परिकरालंकार के अन्त में वामनाचार्य ने भी लिखा है । हो सकता है बहुत-से काश्मीरी पंडितों का नाम टकारान्त देखकर (मम्मट, जैयट, कैयट, उव्वट, रुद्रट) इनका भी नाम अल्लट मान लिया गया हो, पर ऐसा नहीं है । 'हर विजय' महाकाव्य के प्रत्येक सर्गान्त में इन्होंने 'राजानक जयानकसूनोरलकस्य कृतौ' लिख कर अपना नाम अलक ही दिया है। आनन्द कवि ने अपनी निदर्शना टीका में भी इनका नाम अलक ही माना है—

कृतः श्रीमम्मटाचार्यवर्यैः परिकरावधिः ।
प्रबन्धः पूरितः शेषो विधायालकसूरिणा ॥

काव्यप्रकाश के अन्तिम सन्दर्भों में अलङ्कारों का क्षेत्र, सीमाङ्कन और साधक-बाधक हेतुओं से अलंकार की निश्चय-सिद्धि का जो प्रयास अलक सूरि ने किया है वह बहुत चिन्तन, समीक्षा एवं अनुभूति का परिणाम है। अलक सूरि का निष्कर्ष सान पर चढ़े मणि के समान प्रसन्न एवं रमणीय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकष पर

(पुस्तक समीक्षा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक का नाम — पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य

लेखक — जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी

प्रकाशक — साहित्य संगम, १००, लूकर गंज, इलाहाबाद-२११००१

पृष्ठ संख्या — २२२

मूल्य — ७५ रुपये

'पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य' सुप्रसिद्ध पत्रकार तथा विचारक श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी की साहित्य संगम, इलाहाबाद से ताज़ी प्रकाशित पुस्तक है। भारत सरकार ने नवप्रतिष्ठापित 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार' से इस रचना को सम्मानित कर इसके महत्त्व की ओर हिन्दीजगत् का ध्यान आकृष्ट किया है। यों तो हिन्दी का पहला पत्र कलकत्ता से ३० मई १८२६ को 'उदन्त मार्तण्ड' नाम से प्रकाशित हुआ पर पश्चिमोत्तर प्रदेश से प्रकाशित पहला हिन्दी दैनिक 'बनारस' अखबार था। प्रारम्भिक हिन्दीपत्रों की विशेषता यह थी कि इनका प्रकाशन बंगला या उर्दू के साथ हुआ अतः इनकी भाषा पर भी इन भाषाओं का प्रभाव था। हिन्दी की धज के साथ यदि कोई पत्र निकला तो १८६८ में 'भारतेन्दु का कविवचन सुधा' निकला। कविता का पत्र होते हुए भी तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक सन्दर्भों से जुड़ा होने के कारण यह पत्र हिन्दीक्षेत्र की समस्याओं का पूर्णरूप से प्रतिनिधित्व करता रहा। बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने इस पत्र के सम्पादक के बारे में लिखा 'यद्यपि हाकियों में बाबू हरिश्चन्द्र की बड़ी प्रतिष्ठा थी, वह आनरेरी मजिस्ट्रेट किए गए थे तथापि वह निडर होकर लिखते रहे और सर्वसाधारण में उनके पत्र का आदर होने लगा।' भारतेन्दु इस प्रकार वर्तमान हिन्दी पत्रकारिता के दिग्दर्शक सिद्ध हुए। इस प्रकार सरकार ने यदि भारतेन्दु पुरस्कार पत्रकारिता के लिए स्थापित किया तो अच्छा किया और यदि इस पुरस्कार के योग्य कोई पत्रकारिताविषयक कृति चुनी गई तो यही सोचकर कि इस कृति का स्वर भारतेन्दु की तरह राष्ट्रीयता से ओतप्रोत और निर्भीक होगा। चतुर्वेदी जी पत्रकारिता के इस तेवर के धनी हैं और उन्हें दिया गया पुरस्कार हिन्दी पत्रकारिता के प्रति सम्मान का सूचक है। चतुर्वेदी जी १९४१ से ही हिन्दी पत्रकारिता के साथ जुड़े हैं। पत्रकारिता-आन्दोलन से भारतीयस्तर पर जुड़े रहने के कारण वह अखिल भारतीय पत्रकारों और हिन्दीतर भाषा-पत्रों से सम्पर्क साधे रहे। अमरीका, मैक्सिको, क्यूबा, ब्रिटेन, फ्रांस, सोवियत संघ, जापान, आस्ट्रेलिया आदि देशों की पत्रकारिता का भी उन्होंने निकट से अध्ययन किया। १९६६ में बर्लिन में हुए अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकार संगठन के सामाजिक आयोग के वह उपाध्यक्ष बने, अतः देश-विदेश की पत्रकारिता और उसके आयामों का उन्होंने गंभीर अध्ययन किया। यह पुस्तक उनके इन्हीं दीर्घकालीन अनुभवों का परिणाम है।

इस पुस्तक में २६ निबन्ध हैं। पहले ब्रिटिश, स्वीडिश, अमरीकी, जापानी पत्रकारिता पर विस्तार से लिखा गया है और फिर अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकार आन्दोलन तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेस की नई प्रौद्योगिकी पर प्रकाश डाला गया है। चतुर्वेदी जी का कथन है कि स्वीडन, पत्रकारिता की दृष्टि से आगे है। हंगेरियन पत्रकार संघ की उच्चस्तरीय क्षमता अधिक है जिसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकार संगठन ने इसे पत्रकारों का एक स्कूल चलाने तथा उच्चकोटि के मुद्रण की एक पत्रिका प्रकाशित करने का भार सौंप रखा है। स्वीडन के पत्रकारिता उद्योग से एक बात सीखी जा सकती है कि बड़े पत्रों के साथ छोटे पत्र कैसे जीवित रह सकते हैं? सरकार ने वहाँ कानून पास कर बड़े पत्रों पर शुल्क लगा दिया है। उसी राशि से छोटे पत्रों को सहायता दी जाती है। पत्रकारों के आचरण के लिए वहाँ प्रेसलोकायुक्त की स्थापना भी हुई है। अमरीकी समाचारपत्रों की यह विशेषता है कि उनका प्रचार मुख्यतया स्थानीय है। प्रति व्यक्ति समाचारपत्रों की खरीद तथा गणना की दृष्टि से जापान आगे है। इस तरह की कई नई जानकारी पुस्तक में उपलब्ध हैं।

इस पुस्तक की एक विशेषता यह है कि इसमें विश्व-संचार संदर्भो में हिन्दी पत्रकारिता के स्वरूप और भविष्य पर प्रकाश डाला गया है। 'विश्वमानवचेतना में हिन्दी संचारमाध्यम की भूमिका' निबन्ध इस दृष्टि से पठनीय है। चतुर्वेदी जी का कहना ठीक है कि प्रारम्भ से ही हिन्दी लेखक किसी एक प्रांत या विचारधारा तक सीमित नहीं रहे। मुद्रण की दिशा में भी हिन्दी का सार्वभौमिक रूप था। हिन्दी के पहले टाइप पुर्तगाल और हालेंड में ढ़ाले गए। मुद्रण के बाद तो हिन्दी को सार्वदेशिक रूप मिल गया। बंगाली और मराठी हिन्दी सम्पादकों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। श्यामसुन्दर सेन, अमृतलाल चक्रवर्ती, विष्णु पराड़कर, लक्ष्मीनारायण गर्दे, माधवराव सप्रे हिन्दी के पितामह पत्रकार हैं। आज भी हिन्दी में ऐसी पत्रिका की जरूरत है जिसमें संसार की साहित्यिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का विश्वव्यापी परिचय उपलब्ध हो तथा वह विश्व के किसी भी कोने में उपलब्ध हो सके। 'पत्रकार का दायित्व' इस पुस्तक का संवेदनशील अध्याय है। इसमें पत्रकारिता की पेशेवर नैतिकता, तथ्यपरक वास्तविकता और राष्ट्रीयनिष्ठा, सामाजिक-नैतिक मूल्यपरकता, मानवीय अधिकार रक्षा, उत्पीड़न विरोध, पीतपत्रकारिता आदि पर विभिन्न पहलुओं में विचार किया गया है। यह निष्कर्ष उचित ही है कि यदि पत्रकार अपना काम करते समय आत्म-निरीक्षण को स्थान दें तो समाचारपत्र और सरकार दोनों ही सुरक्षित रहेंगे। यह बात इसलिए भी महत्व की है कि भारत में अभी कोई सर्वमान्य आचारसंहिता नहीं है।

पुस्तक के अन्तिम चौदह अध्याय हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास तथा प्रवृत्तिपरक और प्रकाशनसम्बन्धी समस्याओं पर केन्द्रित हैं। हिन्दी पत्रकारिता की विविध प्रवृत्तियों का खुलासा किया गया है। पत्रकारिता की योग्यता और पूँजीनिवेश की क्षमता का विश्लेषण कर सम्पादन-प्रकाशन की समस्याओं पर दृष्टिपात किया गया है। प्रतिरक्षा, कृषि, उद्योग, सिनेमा, परिचर्चा, साहित्यिक रपट, खेलकूद, राजनीतिक घोटाले आदि बिन्दु हिन्दीपत्रकारिता को लोकप्रिय बनाने में मुख्य कारण सिद्ध हुए हैं। पहली पत्रकारिता से आधुनिक हिन्दी पत्रकारिता का यह नवीन आयाम है जो हिन्दीपत्रों के आर्थिक ढाँचे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को प्रभावित करता है। चतुर्वेदी जी का यह कथन भी उचित है कि हिन्दीपत्रों के सम्पादकों को हिन्दी की परम्पराओं से परिचित होना चाहिए। पत्रकारिता का क, ख, ग न जानने वाले भी यदि पूँजीनिवेश के कारण मालिक हैं तो सम्पादक भी उन्हें ही होना चाहिए, यह प्रवृत्ति घातक है। 'आज पत्रकारों में, विशेष तौर पर देशी भाषा के पत्रकारों में जो यह संत्रास की भावना पैदा हो गई है कि वे कितने ही अच्छे पत्रकार क्यों न हों, वे वर्तमान व्यवस्था में किसी पत्र के सम्पादक नहीं हो सकते जब तक कि वे किसी मालिक के चापलूस न हों या खुद मालिक न हों, यह व्यवस्था दूर होनी चाहिए।' पत्रकारिता आज शगल नहीं, एक उद्योग है। अतः जनहित और मनोरंजन के साथ अर्थ-संचय पत्रकारिता का लक्ष्य बन गया है। ऐसी स्थिति में अखबार वही चला पाते हैं जिनके पास पर्याप्त पूँजी है और यदि पूँजी उधार लेकर लगाई गई है तो उसका परता डाल कर उसे चुकाने की योग्यता भी रखते हैं। अतः पत्रकारिता की नित्यनवीन उपलब्ध तकनीकों की जानकारी के साथ-साथ उसके ज्ञान-विज्ञान बोध की आवश्यकता पर भी बल दिया जाना चाहिए।

कहना न होगा कि चतुर्वेदी जी की यह कृति भिन्न-भिन्न समयों पर लिखे गए निबन्धों का ऐसा श्रृंखलाबद्ध प्रकाशन है कि इसमें पुस्तक की पूर्ण अन्विति पाई जाती है। पत्रकारिता विधा, इतिहास, तकनीक, चिंतन-माध्यम और विचार-जगत् की दृष्टि से तो इस पुस्तक में नई जानकारी मिलती ही है, भारतीय और विदेशी पत्रकारिता के स्वरूप और सम्भावनाओं का परिचय भी प्राप्त होता है। सूचनाव्यवस्था के विविध आयामों और मनुष्य की सोच में लाए जाने वाले परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में भारतीय पत्रकारिता के विविध पहलुओं पर भी इस रचना में प्रथम बार प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक शैक्षणिक ढर्रे की रचना नहीं, व्यावहारिक पत्रकारिता का दर्पण है जिसमें प्रौढ़पत्रकार का अनुभवी मन और उसकी प्रतिक्रियाएँ प्रतिबिम्बित हुई हैं। हिन्दीपत्रकारिता की समस्याओं, उद्देश्य, साधनों और वर्तमानरूप तथा भावी सम्भावनाओं पर बेबाक संवाद पढ़कर चित्त प्रसन्न हो जाता है। अच्छा हो हिन्दी के पत्रकारबन्धु इस पुस्तक के निष्कर्षों को अंगीकृत करें। उनके सामने देशी-विदेशी पत्रकारों की गरिमामयी परम्पराएँ और संस्थाएँ इस पुस्तक के माध्यम से सामने आकर खड़ी हो गई हैं। प्रेस की नवोन्नत प्रौद्योगिकी उनके लिए चुनौती है। अधुनातन होते हुए भी हमें भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, स्वामी श्रद्धानन्द और पराड़कर जी की परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखना है।

मैं पुस्तक के लेखक श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी को इस उत्तम रचना के लिए बधाई देता हूँ। उनके प्रकाशक साहित्य संगम के संचालक से अनुरोध करता हूँ कि अब वह चतुर्वेदी जी से हिन्दी पत्रकारिता का सांगोपांग इतिहास लिखवाकर प्रकाशित करें। एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति होगी।

—डा० विष्णुदत्त राकेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परामर्शदातृ-मण्डल

१—श्री ओम्प्रकाश मिश्र	—	प्रोफेसर तथा अध्यक्ष मनोविज्ञान विभाग
२—डा० राधेलाल वार्ष्णेय	—	प्रोफेसर तथा अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग
३—डा० निगम शर्मा	—	रीडर तथा अध्यक्ष संस्कृत विभाग
४—डा० जयदेव वेदालंकार	—	रीडर तथा अध्यक्ष दर्शन विभाग
५—डा० भारतभूषण विद्यालंकार	—	रीडर, वेद विभाग
६—डा० जबरसिंह सेंगर	—	निदेशक, विश्वविद्यालय संग्रहालय
७—श्री चन्द्रशेखर त्रिवेदी	—	रीडर, मनोविज्ञान विभाग

मुद्रक—जैना प्रिन्टर्स, ज्वालापुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन—1919 का ऐतिहासिक चित्र ।

स्वामी श्रद्धानन्द जी इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे । चित्र में स्वामी जी के साथ श्री गोखले, श्री मालवीय जी, पं० मोतीलाल नेहरू, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, श्रीमती ऐनी बेसेंट तथा पं० जवाहरलाल नेहरू आदि विराजमान हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

151379

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri